प्रकाशकीय

हिन्दी के पाठकों को भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं तथा विदेशों की दो-चार प्रमुख भाषाओं के साहित्य की थोड़े में जानकारी करा देने के उद्देश्य से एक प्रकाशन-योजना हिन्दी समिति में कुछ वर्ष पहले स्वीकार की गयी थी। तदनुसार हम इसके पूर्व बंगला, मलयालम, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी, फ्रेन्च, रूसी आदि भाषाओं के साहित्य पर कुछ ग्रन्थ प्रकाशित कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी इसी योजना के अन्तर्गत किया जा रहा है तथा अन्य रचनाओं के भी यथासम्भव शीघ्र तैयार हो जाने की आशा है।

इस पुस्तक के लेखक श्री बालशौरि रेड्डी तेलुगु भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् और हिन्दी के भी अच्छे जानकार हैं। आपने बड़े अध्ययन-मनन और परिश्रम के साथ इसकी रचना की है। तेलुगु बड़ी ही मधुर और सम्पन्न भाषा है, जिसमें द्रविड़ संस्कृति के साथ आर्य संस्कृति का भी स्पष्ट समन्वय देख पड़ता है। हमारा विश्वास है कि इस उन्नत भाषा के प्रमुख साहित्यकारों और उनकी बहुमूल्य कृतियों के इस संक्षिप्त परिचय से आन्ध्र-वासियों को हिन्दी-भाषियों के अधिक निकट लाने और उनमें परस्पर सौहार्द्र एवं सहानुभूति की भावना उत्पन्न करने में यथेष्ट सहायता मिलेगी। यही इसकी सफलता तथा उपयोगिता का द्योतक भी होगा।

ठाकुर प्रसाद सिंह

सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

———

१

आन्ध्र प्रदेश

भौगोलिक स्वरूप

तेलुगु भाषा और साहित्य का परिचय प्राप्त करने के पूर्व आन्ध्र प्रदेश का भौगोलिक स्वरूप तथा उसके निवासियों का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि मानव-जीवन और उसकी संस्कृति पर भौगोलिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। आन्ध्र प्रदेश उत्तर में १२–४१° अक्षांश से लेकर दक्षिण में २०° अक्षांश और पूर्व में ७०° देशान्तर से लेकर ८४-५०° देशांतर के बीच स्थित है। १९६१ की जनगणना के अनुसार आन्ध्र प्रदेश की जनसंख्या ३,५९,८३,४४७ थी, इसका क्षेत्रफल १९६१, मार्च के अन्तिम विवरणों के आधार पर १,०६,२८६ वर्ग मील है और भारत-संघ के राज्यों में अकारादि क्रम में यह प्रथम तथा जनसंख्या की दृष्टि से चौथा राज्य है। इसके प्रत्येक वर्गमील में प्रायः ३३९ निवासी रहते हैं और जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश (७३७ लाख), बिहार (४६५ लाख), महाराष्ट्र (३९६ लाख) के बाद इसका स्थान आता है, परन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का पाँचवाँ राज्य माना जाता है।

आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी भाग में मद्रास से लेकर गोपालपुरम् तक ६०० मील समुद्र है। पूर्वी घाटियाँ आन्ध्र प्रदेश में बहुत दूर तक फैली हुई हैं, परन्तु इनके भिन्न-भिन्न नाम भी आन्ध्र में प्रचलित हैं। प्राचीन काल में इन पर्वत-श्रेणियों को 'कुल शैलों' में स्थान प्राप्त था। ये पर्वत-श्रेणियाँ विशाखपट्टणम् में पाल अथवा मलय पर्वत नाम से जानी जाती हैं, तो गोदावरी जिलों में पापी पर्वत, नेल्लूर और कडपा जिलों में पाल पर्वत तथा वेलि पर्वत, कर्नूल जिले में नल्लमल तथा एर्रमल और चित्तूर जिले में शेषाचल और कालहस्ती पर्वत नाम से। इन पर्वत-श्रेणियों तथा पूर्वी सागर के मध्य भाग में सौ-डेढ़ सौ मील का विस्तृत भू-भाग फैला हुआ है।

यह भू-भाग अत्यन्त उपजाऊ है। आन्ध्र प्रदेश की प्रायः सभी प्रसिद्ध नदियाँ—गोदावरी, कृष्णा और पिनाकिनी पश्चिमी दिशा से प्रवाहित होकर पूर्वी घाटियों को चीरते हुए इस भू-भाग को सस्यश्यामल बनाकर समुद्रगामिनी हो रही हैं। इन्हीं पूर्व पर्वत-श्रेणियों पर क्रमशः विशाखपट्टणम् जिले में सिंहगिरि पर श्री नृसिंहस्वामी, गोदावरी जिले में भद्राद्रिपर्वत पर श्री रामचन्द्र, कृष्णा जिले में इन्द्रकीलाद्रि पर कनक दुर्गाम्बा, कर्नूल जिले में नल्लमल श्रेणी पर श्री शैल मल्लिकार्जुन, अहोबिल नृसिंह और चित्तूर जिले में शेषाचल पंक्ति पर श्रीवेंकटेश्वर (बालाजी) विराजमान हैं।

आन्ध्र प्रदेश की पूर्वी सीमा बंगाल की खाड़ी है। नौका-व्यापार के लिए अत्यन्त अनुकूल होने के कारण आन्ध्रवासियों ने पश्चिमी देशों के साथ अपना सम्पर्क बढ़ाया। वाणिज्य और व्यापार के लिए विशाखपट्टणम्, काकिनाडा तथा मछिलीपट्टणम् उपयोगी बन्दरगाह हैं। प्राचीन काल में यहाँ कलिंगपट्टणम्, भीमुनिपट्टणम्, काकिनाडा तथा कोरंगी, तल्लरेवु, कोत्तपट्टणम्, वाडरेवु, मोटुपल्ली आदि प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। शातवाहन सम्राटों, काकतीयों तथा रेड्डी राजाओं के समय में आन्ध्रवासियों ने रोम, ग्रीक, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो इत्यादि देशों तथा नगरों के साथ अपना व्यापार सम्बन्ध स्थापित किया था।

दक्षिणी पठार—दक्षिणी प्रायद्वीप की पूर्वी और पश्चिम घाटियों के बीच एक ऊँचा पठार है। यही दक्षिणी पठार (Deccan Plateau) नाम से प्रसिद्ध है। यह समुद्रतल से १००० फुट ऊँचा है। इस पठार में तेलंगाने के नौ जिले तथा कडपा, कर्नूल, अनन्तपुर और चित्तूर जिले आ जाते हैं। खनिज-सम्पत्ति की दृष्टि से यह भू-भाग अत्यन्त समृद्ध है। आन्ध्र प्रदेश में इस समय २० जिले हैं, उनमें सात जिले समुद्री तट पर स्थित हैं। जहाँ लगभग ५० इंच वर्षा होती हैं, रायलसीमा तथा तेलंगाने के जिलों में २५ से लेकर ३० इंच तक वर्षा होती है। इसकी ३१० लाख एकड़ भूमि में खेती होती है। मैंगनीज़, कोयला, लोहा, अबरख आदि यहाँ के मुख्य खनिज हैं। औद्योगिक दृष्टि से भी इस प्रदेश का तेज़ी के साथ विकास होता जा रहा है।

आन्ध्र-प्रदेश की उत्तर-पूर्वी दिशा में उड़ीसा, उत्तर में मध्यप्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र, दक्षिण में मैसूर तथा पूरब में बंगाल की खाड़ी है। इस प्रदेश के

उत्तर में उड़िया और हिन्दी, पश्चिम में मराठी तथा दक्षिण में कन्नड़ और तमिल भाषाएँ बोली जाती हैं। इस प्रदेश में कुल बीस जिले हैं और इसकी राजधानी हैदराबाद है।

पहली अक्टूबर, १९५३ में तेलुगु भाषी जनता का आन्ध्र नाम से एक नया राज्य बना। इसमें मद्रास राज्य के श्रीकाकुलम्, विशाखपट्टणम्, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, गुंटूर, नेल्लूर, अनन्तपूर, कडपा, कर्नूल, चित्तूर तथा बल्लारी जिले के तीन ताल्लुके शामिल किये गये। राज्य पुनर्गठन के फलस्वरूप हैदराबाद के आदिलाबाद, वारंगल, करीमनगर, निज़ामाबाद, मेदक, हैदराबाद, नलगोंडा, खम्मंपेट तथा महबूब नगर जिले, जो कि पहले तेलंगाना क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध थे, **आन्ध्र-प्रदेश में मिल गये हैं। इस प्रकार तेलुगु भाषा-भाषी जनता का 'विशाल आन्ध्र' राज्य का स्वप्न साकार हो गया।** आन्ध्र-प्रदेश में इस प्रकार कुल बीस जिले हैं।

आन्ध्र भूमि असंख्य पवित्र नदियों की क्रीड़ा-स्थली है। मंजीरा, प्राणहिता, शबरी, इन्द्रावती इत्यादि उपनदियों से युक्त गोदावरी नदी, भीमा, तुंगभद्रा, मूसी आदि उपनदियों से शोभित कृष्णा नदी के अतिरिक्त पालेरु, पेन्नेरु, गंड्लकम्मा, शारदा, नागवली, वंशधारा और ऋषिकुल्य यहाँ की अन्य नदियाँ हैं।

आन्ध्र प्रदेश की फसलों में तेलहन, तम्बाकू तथा चावल मुख्य हैं। गुंटूर का तम्बाकू भारत भर में सबसे अच्छा तम्बाकू माना जाता है। ईख, मिर्च, उड़द, कपास, अरहर, चिनियाँ-बादाम आदि यहाँ की अन्य मुख्य फसलें हैं। इस समय आन्ध्र की नदियों पर अनेक बाँधों का निर्माण हो रहा है, बिजली का उत्पादन भी किया जा रहा है, इससे हम कह सकते हैं कि भविष्य में औद्योगिक दृष्टि से आन्ध्र प्रदेश अन्य राज्यों की भाँति विकास को प्राप्त कर सकेगा।

आन्ध्रवासियों का अस्तित्व

"आन्ध्र" शब्द सर्वप्रथम जातिपरक रूप में प्रयुक्त हुआ, तदनन्तर क्रमश: देश और भाषापरक रूप में। निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि आन्ध्र जाति का अस्तित्व कब से है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि "आन्ध्र" शब्द का उल्लेख जातिपरक रूप में वेदों में अति प्राचीन ऋग्वेद

के "ऐतरेय ब्राह्मणों" में हुआ, जिसका रचना-काल ई० पू० १००० वर्ष माना जाता है। ऋषि विश्वामित्र ने शुनश्शेप को अपने ज्येष्ठ भ्राता के रूप में स्वीकार नहीं किया, साथ ही उन्होंने अपने पचास पुत्रों को आर्याश्रम धर्मच्युत घोषित करते शाप दिया—

"तस्य हा विश्वामित्रस्येक शतं पुत्रा असु: पंचाश देवज्यां सो मधुच्छन्दस: पंचाशत्कनीयांस स्तधे ज्यायांसो, न ते कुशलं मेनिरे, तान्व: प्रजा भक्षिस्तेति, त एतेंध्रा:, पुंड्रा: शबरा:, पुलिंद्रा, मूतिबा, इत्यदुं-त्वा बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठा:"

(ऐतरेय ब्राह्मण–७ अध्याय ३, खण्ड १८)

इस प्रकार विश्वामित्र द्वारा शापित लोग ही आन्ध्र, पुंड्रा, शबर आदि कहलाये। इन जातिवालों को कुछ विद्वान् आर्येतर बताते हैं, तो कतिपय इतिहासवेत्ता उन्हें आर्य बताते हैं। परन्तु इस घटना के पूर्व ही आन्ध्रवासी आर्यों के सुपरिचित थे। महर्षि वाल्मीकि-कृत रामायण में भी आन्ध्र जाति का उल्लेख हुआ है। राम-सखा सुग्रीव सीतान्वेषण के लिए वानर-सेना को भेजते हुए उन्हें आदेश देते हैं—

"तथैवान्ध्रांश्च पुंड्राश्च चोलान पांड्यान् सकेरलान्।
अयो मुखश्च गन्तव्य: पर्वतो धातुमंडित:।
विचित्र शिखर: श्रीमान् चित्रपुष्पितकानन:।
सचन्दनवनोद्देशो मार्गितव्यो महागिरि:।
ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलां शिवाय।"

(वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड–४१)

महाभारत के सभापर्व में, ब्रह्म, मत्स्य, वायु इत्यादि पुराणों में, वराह मिहिर की बृहत्संहिता के कूर्म विभाग में आन्ध्र जाति का वर्णन हुआ है। हरिवंशपुराण के अनुसार कंस के दरबार में श्रीकृष्ण के साथ लड़नेवाले चाणूर मल्ल आन्ध्र ही थे। संभवत: ये आन्ध्र आर्य क्षत्रिय थे। इतिहासवेत्ताओं का कहना है कि ई० पू० ७०० के करीब आन्ध्रवासियों की एक शाखा यमुना नदी के तट पर निवास करती थी तथा आपस्तम्ब नामक ऋषि उनके गुरु थे।

महाभारत की कथा के अनुसार आन्ध्र राजाओं ने कौरवों के पक्ष में युद्ध किया था। महाभारत के अनन्तर जब उत्तर हिन्दुस्तान छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया, तब गंगा तथा यमुना नदी के तटीयवासी दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हुए और उनमें आन्ध्र भी थे। ये पहले विन्ध्याचल के दक्षिण में आये। वहाँ पर अनेक नगरों का निर्माण कर अपने राज्य की स्थापना की। इनके नगर महाराष्ट्र से लेकर तेलंगाने तक फैले हुए थे। इस प्रकार प्रवासी आन्ध्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले राजा शातवाहन अथवा सातवाहन थे। इनके द्वारा स्थापित राज्य ही सातवाहन राज्य नाम से विख्यात है। इनकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर अथवा पैठान था। इन्हीं सातवाहनों के समय में आन्ध्रवासियों ने अपने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था। ये दक्षिण में आने पर स्थानीय नाग, यक्ष इत्यादि जातियों के साथ अपना सम्पर्क बढ़ाकर, उनमें मिल गये या उनको अपने में मिला लिया। ई० सन् २५० के पल्लव राजाओं के शिलालेखों में सातवाहन राज्य का "आन्ध्रपथ" नाम से उल्लेख किया गया है।

हमने पहले ही बताया कि पुराणों में आन्ध्र राजाओं का उल्लेख आया है। परन्तु पुराणों में वर्णित आन्ध्र, नासिक और हरिगुप्पा के शिलालेखों में सातवाहन नाम से व्यवहृत हैं। अतः यह विश्वास किया जाता है कि सातवाहन आन्ध्र हैं। आन्ध्र शब्द जातिबोधक है, सातवाहन राजवंश का नाम है। ई० पू० ४–३ शती तक आन्ध्रवासियों ने अपना एक बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था। इस बात की पुष्टि ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज़ के लेखों से भली-भाँति हो जाती है। अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज़ आये थे। उन्होंने समस्त हिन्दुस्तान का भ्रमण कर ई० पू० ३०० में लिखा है—"मौर्यों के बाद शक्तिशाली आन्ध्र ही हैं। उनके अधीन में एक लाख पैदल सेना, दो हज़ार घुड़सवार, एक हज़ार हाथी तथा तीस दुर्ग हैं।"

अशोक ने अपने धर्मलिपि वाले शिलालेख १३ में लिखाया है कि आन्ध्रवासी उनके राज्य में रह रहे हैं और वे बौद्ध धर्मावलम्बी हैं (गिरनार शिलालेख)। मनुस्मृति (३६) में कारावर स्त्री के साथ वैदेह द्वारा उत्पन्न हुए—शिकार करके जीवन-यापन करनेवालों को "आन्ध्र" बताया गया है। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता प्लिनि (ई० सन् ७७ में) ने लिखा है—"आन्दर जाति वाले अत्यन्त पराक्रमी

हैं। उनके पास एक लाख पैदल सेना, दो हज़ार घुड़सवार, एक हज़ार गज-सेना तथा ८० दुर्गों से युक्त नगर हैं।"

अशोक के शिलालेखों से यह विदित होता है कि आन्ध्र राजा मगध के सामन्त थे, परन्तु ये सभी विषयों में स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार करते थे। क्रमशः बलवान् हो ई० पू० दूसरी शताब्दी में मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् आन्ध्र राजाओं ने उत्तर भारत पर हमला किया और काण्ववंशी राजाओं को पराजित कर मगध पर शासन किया। फिर भी ये देशीय संघों के साथ विवाहादि कार्यों में सम्पर्क बनाये रखते थे। इस प्रकार आर्य-द्राविड़ सम्मिलन हुआ।

ई० सन् प्रथम शताब्दी के प्राकृत शिलालेखों में "आन्ध्र" शब्द का प्रयोग हुआ है। यही शब्द पुराणों में "आन्ध्र" के नाम से तथा बौद्ध-त्रिपिटकों और जैन-ग्रन्थों में "आन्ध्र" और "अन्धु" या "अन्धक" नाम से व्यवहृत हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण के समय आन्ध्रवासी आर्यावर्त की सीमा पर निवास करते थे। उत्तर कोसल की राजधानी श्रावस्ती नगर के समीप में "अन्धवन" कोसल था। आन्ध्र जनपद के निकट वाला कानन 'अन्धवन" हो गया।

वायुपुराण (अ० ८८, २४-२६) और विष्णुपुराण (अ० २-१२) यह बताते हैं कि "श्रावस्त" अथवा "श्रावस्तक" इक्ष्वाकुवंशी नरेश "विकुक्षी" की छठवीं पीढ़ी के थे तथा उनके पिता "आन्ध्र" थे। श्रावस्ती उत्तर-प्रदेश के गोंडा जिले में है। दक्षिण कोसल कलिंग देश के पार्श्व में है। कतिपय इक्ष्वाकुवंशी प्रवासी बनकर दक्षिण में आये होंगे और यहीं बस गये होंगे। इस प्रकार "दक्षिण कोसल" बना होगा। नागार्जुन-कोंडा, जग्गय्यापेटा इत्यादि के शिलालेखों द्वारा इस कथन की पुष्टि होती है कि इक्ष्वाकुवंशियों का आन्ध्र देश के साथ कैसा सम्बन्ध था। उपर्युक्त वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि आन्ध्र शातवाहन उत्तर से दक्षिण में आये और उन्होंने कृष्णा-गोदावरी के तटों पर अपना राज्य स्थापित किया।

"आन्ध्र" शब्द देशवाचक रूप में

ई० सन् तीसरी शती में शिवस्कन्ध वर्मा द्वारा निर्मित ताम्रलेख, जो जिला

गुंटूर, मैदवोलु नामक गाँव में प्राप्त हुआ है, पाली भाषा से कुछ भिन्न भाषा—प्राकृत में है। उसमें खुदा हुआ है—

"अगिवेस सगोत्तस गोनंदि जस
आन्धापथीयोगामो विरिपरम
अह्मेहि उदकादिम् संपदत्...."
(समय ई० स० ३२४ एपिग्राफिको इण्डिया : पृष्ठ ८४-८६)

अर्थात् अग्निवेशस गोत्री गोविन्दाचार्य को आन्ध्रपथीय (आन्ध्र देश का) विरिपरुं नामक गाँव हमारे द्वारा प्रदत्त किया जा रहा है।

मल्लदेव नंदिवर्मा ने ई० स० ३३६-३४० में अपने दान-लेख द्वारा मुडियनूर नामक गाँव को दान किया था।

"आन्ध्र मंडले द्वादश सहस्र
ग्राम संपादित सप्तार्थ लक्ष विषयाधिपतेः।"
(ई० आ० जि० ४, पृष्ठ ७५)

जौनपुर (ई० सन् ५५३) के शिलालेख में "प्रतिरन्ध्रमान्ध्रपतिना", "आन्ध्रसेनाभटेषु"—आन्ध्र को देशवाचक के रूप में सूचित करते हैं।

ईशानवर्मा द्वारा निर्मित हरहा के शिलालेख में भी (वि० संवत् ६११, ई० सन् ५५५) "जित्वांध्रापतिम्" का प्रयोग हुआ है। यशः वर्णदेव (ई० सन् १०७२) के "खैरा" ताम्रलेख में "आन्ध्राधीशमरंध्रदोविलसितम अवल्लिगोदावरी" आन्ध्र शब्द देशपरक रूप में व्यवहृत हुआ है। वराह मिहिर की बृहत्संहिता तथा ह्यून त्सांग के वर्णनों में भी आन्ध्र शब्द देश के रूप में ही व्यवहृत हुआ है।

"आन्ध्र" शब्द भाषापरक रूप में

तेलुगु भाषा के प्रथम महाकवि नन्नय भट्ट ने "नंद्रंपूडि" के शिलालेख में अपने सम्बन्ध में लिखा है—"आन्ध्र कवित्व विशारदुंडु", अर्थात् "मैं आन्ध्र (तेलुगु) भाषा की कविता का विशारद हूँ।" इसके पश्चात् तो आन्ध्र और तेलुगु शब्द भाषा के लिए समान रूप में प्रयुक्त होने लगे।

तेलुगु और तेनुगु

ब्रह्माण्डपुराण के वर्णनों द्वारा हमें यह विदित होता है कि आन्ध्र देश में श्रीशैल, कालहस्ती तथा द्राक्षाराम नामक जो तीन प्रसिद्ध शिवलिंग क्षेत्र (तीर्थ) हैं, उनके मध्य भू-भाग का नाम त्रिलिंग देश है। कुछ लोगों का कथन है कि यही "त्रिलिंग" शब्द "तेलुगु" के रूप में परिवर्तित हो गया है, परन्तु इससे प्रबल उदाहरण एक और है। प्राचीन काल में गंगानदी के तट से लेकर उड़ीसा के कटक तक का भू-भाग उत्तर कलिंग (उत्कल) नाम से व्यवहृत होता था। कटक से लेकर गंजाम जिले के मलय पर्वतश्रेणी तक मध्य कलिंग तथा गोदावरी तक का प्रान्त दक्षिण कलिंग नाम से पुकारा जाता था। ये तीन कलिंग ही "त्रिकलिंग" और "त्रिलिंगा" कहलाये, "त्रिलिंग" से ही "तेलुगु" का उद्भव हुआ।

कुछ लोगों का विचार है कि गोदावरी के उत्तर में महेन्द्राचल तक का प्रदेश आन्ध्र है। इस देश का नाम कलिंग भी था। कलिंग तीन थे—उत्कलिंग, मधुकलिंग और कलिंग। ये ही त्रिकलिंग कहलाये।

यूनान के भूगोल-शास्त्री टालमी ने (ई० सन् १५० में) इस प्रदेश के लिए "ट्रिलिंगान" शब्द का प्रयोग किया था। इसी का परिवर्तित रूप "तेलंगाना" है।

पर्लाकिमिडि तालुके के मुखलिंगेश्वर मंदिर में उपलब्ध शिलालेख में लिखा है—

"महाराजाधिराज त्रिकलिंगाधिपतिः
श्रम दनंत वर्म महाराज श्चोडगंगदेवः
आकल्पं गुणधामसोमल महादेवी मनो मानसे
हंसीयात्रिकलिंग मंडलपतेः श्रीगंगाचुड़ामणेः"

यही शब्द कालांतर में भिन्न-भिन्न रूपों को प्राप्त करते हुए "त्रिकलिंग"—"तिअलिंग," "तेलिंग", तेलुंगु", "तेलुगु" और "तेनुगु" के रूप में परिवर्तित हो गया है।

"त्रिलिंग" शब्द अनेक शिलालेखों में भी प्रयुक्त हुआ है। कतिपय उदाहरण हमने ऊपर दिये हैं। ई० सन् १३०० में विद्यानाथ ने अपने "प्रतापरुद्रीय" में अपने प्रभु प्रतापरुद्र आ संबोधन—"त्रिलिंग देश परमेश्वर" नाम से किया है। प्रतापरुद्र तेलंगाना तथा शेष आन्ध्र के चक्रवर्ती थे। ई० सन् १३१८ में मुम्मडि

नायक के श्रीरंगम् के ताम्रलेख में "तिलिंगनामा" शब्द का प्रयोग हुआ है।
(एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १४, पृष्ठ ९०)

ई० सन् १०२७ में इन्द्रवर्मा के प्रदत्त पुर्ली ताम्रलेख में "तिरिलिंगू वास्तव्याय" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ त्रिलिंग के निवासी होता है।
(एपिग्राफिका इंडिका, जिल्द १४, पृष्ठ ३६०)

तमिल के प्राचीनतम व प्रथम व्याकरण "तोलि काप्पियम" में आन्ध्र की दक्षिणी सीमा "तिरुपति" बतायी गयी है। कालहस्ती तो तिरुपति के निकट है। इसके अतिरिक्त श्री वीरराजेन्द्र चोड़ (ई० सन् ११६९ में) ने अपने शिलालेखों में आन्ध्र देश की सीमाएँ इस प्रकार बतायी हैं। पूर्वी दिशा में समुद्र, फिर अन्य दिशाओं में क्रमशः कालहस्ती, श्रीशैल तथा महेन्द्राचल (द्राक्षाराम) हैं। इससे भी "त्रिलिंग" शब्द की पुष्टि होती है। तीन प्रसिद्ध शैव तीर्थों के बीच की भूमि को "त्रिलिंग-भूमि" या "त्रिलिंग-देश" कहा गया है।

तेलुगु के प्रसिद्ध वैय्याकरण अप्पकवि ने अपने "अप्पकवीयमु" नामक ग्रन्थ में तेलुगु और तेनुगु शब्दों की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी है।

श्री क्षितिधर कालेश द्राक्षा रामंबुलनग दानरारेडु
त्रिक्षेत्रबल लिंगमु लीक्षिप द्रिलिंग संज्ञनेन्निककेक्कुन

अर्थात् श्रीशैल, कालहस्ती और द्राक्षाराम नामक तीन प्रसिद्ध शैव तीर्थों के अस्तित्व के कारण इस प्रदेश का नाम "त्रिलिंग" पड़ा।

ते-१० **"तत् त्रिलिंग निवासंबु तरुकतन**
नांध्रदेशबु दान्नि लिंगारुदमय्ये
देलुगगुचु दद्भवमु दानिवलन बोडमें
वेनुक गोंदरु दानिके तेनुगुगुनंडु।"

उन तीन शैवलिंग-तीर्थों के कारण आन्ध्र देश "त्रिलिंग-भूमि" कहलाया। उसी शब्द का तद्भव तेलुगु बना, क्रमशः उसी का कुछ लोग "तेनुगु" नाम से भी व्यवहार करने लगे।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि द्राविड़-भाषाओं में कन्नड़ और तेलुगु का सम्बन्ध अत्यन्त निकट है। इन भाषाओं के मूल रूप हाल कन्नड़ और तेनुगु कन्नड़

थे। वे ही कन्नड़ और तेलुगु के रूप में आज हमारे सामने हैं। इन दोनों भाषाओं का लिपि-साम्य भी इस बात का प्रमाण कहा जा सकता है। तेलुगु के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० चिलुकूरि वीरभद्रराव का भी यही कथन है कि तेलु-कन्नड़ ही तेलुगु के रूप में परिवर्तित हो गयी है। सिद्धान्त के अनुसार तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और तमिल—इन चारों भाषाओं की मूल भाषा एक ही है और वह है मूल द्राविड़। परन्तु तेलु-कन्नड़ का अर्थ शुद्ध कन्नड़ बताया गया है।

पाश्चात्य विद्वान् कांबेल साहब ने तेलुगु शब्द का मूल रूप त्रिलिंग माना है। उनका विचार है कि यह शब्द व्याकरण-सम्मत है और "त्रिकलिंग" से उसकी उत्पत्ति हुई है।

डॉ० ग्रियर्सन ने तेनुगु और तेलुगु शब्दों पर विचार करते हुए यह व्यक्त किया है कि तेलुगु शब्द से ही तेलुगु की उत्पत्ति हुई है। जैसे, तेलुगु में अन्य रूप बनते हैं, उदाहरण के लिए—मुनग—मुलग, सेनग—सेलग।

(लिंग्विस्टिक सर्वे–जि० ४, पृष्ठ ४७; सी० डी० जी० पृष्ठ २७)

तेलुगु भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० गिडुगु सीतापति के शब्दों में "तेलु (न्) गु" और "तेनुगु" शब्दों में कदाचित् पहला ही पुराना है। 'ल"—"न" में परिवर्तन हो जाता है।—लवण (संस्कृत) उड़िया में "नूनो" हो जाता है। "नोल" (तमिल) कन्नड़ में "नोन" हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में और आज भी तेनु (न्)–गु की अपेक्षा तेलु (न्)–गु शब्द का ही प्रयोग अधिक हुआ है। तेलु (न्)–गु, तेलिंग, तेलंगाना, तेलंग आदि इसके उदाहरण हैं।

तेने (मधु) + अगु (हो), अर्थात् जो भाषा मधु की भाँति मधुर हो। इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में यह भी एक सिद्धान्त सामने आता है।

तेलुगु शब्द दिशावाचक रूप में भी व्यवहार में आया होगा। जैसे एशिया को प्राच्य कहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल में विन्ध्याचल के दक्षिण भाग को "दक्षिणापथ" कहा गया। रुद्रदमन ने अपने शिलालेख में शातकर्णी को "दक्षिणापथादिपति" वर्णित किया है। तमिल निघंटुं (कोश) में दक्षिण के लिए "तेन्नाट्टन" शब्द प्रयुक्त हुआ है—(तमिल निघंटु–पृष्ठ २०.२८, मद्रास विश्वविद्यालय)। द्राविड़ भाषा में "दक्षिण" नामक संस्कृत शब्द का रूप या अर्थ तेलुगु होता है। आन्ध्र देश के लिए संस्कृत का ही रूप दक्षिण या दक्षिणापथ प्रयुक्त हुआ, परन्तु भाषा के

लिए द्राविड़ रूप तेलुगु ही रहा। यही शब्द तेनुगु नाडु (तेनुगु या आन्ध्र देश) "तेनुगुवाडु" (आन्ध्र-वासी या तेलुगु भाषा-भाषी) व्यवहार में आया है। तमिल में तेन्नाडु दक्षिण देश को कहते हैं, जैसे—तेंकाशी—दक्षिण काशी। दक्षिण में मुसलमानों की भाषा जैसे "दक्खिनी" हो गयी, वैसे ही तेलुगु रूप भी बना होगा।

कुछ विद्वानों का विचार है कि तत्सम-बहुल भाषा आन्ध्र भाषा है और विशुद्ध देशी भाषा तेलुगु है। उनका विचार है कि आन्ध्र आर्य थे। वे जब दक्षिण में आये, तब यहाँ के तेलुगुवासियों में मिल गये। परन्तु यह सिद्धान्त-निरूपण नहीं माना जा सकता कि तेलुगु "आन्ध्र" से विकसित होने वाली भाषा है। तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० गिडुगु सीतापति का कथन है—"आन्ध्र-साम्राज्य का विस्तार धीरे-धीरे तेलुगु देश के बहुत-से भू-भाग में हो गया था, पर उनका क्षेत्र कभी बिलकुल एक ही रहा हो, यह सत्य नहीं। आधुनिक महाराष्ट्र का एक भाग बहुत समय तक आन्ध्र साम्राज्य का अंग रहा है, पर वह तेलुगु देश के अन्तर्गत कभी नहीं रहा। तेलुगु देश के उत्तरी तटवर्ती प्रदेश (कलिंग या उड़ीसा) आन्ध्र साम्राज्य के अंग कभी नहीं रहे। आन्ध्र-सम्राटों ने एक बार उनको पराभूत अवश्य किया था, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे उन्हें इतने समय तक अपने अधीन रख सके कि आन्ध्र जाति और आन्ध्र भाषा इन प्रदेशों को अभिभूत कर लेती।"

इतना सत्य है कि आज व्यवहार में तेलुगु भाषा के पर्यायवाची रूप में आन्ध्र शब्द का प्रयोग होने पर भी, भाषा के माधुर्य का उल्लेख जहाँ भी होता है, वहाँ "तेलुगु" शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

२

आन्ध्र का इतिहास

पौराणिक मत

प्राचीन काल में आन्ध्र राज्य की समस्त भूमि घने जंगलों से भरी होने के कारण अन्धकारपूर्ण थी। अन्धकार से आवृत अरण्य भूमि में निवास करने वाले होने के कारण इन्हें उत्तर के निवासी, जो कि अपना स्थिर निवास बना चुके थे, अन्ध देशवासी तथा "अन्ध्रु" नाम से पुकारते थे। बौद्ध-युग में ये ही "अन्धक" नाम से पुकारे गये हैं। वही शब्द आगे चलकर "अन्ध्र" तथा "आन्ध्र" शब्द बन गया। हमने पहले ही बताया कि ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार आन्ध्र विश्वामित्र की संतति थे और वे उत्तर से विन्ध्याचल को पार कर दक्षिण में आये। अगस्त्य-महर्षि भी दक्षिण आये हुए आर्य ही थे। इसलिए हम कह सकते हैं कि आन्ध्रवासी आर्य और द्राविड़ दोनों की मिश्रित जातियों के हैं।

पुराणों से हमें यह भी विदित होता है कि नागजातिवालों की निवास-भूमि दक्षिण है। वे नाग और सर्पों की पूजा करते थे। सभ्य और सुसंस्कृत भी थे। नाग-जाति की कन्या "उलूपी" के साथ अर्जुन ने विवाह भी किया था। नागवंश के तक्षक द्वारा ही अर्जुन के पोते परीक्षित की मृत्यु हुई थी तथा उनके पुत्र "जनमेजय' ने सर्पयज्ञ करके समस्त नागों का संहार किया था। नाग और आर्यों के बीच असंख्य युद्ध भी हुए हैं। बौद्ध-गाथाओं तथा आन्ध्र के अमरावती के स्तूपों पर चित्रित नागादि चित्रों के आधार पर भी हम निस्संदेह कह सकते हैं कि दक्षिणापथ नागवासियों की निवास-भूमि रहा है। कुछ लोगों का कहना है कि सुसंस्कृत नागों का नगर ही "नागपुर" है। ई० पू० सातवीं शती में नागवंशियों ने मगध पर शासन किया था। नन्द नागवंशी था। बताया जाता है कि मगध पर शासन करनेवाले नाग आन्ध्र ही थे। ये आर्य धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म को अधिक मानते थे।

आन्ध्र-राज्य के संस्थापक आन्ध्र विष्णु

पुराणों तथा अन्य ऐतिहासिक तत्त्वों के आधार पर यह विदित हुआ है कि सर्वप्रथम आन्ध्र-राज्य की स्थापना करने वाले वीरवतंस "आन्ध्र विष्णु" थे। ये सुचीन्द्र के पुत्र थे। बड़े पराक्रमी थे। इन्होंने "निशंभु" नामक नागराजा को पराजित कर आन्ध्र-राज्य की नींव डाली और श्रीकाकुलम् को अपनी राजधानी बना कर बहुत समय तक राज्य किया। इनकी संतानों ने इन्हें भगवान् की तरह मान कर इनकी पूजा करनी शुरू की और श्रीकाकुलम् में एक मंदिर भी बनवाया, जहाँ के देवता ये ही आन्ध्र विष्णु हैं।

आन्ध्र विष्णु की संतति ने दो-तीन शताब्दियों तक राज्य किया, परन्तु सातवाहन राजाओं के राज्य-ग्रहण तक का इनका पूरा इतिहास प्रकाश में नहीं आया।

सातवाहन

प्राचीन आन्ध्र-राज्य में शालिवाहनों का शासन सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। ये सातवाहन, शातवाहन तथा आन्ध्र-भृत्य-वंश इत्यादि अनेक नामों से व्यवहृत हुए हैं। सातवाहन इस वंश के मूल पुरुष थे, अतः उनके वंश का नाम सातवाहन वंश हो गया। प्राकृत भाषा में सातवाहन को शालिवाहन कहते हैं। शातकर्णि शब्द भी इन राजाओं के साथ जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि कर्णि राजाओं ने जिस भू-भाग पर शासन किया, वह कर्नाटक हो गया। सातवाहन राजाओं ने आन्ध्र-प्रदेश के साथ-ही-साथ महाराष्ट्र और कर्नाटक पर भी शासन किया था। सातवाहन राजाओं ने ई० पू० २३० से ई० सन् २२० तक, अर्थात् लगभग ४०० वर्षों से अधिक राज्य किया था। इस वंश के ३० राजाओं ने राज्य किया। पहले इनकी राजधानी महाराष्ट्र का प्रतिष्ठानपुर अथवा पैठान था। तदनन्तर इनका राज्य क्रमशः हैदराबाद, कृष्णा और गोदावरी तट तक फैल गया था। शालिवाहन अथवा सातवाहन के पूर्व सुचन्द्र, विष्णु (आन्ध्र-विष्णु) तथा दीपकर्णी ने शासन किया था। इन तीनों की राजधानी श्रीकाकुलम् में थी। प्रतिष्ठानपुर भी करीब ३०० वर्षों तक आन्ध्र-साम्राज्य की राजधानी रहा, परन्तु गौतम-पुत्र शातकर्णि ने ई० सन् १०२ को इसे बदल कर धान्यकटक में कर दिया। शातवाहन के काल में ही सोमदेव शर्मा ने "कथा-सरित्सागर" की रचना की थी।

इसमें बताया गया है कि बृहत्कथा के रचयिता गुणाढ्य शालिवाहन के मंत्री थे। गुणाढ्य ने इस ग्रन्थ की रचना पैशाची भाषा में की और इसे शालिवाहन को समर्पित किया।

इसी सातवाहन वंश के यशस्वी राजाओं में हाल सातवाहन एक थे। इन्होंने 'सप्तशती' नामक नीतिप्रधान काव्य की पाली-प्राकृत में रचना की है। बताया जाता है कि इन्हीं के नाम से 'शालिवाहन शक' का शुभारम्भ हुआ है। इनका समय ई० सन् ५२-७६ था, अर्थात् उन्होंने २७ साल राज्य किया था। 'विक्रमार्क शक (संवत्)' ई० पू० ५७ से और शालिवाहन शक ई० सन् ७८ से प्रारम्भ हुआ है।

सातवाहन राजाओं के समय में आन्ध्र देश सभी दृष्टियों से समृद्ध था। यहाँ उसी काल में ललित कलाओं का पूर्ण विकास हो गया था। विदेशों के साथ नौका-व्यापार तथा वाणिज्य का अच्छा सम्बन्ध था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी आन्ध्र-साम्राज्य पर्याप्त समृद्ध था। तत्कालीन शासन में ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों को समान आदर प्राप्त था। इस वंश के अन्तिम राजाओं में यज्ञश्री शातकर्णी विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। इनके शिलालेख नासिक, कार्ली, चिन गंजाम आदि प्रदेशों में प्राप्त होने के कारण लगता है कि इनका साम्राज्य दूर तक फैला हुआ था। महायान शाखा के प्रवर्तक आचार्य नागार्जुन इन्हीं के समय में हुए थे। यज्ञश्री शातकर्णी (ई० सन् १७२-२०५) ने आचार्य नागार्जुन के लिए एक संघाराम का भी निर्माण कराया था। इनके सिक्कों में नौकाएँ चित्रित हैं। इन्होंने ईजिप्ट, रोम, ग्रीक, पर्षिया, सिंहलद्वीप, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, यव, चीन और बर्मा देशों के साथ समुद्र-मार्ग पर वाणिज्य-सम्बन्ध स्थापित किया था।

उस समय राजकीय व्यवहार की भाषा प्राकृत थी। गुहालयों का खूब निर्माण हुआ। अजन्ता का चित्र-लेखन इसी समय का है। अमरावती का विश्वविख्यात बौद्ध-स्तूप भी इसी समय में निर्मित हुआ है। सातवाहन राजाओं के बाद आन्ध्र देश एक ही राजा के शासन में न रहा। सातवाहनों के सामन्तों ने स्वतन्त्र हो अपने-अपने अलग़ राज्य स्थापित किये।

इक्ष्वाकु

इक्ष्वाकुवंशियों ने विजयपुरी को राजधानी बना कर अपना शासन प्रारम्भ किया

था। विजयपुरी के पास ही श्रीपर्वत है, वहीं आचार्य नागार्जुन रहते थे। कालांतर में श्रीपर्वत ही नागार्जुनकोंडा (पर्वत) कहलाया। इस वंश के प्रथम राजा वासिष्ठी पुत्र श्रीशान्तमाल (ई० सन् २००–२१८) थे। इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। इनके उपरान्त श्री वीरपुरुषदत्त (ई० सन् २१८-२३९) नामक इक्ष्वाकुवंशी राजा ने उज्जयिनी की राजपुत्री से विवाह किया था तथा अपनी पुत्री का वैजयन्ती के नागराज कुमार से विवाह किया था। इस प्रकार इन राजाओं का अन्य राज्यों से अच्छा सम्बन्ध था। वीर पुरुषदत्त के बाद इक्ष्वाकु-राज्य दुर्बल हो गया। काँची के पल्लववंशी राजा ने आन्ध्र पर हमला करके ई० सन् २५२ में पलनाडु में अपने राज्य की नींव डाली।

बृहत्पलायन और शालंकायन

शातवाहनों के सामंत बृहत्पलायनवंशी बोय वर्मा ने पल्लवों को भगाने के विचार से युद्ध करके उन्हें पराजित किया था। इनकी राजधानी काकिनाडा के निकट कोडूर में थी। ग्रीक देशवासी टालमी ने लिखा है कि उन दिनों में वह बहुत बड़ा बन्दरगाह था। आनन्दवंशी दामोदर वर्मा ने (ई० सन् २९५–३१५) आन्ध्र में पल्लव राज्य को समाप्त किया। ये भी पहले सातवाहनों के ही सामन्त थे।

शालंकायन सातवाहनों के सामन्त थे। पेरिप्लिसु नामक पाश्चात्य ग्रन्थ में (ई० सन् ६०) इनके सम्बन्ध में लिखा है कि एलूरु के समीप में स्थित वेंगीपुरम् इनकी राजधानी थी। इस वंश के प्रथम राजा विजयदेव वर्मा (ई० सन् ३००-३५) थे। इसी वंश के हस्तिवर्मा ने समुद्रगुप्त के साथ घोर युद्ध किया था। इसी समय से आन्ध्र में क्रमशः बौद्ध और जैन-धर्मों का पतन होने लगा। उस समय प्रोल्लूर नामक एक बहुत बड़ा बन्दरगाह गोदावरी नदी के मुख द्वार पर स्थित था। आज वह समुद्र के गर्भ में चला गया है। इसी समय शालंकायन राज्य से बर्मा, सयाम, (श्याम), कांबोडिया आदि देशों में बौद्ध-धर्म फैला। बौद्ध-भिक्षुओं के साथ ही नौका-व्यापार, आन्ध्र-शिल्प तथा चित्रकला भी वहाँ पहुँची।

विष्णुकुंडिन

कहा जाता है कि ये लोग पहले मध्यप्रदेश के वाकाटकवंशी नरेशों के अनुयायी

थे। आन्ध्र में विनुकोंडा को अपनी राजधानी बना इस वंश के राजाओं ने राज्य किया। अतः विनुकोंडा "विष्णुकुंडिनपुर" नाम से विख्यात हो गया। इस वंश के प्रथम राजा माधव वर्मा (ई० सन् ४२०-४५५) थे। इन्होंने शालंकायन राज्य को समाप्त किया और पल्लवों को आन्ध्र से पूर्ण रूप से भगा दिया। इनके समय में सारा आन्ध्र फिर एक ही शासन के अन्तर्गत आया। इन्होंने कई अश्वमेध यज्ञ किये। इस वंश के समय में शिल्प और चित्रकला का अच्छा विकास हुआ है। इनके शिलालेख संस्कृत में उपलब्ध हैं। इन राजाओं ने ई० सन् ६२५ तक राज्य किया था। इन्हीं दिनों में आन्ध्र के विख्यात सस्कृत पंडित कुमारिल भट्ट ने जैमिनि सूत्रों के भाष्य लिख कर वैदिक धर्म का प्रचार किया।

चालुक्य (ई० सन् ६२५–१११८)

आज महाराष्ट्र में जो बादामी नगर है, वह प्राचीन काल में "वातापि" नाम से विख्यात था। वातापि को अपनी राजधानी बना कर चालुक्यवंशी राजा राज्य करते थे। इस वंश के सत्याश्रयी पुलिकेशी ने ई० सन् ६११ में कलिंग और वेंगी देशों को जीत लिया था और उन्होंने आन्ध्र पर शासन करने के लिए अपने भाई विष्णुवर्द्धन को वेंगी में नियुक्त किया था। कुबड़ा होने के कारण वह कुब्ज विष्णु-वर्धन कहलाया। इस वंश के ३२ राजाओं ने करीब ५०० वर्ष तक राज्य किया। इन राजाओं ने ई० सन् ६२५ से ७५३ तक अपने ज्ञाती बादामी चालुक्यों तथा दक्षिण के (कांचीवरम्) पल्लव राजाओं के साथ अपना अच्छा सम्बन्ध स्थापित किया, यद्यपि पल्लव और बादामी चालुक्यों के बीच बराबर युद्ध होते रहे, फिर भी ये तटस्थ रहे। इसी काल में यहाँ कृषि, वाणिज्य तथा भाषाओं की अच्छी उन्नति हुई। उसी काल में आन्ध्र (तेलुगु), कन्नड़ तथा महाराष्ट्र की लिपियाँ भिन्न होने लगीं। ह्यू नसांग ने इसी समय आन्ध्र देश का भ्रमण किया था।

इसके पश्चात् महाराष्ट्र में राष्ट्रकूटों का शासन कायम हुआ। आन्ध्र देश पर उनका आक्रमण बराबर होता रहा। ई० सन् ९७५-१०७६ चालुक्य वंश की अन्तिम स्थिति का काल था। इस काल में महाराष्ट्र में राष्ट्रकूटों का स्थान कल्याणी चालुक्यों ने ले लिया था। इनके हमलों से बचने के लिए कांची के चोल राजाओं के साथ चालुक्यों ने अपना सम्बन्ध स्थापित किया था। इस प्रकार

आन्ध्र और तमिल राजाओं ने मिल कर महाराष्ट्र और कर्नाटक राजाओं के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की थी।

चालुक्यवंशी सातवें विष्णुवर्द्धन की उपाधि "राजमहेन्द्र" थी। इन्होंने जब राजमहेन्द्रवरम् नगर का निर्माण कराया, तब राजधानी भी इसी नगर में आ गयी। राजराज नरेन्द्र ने ई० सन् १०२२-६३ तक राज्य किया। इन्हीं के आस्थान (दरबारी) कवि नन्नय भट्ट ने महाभारत का काव्यानुवाद प्रारम्भ किया। राजराज नरेंद्र ने तमिलनाडु के चोल राजा राजेन्द्र चोल की पुत्री अम्मंग देवी के साथ विवाह किया था। इनके पुत्र ने अपने मातामह के राज्य पर "राजेन्द्र-चोल" अथवा "कुलोत्तुंग चोल" नाम से शासन किया था।

चोल

११वीं और १२वीं शतियों में चोलवंश ने राज्य किया। ये लोग चोड़वंशज भी कहलाते थे। गुंटूर जिले के कोणिदेन पर चोड़वंश ने शासन किया था। तेलुगु कुमारसंभव के काव्यकर्ता नन्नेचोड़देव इसी वंश के थे। नेल्लूर (विक्रम-सिंहपुरी) में एक और चोड़ वंश ने १२ वीं शती में शासन किया था। मनुम सिद्धि इस वंश के प्रसिद्ध राजा थे। इनके प्रधान मंत्री व दरबारी कवि तिक्कना ने महाभारत के वनपर्व के बाद के शेष १५ पर्वों का तेलुगु अनुवाद किया था। इस युग में तेलुगु के अनेक लक्षण ग्रन्थ रचे गये।

काकतीय

"काकती" नामक देवी की उपासना करते रहने के कारण ये काकतीय कहलाये। इनकी राजधानी ओरुगल्लु (वरंगल) में थी। ये पहले पूर्वी चालुक्यवंशी नरेशों के सामन्त और सेनापति थे। ई० सन् १०५० में प्रथम प्रोलराजा ने अपने स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। इस वंश ने करीब ३०० वर्ष तक राज्य किया। इस वंश के रुद्रदेव के काल में काकतीय राज्य ने बड़ी उन्नति की और राज्य का भी काफी विस्तार किया। इस कार्य में वेलम तथा रेड्डी वंशी सेनापतियों ने प्रशंसनीय सहायता की। इन्हीं रुद्रदेव (ई० सन् ११५८-११९५) के समय में शैव-साहित्य का विशेष रूप से सर्जन हुआ। सुप्रसिद्ध शैवाचार्य श्रीपति गुरु,

मल्लिकार्जुन पंडित पालकुरुकि सोमनाथ कवि इत्यादि इसी समय हुए। रुद्रदेव के उपरान्त उनके भाई गणपति देव (११९८-१२६१) ने राज्य ग्रहण किया। इनके समय में राज्य-विस्तार के साथ साहित्य, चित्र तथा शिल्पकला की आशातीत उन्नति हुई। इनके अनेक नमूने आज भी विद्यमान हैं। राजा गणपति देव की पुत्री रुद्रम् देवी ने काफी समय तक राज्य किया। उनको कोई संतान नहीं हुई थी, अतः उनकी पुत्री का पुत्र प्रतापरुद्र गद्दी पर बैठा। रुद्रम् देवी ने ई० सन् १२६२ से १२९० तक तथा प्रतापरुद्र ने ई० सन् १२९० से १३२६ तक राज्य किया। इस अवधि में शिवभक्ति का अच्छा प्रचार हुआ। साहित्य, नृत्य, शिल्प, चित्र एवं संगीत कलाओं को भी राज्य की ओर से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। किन्तु ई० सन् १३२२ में अल्लाद्दीन के प्रतिनिधि मुहम्मद बिन तुगलक ने काकतीय नरेशों को पराजित किया। काकतीय राजाओं ने उत्तर में कलिंग राज्य को तथा दक्षिण में कांची को भी अपने राज्य में मिलाकर एक विशाल भू-भाग पर शासन किया। आखिर आन्ध्र के ही कुछ राजद्रोहियों के कारण प्रतापरुद्र के राज्य का पतन हो गया। इस वंश के समय में सभी प्रसिद्ध जैन मन्दिर, शैव मन्दिरों के रूप में परि-वर्तित हुए। प्रतापरुद्र के दरबार के प्रधान कर्मचारियों में हरिहर तथा लुक्काराय नामक दो भाइयों का विशेष रूप से उल्लेख आता है। ये प्रतापरुद्र के निकट रिश्तेदार भी थे। काकतीय साम्राज्य के पतन के पश्चात् ये दोनों भाई आनेगकोंदि पहुँचे, आखिर ये ही विजयनगर साम्राज्य के निर्माता हुए।

रेड्डी तथा नायक राजा

काकतीय साम्राज्य के पतन के बाद विशाल आन्ध्र साम्राज्य असंख्य छोटे-मोटे सामंतों के अधीन हो गया। इस समय ७४ सामंतों ने संयुक्त रूप से शत्रु से लोहा लिया था और बाद में उनके ही कारण आन्ध्र में कुछ और राज्य स्थापित हुए, जिनमें रेड्डी और नायक राज्य अत्यन्त दृढ़ थे। उधर तेलंगाने में मुसलमानों का विरोध होता रहा, परन्तु समुद्र-तटवर्ती जिलों में रेड्डी राजाओं ने अपना राज्य स्थापित किया। ई० सन् १३२४ में प्रोलय वेमा रेड्डी ने गुंटूर जिले के अद्दंकि में अपने राज्य की नींव डाली। इन्होंने अनेक सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण करके राज्य को सब तरह से मज़बूत किया। वेमा रेड्डी के पुत्र अनपोता रेड्डी ने अपनी राजधानी

को अद्दंकि से कोंडवीडु में परिवर्तित किया। इन रेड्डी राजाओं में अनवेमा रेड्डी दातृत्व में शिवि चक्रवर्ती-जैसे थे। इनके पुत्र कुमार गिरि रेड्डी (ई० सन् १३८३–१४००) संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इन्होंने संस्कृत में "वसंत राजकीयम्" नाम से नाट्य-शास्त्र की रचना की है। प्रति वर्ष ये वसंतोत्सव मनाया करते थे। आन्ध्र के वणिक इन उत्सवों के लिए नौकाओं में सुगन्ध द्रव्य लाते थे। कुमारगिरि ने अपने साले काटय वेमा रेड्डी के साहस और पराक्रम पर मुग्ध हो, उन्हें राजमहेन्द्रवरम् का राज्य दे दिया। काटय वेमा रेड्डी ने कालि-दासकृत नाटकों की व्याख्याएँ लिखी हैं। तेलुगु कवि सम्राट् श्रीनाथ कोंडवीडु के राजा पेद्द कोमटि वेमा रेड्डी के दरबारी थे। श्रीनाथ महाकवि ने रेड्डी राजाओं तथा उनके मंत्रियों को अपनी अधिकांश कृतियाँ समर्पित की हैं। वेमना कवि भी इसी समय के माने जाते हैं। इनकी तुलना हिन्दी के कवि कबीरदास से की जाती है। रेड्डी राज्य ने सभी क्षेत्रों में अपना वैभव दिखाया, परन्तु ई० सन् १४५० में इस साम्राज्य का अस्त हो गया।

काकतीयों के सामन्तों में रेचर्लवंशी नायक भी उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने राचकोंडा तथा देवरकोंडा को अपनी राजधानियाँ बनाकर, एक सौ वर्ष अविच्छिन्न रूप से राज्य किया था। इनमें सर्वज्ञ सिंह भूपाल विशेष उल्लेखनीय हैं। ये अच्छे साहित्यिक थे। श्रीनाथ महाकवि भी इनके दरबार में अक्सर आया करते थे। इस कवि के बहनोई पोतना, तेलुगु के महाकवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इसी काल में नायक राजाओं ने करीब १०० वर्ष तक राज्य किया और ई० सन् १४६८ में उनका राज्य बहमनी सुलतानों के अधीन हो गया।

विजयनगर राजा

ई० सन् १३३६ के करीब आनेगोंदि पर भी मुसलमानों का हमला प्रारम्भ हुआ। किन्तु हरिहर तथा बुक्काराय ने विद्यारण्य की सहायता से दिल्ली के बादशाहों की अवहेलना कर, विजयनगर महासाम्राज्य की सुदृढ़ नींव डाली। इस राज्य पर सालुव, तुलुव तथा आर्वेटि नामक तीनों वंशों ने २०० वर्ष तक राज्य किया। दक्षिण के इतिहास में विजयनगर साम्राज्य की बड़ी प्रशस्ति हुई है। हरिहर तथा बुक्काराय के समय पुर्तगीज़वासी वास्कोडिगामा यहाँ आया था। न्यूनिज

नामक पुर्तगीज़ ने इस नगर का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। ई० सन् १३३६ से १४८० तक विजयनगर पर संगमवंश ने राज्य किया। उसके अनन्तर ई० सन् १४८० से १५५० तक सालुव वंश ने राज्य किया। सालुव नरसिंहराजु नामक सेनापति ने उस समय राज्य ग्रहण किया था। ई० सन् १४८० के पूर्व ही मैसूर, तेलंगाना, राजमहेन्द्रवरम् आदि इस राज्य के अधीन हो गये थे। नरसिंहराजु के पश्चात् उनके सेनापति तुलुवनरसिंहराजु ने राज्य-भार ग्रहण किया। इसी वंश के राजाओं में कृष्णदेव राय अत्यन्त विख्यात हुए हैं। तेलुगु साहित्य में इनका समय स्वर्णयुग माना जाता है। कृष्णदेव राय ने दिग्विजय यात्रा करके दक्षिणा-पथ के अधिकांश भूभाग को अपने शासन के अन्तर्गत ले लिया था। इनके दरबार में अष्टदिग्गज नाम से आठ तेलुगु महाकवियों को स्थान दिया गया था। इनका सभा-भवन "भुवन विजय" नाम से प्रसिद्ध था। विदेशों के साथ खूब व्यापार होता था। इनके काल में कलाओं को पूरा प्रोत्साहन मिला। ई० सन् १५१२ में बहमनी राज्य भी बीजापुर, अहमदनगर, बीदर, बेरार तथा गोलकोण्डा नाम से पाँच टुकड़ों में विभक्त हो गया। उसी समय कृष्णदेव ने रायचूर पर विजय प्राप्त की थी।

श्रीकृष्णदेव राय में धार्मिक सहिष्णुता थी, किन्तु उनके उत्तराधिकारी बड़े कट्टर थे, अतः धार्मिक विद्वेष के कारण इस समय सभी इस्लाम राज्य एक हो गये और विजयनगर राज्य का पतन तालिकोटा के युद्ध में हो गया। तालिकोटा के युद्ध के समय विजयनगर पर राम राय राज्य करते थे। उनके भाई ने पहले पेनुडा में तथा बाद को चन्द्रगिरि में कुछ समय तक राज्य किया। इस राज्य के अन्तिम काल में राज ओडयार नामक एक सामन्त ने मैसूर को एक स्वतन्त्र राज्य घोषित किया। मैसूर राज्य की नींव यहीं पड़ी। इसी काल में मदुरा, तंजाऊर, जिंजी इत्यादि राज्य भी स्वतन्त्र हुए। १४० वर्ष तक नायक राजाओं ने इन पर शासन किया। १६वीं सदी में ही चन्द्रगिरि के राजा श्रीरंग राय ने मद्रास के किले को ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया। उधर समस्त आन्ध्र देश पर गोलकोण्डा के नवाबों ने अधिकार कर लिया।

गोलकोण्डा के नवाब

गोलकोण्डा के नवाबों में कुली कुतुब शाह प्रथम हैं। इन्होंने ई० सन् १५१२

से १५४३ तक राज्य किया। आन्ध्र का पूरा प्रान्त इनके अधीन में न था, तेलंगाना प्रान्त अवश्य था। इस वंश के तीसरे नवाब इब्राहीम ने विजयनगर के पतन में हाथ बँटाया था। इन्होंने ई० सन् १५५० से १५८० तक राज्य किया। इन्होंने तेलुगु भाषा और कवियों को भी खूब प्रोत्साहन दिया। इनके पुत्र मुहम्मद कुतुब ने ई० सन् १५८० से १६११ तक राज्य किया और हैदराबाद नगर के निर्माता ये ही थे। "भाग्यवती" नाम की इनकी एक हिन्दू पत्नी थीं। उन्हींके नाम पर इन्होंने भाग्यनगर नाम से नगर का निर्माण किया। बाद को वही हैदराबाद हो गया। मुहम्मद के पुत्र अब्दुल्ला हसन ने (ई० सन् १६११ से १६५८) रायलसीमा जिलों को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस वंश के अन्तिम नवाबों में अब्दुल हसन कुतुब शाह (ई० सन् १६५८-८७) थे। ये तानीशा (तानाशाह) नाम से भी प्रसिद्ध थे। इन्होंने ही रामभक्त गोपन्ना (रामदास) को जेलखाने में बन्द किया था। ई० सन् १६८७ में औरङ्गजेब ने गोलकोण्डा पर विजय प्राप्त की। गोलकोण्डा के पतन के साथ आन्ध्र देश में अराजकता फैल गयी।

आन्ध्र देश मुगलों के अधीन हो गया। लेकिन दिल्ली बादशाह के प्रतिनिधि असफ़जा ई० सन् १७२४ में स्वतन्त्र बन बैठा। यह हैदराबाद निज़ाम का प्रथम नवाब था। उनके मरणोपरान्त राज्य के लिए उनके पुत्र मुज़फ्फरजंग और नासिरजंग लड़ने लगे। फ्रेंचवालों ने एक की मदद करके आन्ध्र के समुद्र तटवर्ती सरकारी जिलों को पुरस्कार के रूप में ले लिया। इस प्रकार आन्ध्र के छः जिले एक ही राज्य से अलग हो गये। परन्तु अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को पराजित कर उन जिलों पर अपना अधिकार कर लिया। ब्रिटिशवालों ने निज़ाम की भविष्य में रक्षा करने का आश्वासन दिया और इस कार्य में लगी अपनी फौज के खर्च के मद्दे रायलसीमा जिलों को निज़ाम ने ब्रिटिशवालों को समर्पित किया। इस प्रकार आन्ध्र के ग्यारह जिले अंग्रेजों के अधिकार में तथा तेलंगाने के नौ जिले हैदराबाद निज़ाम के हाथ में विभक्त हो गये। अंग्रेजों के शासन-काल में आन्ध्र के समस्त जिलों को अलग एक प्रान्त के रूप में मिलाने का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। यह आन्दोलन ई० सन् १९१३ में प्रारम्भ हुआ था। आन्ध्र-महासभा के प्रथम अधिवेशन में इसी वर्ष बाप्टला में यह आन्दोलन आरम्भ हुआ था। इस समस्या को हल करने के लिए ई० सन् १९४७ में 'एस० के० थार० कमीशन'

की नियुक्ति हुई थी। भारत के स्वतन्त्र होने पर ई० सन् १९४७ में भी आन्ध्र के ग्यारह जिले मद्रास राज्य में रहे। सन् १९४८ में 'जे० वी० पी० कमेटी' इसकी जाँच करने के लिए नियुक्त हुई, परन्तु मद्रास नगर को लेकर मतभेद होने के कारण आन्ध्रवासियों ने मद्रास नगर के बिना वे प्रान्त लेने से इनकार किया। ई० सन् १९४९ में प्रान्तों के बँटवारे की जाँच करने के लिए एक और समिति नियुक्त हुई। ई० सन् १९५० में इस समिति ने अपनी 'रिपोर्ट' भी प्रस्तुत की। विलम्ब होते देख ई० सन् १९५१ में श्री स्वामि सीताराम ने अलग आन्ध्र राज्य की स्थापना के लिए अनशन प्रारम्भ किया था। ई० सन् १९५२ में श्री पोट्टि श्रीरामुलु ने ५२ दिन तक आमरण अनशन करके अपने प्राणों की आहुति दी। बाद में नेहरूजी ने अलग आन्ध्र-राज्य के निर्माण की घोषणा की। श्री वांछू की 'रिपोर्ट' के पश्चात् ई० सन् १९५३ के अक्टूबर महीने की पहली तारीख को अलग आन्ध्र राज्य का निर्माण हुआ। किन्तु उस समय हैदराबाद के राज्य में तेलंगाने के नौ जिले अलग ही थे। सन् १९५५ में भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्गठन किया गया। उस अवसर पर विशाल आन्ध्र का निर्माण हुआ, जो आज "आन्ध्र प्रदेश" नाम से विख्यात है।

३

तेलुगु भाषा

तेलुगु भाषा की प्रशस्ति

तेलुगु भाषा के सम्वन्ध में कतिपय विद्वानों की प्रशस्तियाँ उद्धृत करना असंगत न होगा। इन विद्वानों ने तेलुगु भाषा को बड़ा उच्च स्थान दिया है। हेनरी मारिस का कहना है कि "तेलुगु अत्यन्त मधुर भाषा है। द्राविड़ भाषाओं में तेलुगु-जैसी मधुर भाषा और कोई नहीं है। अशिक्षितों की जिह्वा पर भी तेलुगु मधुर प्रतीत होती है। तेलुगु को प्राच्य की इटालियन भाषा कहना समुचित लगता है। तमिल इससे भी समृद्ध भाषा है। इसका प्राचीन साहित्य भी है, लेकिन स्वर-माधुर्य तथा प्रांजलता की दृष्टि से तेलुगु भाषा अनुपम है।"

'हिन्दू' के २७ अप्रैल, १९५८ के अंक में तेलुगु भाषा की प्रशंसा करते हुए श्री बी० एस० हाल्दैन ने लिखा है कि "विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार संभव है, किन्तु विदेशी शब्दों का नहीं। मैं समझता हूँ कि ऐसे शब्दों की स्वीकृति के कारण ही सम्भवतः भारत की समस्त भाषाओं में तेलुगु ही एक ऐसी भाषा है, जो अन्य भाषाओं के शब्दों को बड़ी आसानी से ग्रहण कर सकती है। इसीलिए विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरी आदि शास्त्रों के शिक्षण में इसे हिन्दी के मुकाबिले लाया जा सकता है।"

तेलुगु की अभिव्यंजना-शक्ति और इसकी सरल भावाभिव्यक्ति की व्याख्या करते हुए भाषाविद् डा० कैम्पवेल ने सन् १८१६ में तेलुगु-व्याकरण में लिखा था कि "तेलुगुवासियों ने संस्कृति के जिस महोन्नत शिखर का आरोहण किया, उसका परिचय कराने के लिए विपुल मात्रा में विभिन्न प्रकार की तेलुगु पुस्तकें आज भी विद्यमान हैं। शब्दा सम्पत्ति तथा प्रयोग-विधान में तेलुगु की समता कर सकने वाली भाषाएँ अत्यल्प हैं। अपने भावाविष्करण की सरलता और शब्द-माधुर्य पर तेलुगु भाषा गर्व कर सकती है।"

श्री जी० होमफील्ड ने तेलुगु भाषा की अच्छाइयों पर प्रकाश डालते हुए 'हिन्दू' के १६ अप्रैल, १९५८ के संस्करण में लिखा है कि "तेलुगु को उत्तर भारत की भाषाओं के लिए दक्षिण की निकटतम तथा दाक्षिणात्य भाषाओं के लिए उत्तर की निकटतम भाषा कह सकते हैं। यही कारण है कि समस्त भारतीय भाषाओं की अच्छाइयों को तेलुगु ग्रहण कर सकी है। उनकी बुराइयाँ बहुत ही कम तेलुगु में देखी जा सकती हैं। तेलुगु भाषा में वह लचीलापन है, जिससे हम उसे अपनी इच्छा के अनुसार ढाल सकते हैं। साथ ही यह अत्यन्त सुगठित भी है। अन्य भाषाओं के शब्दों को वह आसानी से आत्मसात् कर सकती है। स्वर-मैत्री के कारण वह अत्यन्त मधुर होती है। व्याकरण की दृष्टि से सरल है, संकुचित प्रान्तीयता का आघात उस पर कभी नहीं हुआ है।

आज से तीन शताब्दियों पूर्व तमिल विद्वान् श्री अप्पय्य (र) दीक्षित ने आन्ध्र भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा था—**"आन्ध्रत्वमान्ध्रभाषा च नाल्पस्य तपसः फलम्"**—"तेलुगु स्वरांत भाषा है। इसमें स्वर-प्रधान संगीत और वर्ण-प्रधान साहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। यही कारण है कि तेलुगु देशी तथा विदेशी विद्वानों की प्रशंसा का पात्र बन सकी है।"

तेलुगु भाषा की प्राचीनता

निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तेलुगु भाषा का अस्तित्व कब से आरम्भ हुआ, इस दिशा में जो अनुसन्धान हुए हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं। जब तक निश्चित रूप से कोई प्रामाणिक सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया जाता, तब तक अनुमान के आधार पर किसी भाषा की उत्पत्ति का निरूपण करना न्यायसंगत न होगा। अग्निपुराण के वर्णन के आधार पर भी तेलुगु भाषा की प्राचीनता का मूल्यांकन किया जा सकता है, जिसमें कहा गया है कि मधुर-पदार्थों के प्रति ममता दिखानेवाले श्री महाविष्णु को यह भाषा अत्यन्त प्रिय थी—**"त्रिमूर्तीनां संस्कृतान्ध्र, प्राकृतां प्रियंकरा"**।

तेलुगु भाषा के प्राचीन रूप का दर्शन आन्ध्र प्रदेश के अनेक संस्कृत व प्राकृत भाषा में खुदे हुए पुरातन शिला-लेखों में मिलता है। प्राचीन शिलालेखों में संस्कृत व प्राकृत शब्दों के साथ तेलुगु विभक्तियों के प्रत्यय जोड़े हुए मिलते हैं।

अलावा इसके, सातवाहनों के समय में ही आन्ध्र की देशी भाषा का उल्लेख मिलता है। संभवतः वह देशी भाषा तेलुगु ही होगी। कथा-सरित्सागर के एक प्रसंग में यह बताया गया है कि गुणाढ्य ने बृहत्कथा की रचना के सन्दर्भ में यह शपथ ली थी कि यदि शर्ववर्मा सातवाहन राजा को छः मास के भीतर समस्त संस्कृत व्याकरण पढ़ा सके तो मैं संस्कृत, प्राकृत तथा देशी भाषा इन तीनों को त्याग दूँगा। इस पर शर्ववर्मा ने अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के हेतु एक व्याकरण रचा, जिसके आधार पर राजा छः महीनों में ही संस्कृत-व्याकरण सीख सके। गुणाढ्य ने पराजित हो अन्त में पैशाची भाषा में अपनी बृहत्कथा की रचना की। ये गुणाढ्य प्रतिष्ठानपुर के आन्ध्र राजा हाल के दरबार में थे और इनका समय ई० सन् ७८ माना जाता है। उस समय देश-भाषा अवश्य तेलुगु ही रही होगी। इस समय आन्ध्र राजाओं ने प्राकृत भाषाओं को अधिक प्रोत्साहन दिया। इसका कारण यह हो सकता है कि आन्ध्र भूमि के साथ अन्य प्रदेश भी उनके राज्य के अन्तर्गत थे। सातवाहन हाल ने अपनी सप्तशती की रचना महाराष्ट्री प्राकृत में की है। प्राचीन बौद्ध-वाङ्मय में भी आन्ध्र भाषा (तेलुगु) का उल्लेख हुआ है। अष्टकथाओं द्वारा हमें भली-भाँति विदित होता है कि महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को आदेश दिया था कि वे आन्ध्र देश में आन्ध्र भाषा में ही बौद्ध धर्म का प्रचार करें। इससे विदित है कि ई० पू० ५०० में ही आन्ध्र भाषा विद्यमान थी।

प्राकृत भाषाएँ किसी एक प्रदेश व समय की नहीं रहीं। विभिन्न प्रदेशों में और युगों में भिन्न रूपों में प्रचलित थीं। प्राकृत भाषाओं के विभिन्न रूपों का परिचय भरतमुनि ने इस प्रकार दिया है—

"मागध्यवंतिजा प्राच्याशूरसेन्यर्धमागधी।
वाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः।"

(नाटचशास्त्र –११७)

तेलुगु को प्राकृत भाषाओं की शाखा मान लें, तो इस युग की संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के साथ जन्य-जननी सम्बन्ध घटित नहीं होता। अतः हमें इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि तेलुगु आर्य-परिवार की भाषा है, अथवा द्राविड़-परिवार की।

तेलुगु भाषा में आर्य और द्राविड़ भाषाओं का समन्वय

तेलुगु भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। डा० चिलुकूरि नारायण राव ने तेलुगु को आर्य-परिवार की भाषा सिद्ध करते हुए—"तेलुगु भाषा का इतिहास"—नाम से एक बृहत् ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। परन्तु श्री कोराड़ राम कृष्णय्या ने तेलुगु को द्राविड़-परिवार की भाषा घोषित की है। इसी मत का समर्थन करते हुए श्री गंटिजोगिसोमाथजी ने—"तेलुगु भाषा का विकास"—नाम से एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का सर्जन किया है। बिशप काल्डवेल ने भी समस्त दक्षिणी भाषाओं का सर्वेक्षण करके तेलुगु को द्राविड़ भाषा सिद्ध किया है। इनके कथनानुसार द्राविड़ शब्द की उत्पत्ति "द्रविड़" से हुई है तथा द्राविड़ भाषाएँ चार के बदले छः हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम् के साथ तुलु तथा कोडग को भी इन्होंने द्राविड़-भाषा-परिवार के अन्तर्गत माना है। इन छः सभ्य भाषाओं के साथ उन्होंने तुद, कोट, गोंडु, खोंडु अथवा "कु", बरायदु और राजगुहा नामक छः असंस्कृत भाषाओं का भी उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने यह भी लिखा है कि संस्कृत में (मनुस्मृति—४३-४४; महाभारत, पृष्ठ ५, सी० जी० डी०; भागवत पृष्ठ ५, एल० जी० डी०) "द्राविडी" शब्द का "विभाषा" के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि दक्षिण की भाषाओं की भिन्नता का स्पष्ट ज्ञान उन्हें नहीं था।

तेलुगु को आर्य-परिवार की भाषा मानने के लिए असंख्य उदाहरण उपलब्ध होते हैं। ई० सन् ग्यारहवीं शती में तेलुगु के आदि महाकवि श्री नन्नय भट्टकृत "आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणी" नामक व्याकरण द्वारा भी इस बात की पुष्टि होती है कि तेलुगु का प्राकृत भाषाओं के साथ निकट सम्बन्ध है। यथा—

> "आद्यप्रकृतिः प्रकृतिश्चाद्ये
> एषातयोर्भवेत् विकृतिः।

अर्थात् प्रथम प्रकृति संस्कृत तथा द्वितीय प्रकृति प्राकृत—ये दोनों इस भाषा के पूर्व के रूप हैं। आन्ध्र भाषा उनकी विकृति से प्रादुर्भूत हुई है, अर्थात् संस्कृत के तत्समों और तद्भवों का आन्ध्र भाषा ने जिस प्रकार का अनुकरण किया है, वैसा ही अनुकरण उसने प्राकृत भाषा का भी किया है। आन्ध्र (तेलुगु) भाषा

के शब्द-समूह के प्रधानतः तत्सम, तद्भव तथा देशी या देश्य ये तीन विभाग किये जाते हैं। तत्सम और तद्भव शब्दों के आधार पर उनकी उत्पत्ति पर विचार करने में कोई विवाद ही नहीं उठता। देश्य शब्दों को लेकर ही उपर्युक्त भाषा-शास्त्रियों ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। डाक्टर चिलुकूरि नारायण राव ने तेलुगु भाषा को प्राकृतजन्य भाषा सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण उपस्थित किये हैं, उनका समुचित और सप्रमाण समाधान श्री गंटिजोगि सोमयाजुलु ने अपने "आन्ध्र भाषा विकास" में किया है। परन्तु डाक्टर नारायण राव के दिये गये प्रमाण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उन्होंने तेलुगु भाषा का प्राकृत के साथ जन्य-जननी सम्बन्ध स्थापित करते हुए चौदह प्रमाण उपस्थित किये हैं। उनमें यहाँ कतिपय मुख्य प्रमाणों पर विचार किया जायगा, क्योंकि ये प्रमाण जहाँ तेलुगु को द्राविड़ भाषा सिद्ध करने में पर्याप्त हैं, वहीं इसे प्राकृतजन्य भाषा सिद्ध करने में भी। अतः इनकी सम्यक् विवेचना आवश्यक है।

द्राविड़ भाषाओं में, द्राविड़ भाषा का शब्द-समूह, संस्कृत के शब्द-समूह की अपेक्षा अधिक है। इस प्रश्न का समाधान तेलुगु को आर्य-भाषा माननेवाले विद्वान् यों देते हैं—"बिशप काल्डवेल ने द्राविड़ भाषाओं में संस्कृत के शब्द-समूह को छोड़, शेष जिस शब्द-समूह को, संस्कृतेतर शब्द-समूह माना, वास्तव में वह प्राकृत शब्द-समूह है। द्राविड़ भाषाओं में देश्य शब्द कम हैं, इसमें अधिकतर प्राकृत के अपभ्रंश शब्द हैं। प्राकृत के छहों भेदों का तथा उनके अपभ्रंशों का समग्र परिचय प्राप्त करने पर हमें यही विदित होगा कि इसके देशी शब्द प्रायः प्राकृत के रूपान्तरों से उत्पन्न हुए हैं, परन्तु तेलुगु को द्राविड़-परिवार की भाषा माननेवाले भाषा-शास्त्रियों का कथन है कि शातवाहन राजा द्वारा संकलित "गाथासप्तशती" में २००० वर्ष पूर्व ही तेलुगु के असंख्य शब्द मिलते हैं। इससे हम यह जान सकते हैं कि बहुत समय पूर्व ही तेलुगु भाषा का शब्द-समूह प्राकृत भाषा में खप गया था।

तेलुगु को द्राविड़-परिवार की भाषा सिद्ध करने वाले विद्वानों का तर्क है कि द्राविड़ भाषाओं के सर्वनाम-संख्यावाचक शब्द, वाक्य-रचना इत्यादि विभाग संस्कृत से सर्वथा भिन्न हैं। द्राविड़ भाषाओं के शब्द-कोशों में देश्य शब्दों का अलग उल्लेख हुआ है। द्राविड़ भाषाओं में असंख्य ऐसे शब्द भी हैं,

जो अब तक ग्रन्थस्थ नहीं हुए हैं। द्राविड़ भाषाओं में शब्द के आधार पर लिंग निर्णय होता है। कर्मणि प्रयोग सम्बन्धार्थक सर्वनाम, द्राविड़ भाषाओं के लिए अलग से लाये गये हैं।

किन्तु प्राचीन समय से ही आन्ध्र जाति का आर्य राज्यों और उनके निवासियों के साथ विशेष सम्पर्क होने के कारण आर्य-भाषाओं का तेलुगु पर अमिट प्रभाव पड़ा है। साथ ही ई० पू० में ही आन्ध्र-राजाओं ने महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा उत्तर भारत के कतिपय प्रदेशों पर भी शासन किया था और उन लोगों ने प्राकृत भाषा को राजकीय भाषा के रूप में स्वीकार किया था। तदनन्तर बौद्ध-धर्म का भी आन्ध्र में पर्याप्त प्रचार होने से वहाँ पालि भाषा बौद्ध-विहारों और संघारामों में व्यवहृत थी। यही भाषा उस समय ज्ञान-विज्ञान का माध्यम थी। बौद्ध-विश्वविद्यालथों में सभी शास्त्र और साहित्य प्राकृत तथा पालि भाषा में ही पढ़ाये जाते थे। आचार्य नागार्जुन के व्यक्तित्व और विद्वत्ता का भी प्रभाव आन्ध्र के मेधावियों पर पड़ा था, इन कारणों से भी देशी भाषा अथवा जनसाधारण की भाषा तेलुगु वह स्थान ग्रहण न कर सकी थी, जो पालि और प्राकृत भाषाओं को उस समय प्राप्त था।

बौद्ध-धर्म का धीरे-धीरे जब आन्ध्र में ह्रास होने लगा और वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा होने लगी, तो आठवीं शताब्दी में आन्ध्र के राजाओं ने अपने दरबारों में संस्कृत को पुनः प्रोत्साहित किया। संस्कृत के पण्डितों को ही राजाश्रय प्राप्त होता था। इन कारणों से भी तेलुगु में साहित्य-रचना न हो सकी। जो कुछ साहित्य लिखा गया, उस पर प्राकृत और पालि भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

तेलुगु को द्राविड़ भाषा सिद्ध करने के लिए अनेक प्रबल प्रमाण उपलब्ध होते हैं। तेलुगु और संस्कृत की विभक्तियों और प्रत्ययों तथा वाक्य-रचना में काफी भिन्नता पायी जाती है। तेलुगु के 'ॲ', 'ऑ', 'चॅ', 'जॅ' वर्ण संस्कृत में नहीं पाये जाते। सन्धियों की दृष्टि से देखा जाय तो तेलुगु और प्राकृत में समता नहीं दिखाई देती। संख्या वाचकों और सर्वनामों में भी विशेष अन्तर पाया जाता है। क्रियाओं के काल तेलुगु में व्यापक नहीं हैं, संस्कृत में यह सुविधा है। शब्दों

के लिंग-निर्णय में भी संस्कृत, प्राकृत तथा द्राविड़ भाषाओं में विशेष अन्तर पाया जाता है।

प्राचीन तेलुगु में 'इँ', 'क', 'ण' ध्वनियों का अधिक प्रयोग होता था। आज उनका प्रयोग कम होने लगा है, साथ ही इस युग के अनुरूप शब्दों और अर्थों के अधुनातन परिवर्तन के कारण परिवर्तित हो, वे ध्वनियाँ प्रामाणिक बन गयी हैं। द्राविड़-परिवार की भाषा होते हुए भी माण्डलिक भेदों के कारण मूल द्राविड़ से भिन्न हो क्रमशः यह भाषा विकसित होती रही और संस्कृत भाषा के सम्पर्क और अन्यान्य राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण वह आर्य-भाषाओं से पुष्ट होती गयी। पहले से ही साधारण जनता में तेलुगु का व्यवहार होता था, किन्तु राज-दरबारों और पण्डित-समाज में संस्कृत का आदर होता था। इन कारणों से भी तेलुगु पर आर्य-भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यह सब होते हुए भी तेलुगु के विशुद्ध मूल शब्दों का स्वरूप, बनावट और उसकी अर्थवत्ता तमिल तथा कन्नड़ के अधिक निकट है। ऐसे शब्द पहले से व्यवहार में थे, किन्तु ग्रन्थस्थ नहीं हुए थे। यही कारण है कि उनमें परिवर्तन होता गया है। संस्कृत के तत्सम शब्द पण्डितों द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त होते रहे हैं, इसलिए ये शब्द जब तेलुगु में व्यवहृत होने लगे तो ये कोष, व्याकरण और काव्यों में भी स्थायी रूप प्राप्त करने लगे। इसके अतिरिक्त ठेठ तेलुगु शब्द नवीन भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कहीं-कहीं अनुपयुक्त मान लिये गये और उनके स्थान पर संस्कृत शब्दों को ग्रहण किया गया।

द्राविड़ भाषाओं में तमिल अत्यन्त प्राचीन भाषा है। इस भाषा को बहुत समय पूर्व ही राजाश्रय प्राप्त हुआ। यही कारण है कि ई० पूर्व ही तमिल में सुन्दर एवं प्रौढ काव्यों की रचना हुई। यों तो सभी द्राविड़ भाषाओं का प्रादुर्भाव एक ही भाषा से हुआ, जो मूल द्राविड़ मानी जाती है। बहुत समय पूर्व चारों द्राविड़-परिवार की भाषा-भाषी जनता सम्भवतः एक ही स्थान पर रहा करती थी। धीरे-धीरे जनसख्या की वृद्धि के साथ ये लोग प्रवासी बनकर दूसरे प्रदेशों में जाने लगे। उन प्रान्तों की जलवायु, वहाँ की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण उनकी मूल भाषा में भी कालान्तर में परिवर्तन होने लगा। मूल द्राविड़ भाषा उच्चारण-भेद के कारण विभिन्न प्रदेशों में रूपान्तरित हो,

क्रमशः भिन्न-भिन्न बोलियों के रूप में तथा कुछ समय के उपरान्त भिन्न-भिन्न भाषाओं के रूप में परिवर्तित हुई। इनमें तमिल सबसे प्राचीन भाषा है। राजाओं के प्रोत्साहन से प्राचीन समय में ही तमिल में साहित्य का सर्जन हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि इस प्रदेश के राजा देशी भाषा में अपने राज-काज-सम्बन्धी समस्त कार्य सम्पन्न करते थे। आज तो भारत में अंग्रेजी राज-भाषा का स्थान ग्रहण कर आदर का पात्र बनी हुई है और वह समस्त भारतीय भाषाओं और भारतीय संस्कृति पर हावी है। तीन-चार वर्ष पूर्व तक हैदराबाद में वहाँ के शासकों के कारण ही उर्दू राजभाषा बनी थी, अतः वहाँ पर तेलुगु को गौण स्थान प्राप्त था। वहाँ उर्दू का विशेष विकास हुआ और उसे विश्वविद्यालय के अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनाया गया, पर तेलुगु प्रायः उपेक्षित रही। इस प्रकार के राजनीतिक कारण से ही कतिपय भाषाएँ एक विशाल भू-भाग में व्यवहृत होने पर भी पूर्ण रूप से सभी क्षेत्रों में विकसित नहीं हो पातीं। आन्ध्र देश में उन दिनों में संस्कृत और प्राकृत भाषाओं को वही मान्यता और राजादर प्राप्त था, जो आज भारत में अंग्रेजी को प्राप्त है। ई० पूर्व में तेलुगु, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओं के स्वरूप में बहुत कम अन्तर रहा होगा, परन्तु तमिल भाषा ही इन सबमें ऐसी भाषा थी, जो बहुत शीघ्र ग्रन्थस्थ हुई। व्याकरण इत्यादि शास्त्र-ग्रन्थों का भी इसमें निर्माण हुआ। अतः इस भाषा में परिवर्तन की गति मन्द पड़ गयी। उसने अपने देश की परिस्थितियों के अनुरूप अपने को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। इस बीच में असंख्य परिवर्तनों के साथ आज का तमिल-रूप हमारे सामने है। तेलुगु भाषा में बड़ी शीघ्र गति के साथ परिवर्तन होता रहा है। अनेक नयी भाषाओं के सम्पर्क से भी इसमें रूप-परिवर्तन होते रहे और ११वीं शती के प्रारम्भ में महाभारत की रचना के साथ इसके रूप में स्थिरता आ सकी। इसी प्रकार कन्नड़ और मलयालम् भाषाएँ भी परिवर्तित होती रहीं, जिन्हें तमिल से अधुनातन माना जा सकता है।

तेलुगु को द्राविड़-परिवार की भाषा सिद्ध करने के लिए असंख्य प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं। संस्कृत तथा अन्य आर्य-भाषाओं में प्रयुक्त न होने वाले कुछ ध्वनि-चिह्न इन भाषाओं में हैं। उनमें मुख्य चिह्न--'ऎ', 'ऒ', चॅ', जॅ', 'ऱ', ळ आदि हैं।

दक्षिण की भाषाओं को एक परिवार की भाषाएँ मानने के लिए तथा उनमें अभिन्नता दर्शाने के लिए उनके व्याकरण के प्रमाण पर्याप्त हैं। यहाँ विस्तार के भय से उनका विपुल परिचय न देकर संक्षेप में ही इनका उल्लेख किया गया है। मुख्यत: भाषा के स्वरूप के निर्धारण में सर्वनाम, विशेषण और क्रिया-शब्दों की बनावट और उनका अर्थ एवं वाक्य-रचना, उसका स्वभाव, शब्दों का धातु-रूप, उसकी निष्पत्ति तथा संख्यावाचकों आदि को कसौटी मानते हैं। उपर्युक्त विषयों के आधार पर द्राविड़ भाषाओं की तुलना करें, तो हमें उनमें असाधारण समानता दिखाई देगी। भाषा के स्वरूप-सारूपता व स्वभाव पर दृष्टि डालें तो हमें विदित होगा कि ई० सन् प्रथम सदी में तेलुगु, तमिल और कन्नड़ भाषाएँ अत्यन्त निकट थीं। इनका पूर्ण विवेचन करना तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्वानों का कार्य है, यहाँ हम इन भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों की समानता के थोड़े-से उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं और साथ में उनका अर्थ समझने के लिए उनके हिन्दी-पर्याय भी दे रहे हैं—

तेलुगु	**तमिल**	**कन्नड़**	**मलयालम**	**हिन्दी-पर्याय**
तल	तलै	तले	तल	सर
तेर	तिरै	तेरे	तिर	परदा
नेनु	नान्	नानु	आन	मैं
कन्नु	कण्	कण्णु	कण्णु	आँख
नीवु	नी	नीनु	नी	तू, तुम
ऑकटि	ऑन्नु	ऑन्डु	ऑरू	एक
रेण्डु	इरण्डु	एरडु	रण्डु	दो
नेनोस्तुन्ना	नावरे	नावर्तने	अन् वरुन्नु	मैं आता हूँ
गट्टु	कट्टु	गट्टु	केट्टु	मेंड़
पेरु	पेयर	पेसरु	पेरु	नाम
कोलनु	कुलं	कोलं	कुलं	तालाब

इस भाषा में प्राकृत और संस्कृत के शब्दों के समानार्थी तथा रूप-साम्य रखनेवाले असंख्य शब्द पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि तेलुगु-

शब्दों के मूल रूप, प्राकृत-शब्द भी हो सकते हैं। वे इस बात का समर्थन करने के लिए सैकड़ों शब्दों के प्रमाण देते हैं, जैसे—

प्राकृत	तेलुगु
त्यक्त	चेत्त
त्वक्	तोक्क
मृषा	मोसमु
कूज	कूयु
भक्ख	बोक्कु
पत	पद (चल)
गस	कसवु
पड्डी	पड्ड (गाय)
वर्तिका	वत्ति
घाय	गायमु
अक्करमु	अख्खर
कत्तरी	कत्तिरि
कंभ	कंबमु
कम्मार	कम्मर

उक्त प्रमाणों के सन्दर्भ में अब हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि तेलुगु, द्राविड़-परिवार की भाषा होते हुए भी आर्य-परिवार की भाषाओं से अधिक प्रभावित हुई तथा युग के अनुरूप अपने शब्द-समूह और अपनी अभिव्यंजना-शक्ति को समुन्नत करते हुए गत सहस्र वर्षों में उसने प्रशंसनीय विकास किया है। इस काल में अन्य द्राविड़ और आर्य-भाषाओं के शब्दों के साथ अंग्रेजी, फ़ारसी, फ्रेंच इत्यादि विदेशी भाषाओं के अनेक शब्द तेलुगु में भी आ गये हैं। अतः हम तेलुगु भाषा के विकास-क्रम को तीन युगों में बाँट सकते हैं। वे ही क्रमशः प्राचीन युग अथवा नन्नय का पूर्व युग (ई० सन् २१० से लेकर १०४० तक), मध्य-युग अथवा नन्नय युग (ई० सन् १०४० से १९४० तक) और आधुनिक युग अथवा नवीन युग (ई० सन् १९४० से आज तक) हैं।

प्राचीन युग

इस समय के शिलालेखों में प्रयुक्त आन्ध्र के ग्रामों की नामावली और उसमें प्रयुक्त वर्ण जैसे "र्न" "ळ" आदि मूल द्राविड़-भाषा का स्मरण दिलाने में समर्थ हैं। संस्कृत के तत्सम शब्द भी तेलुगु में प्रयुक्त होते समय तेलुगु का बाना पहन कर ही प्रयोग में आये हैं। तेलुगु-समासों की उत्पत्ति के क्रम को देखने पर भी हमें ज्ञात होगा कि तेलुगु भाषा अपने पूर्ण अस्तित्व का परिचय देने के साथ-ही-साथ विकास दशा को प्राप्त करती रही है। सातवीं शती से तेलुगु भाषा में उल्लिखित अनेक गद्य-पद्यात्मक शिलालेख उपलब्ध होते हैं। इस समय की भाषा के रूप और उसकी ध्वनियों में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देता है। तेलुगु का उपलब्ध प्रथम छन्द "तरुवोज़" है। नन्नय (मध्य-युग) के पूर्व तक इसमें एक भी संस्कृत का वर्णवृत्त नहीं दिखाई देता, सभी देशी छन्द ही प्राप्त होते हैं। इस समय की भाषा में शकटरेफ़ "ऱ" तथा शकटरेफ़ के ही संयोग द्वारा "न" कार में उत्पन्न होनेवाली ध्वनि, संस्कृत के तत्सम शब्दों को तेलुगु में आत्मसात् करने की पद्धति, उसके विभक्ति-प्रत्यय, सन्धि, विशेषण, संख्यावाचक, क्रियारूप, अव्यय, धातु-रूप, वाक्य-रचना-पद्धति और शब्द-समूह आदि की दृष्टि से विचार करने पर भी हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि तेलुगु भाषा अपनी मूल भाषा के स्वरूप की रक्षा करते हुए अन्य भाषाओं के सम्पर्क से विकास के पथ पर अग्रसर होती रही है। इस अवधि में इसमें देश्य या देशी शब्द भी अधिक पाये जाते हैं। संस्कृत के तत्सम-रूप क्रम से स्थिरता को प्राप्त होने लगे और प्राकृत शब्द भी क्रमशः तेलुगु में खपते गये। सातवीं शती के शिलालेखों की भाषा का अध्ययन करने पर यही मालूम होता है कि तेलुगु अपनी सहोदरी भाषाओं (तमिल और कन्नड़) से ई० पू० में ही अलग होती, आन्ध्र में एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित होती और अपनी मूल भाषा के संप्रदायों तथा ध्वनियों की रक्षा करती यह संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से शब्द समूहको ग्रहण करती समृद्ध होती रही, परन्तु विशेषता यह थी कि उन भाषाओं के लक्षणों के समक्ष यह अपने अस्तित्व की भी रक्षा करती रही है।

मध्ययुग

नन्नय (मध्य-युग) में महाभारत की रचना द्वारा तेलुगु भाषा के विकास

में द्वितीय अध्याय प्रारम्भ हो जाता है। नन्नय के पूर्व इस भाषा में गीत, पद इत्यादि रचे गये, परन्तु शिष्ट समाज द्वारा मान्यता प्राप्त उत्कृष्ट ग्रन्थों का इसमें सर्जन नहीं हुआ था। अतः उस समय तक तेलुगु भाषा का कोई प्रामाणिक रूप निर्धारित नहीं हुआ था। भाषा के लिए समुचित लक्षण भी निरूपित नहीं किये गये थे। परन्तु जब नन्नय को महाभारत-जैसे प्रौढ़ तथा उत्कृष्ट ग्रन्थ का सर्जन करना पड़ा, तब उन्हें उस महान् कार्य के उपयुक्त तेलुगु का संस्कार भी करना पड़ा। उन्होंने संस्कृत भाषा के आधार पर तेलुगु में भी सुधार किया। इसके अतिरिक्त "आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणी" नामक व्याकरण-ग्रन्थ की रचना कर उन्होंने तेलुगु भाषा पर अनुशासन किया और वागनुशासक (अर्थात् वाक् या वाणी पर अनुशासन करनेवाला) नामक उपाधि प्राप्त की और संस्कृत के सम्प्रदायों को तेलुगु भाषा के अनुकूल बनाकर उसे एक समृद्ध भाषा बनाया। नन्नय का महाभारत व्यासकृत संस्कृत महाभारत का तेलुगु रूपान्तर है, अतः तेलुगु में रचे इस ग्रन्थ में भी संस्कृत के दीर्घ समास, संस्कृत के वृत्त, तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग नन्नय भट्ट ने किया। इसके तत्सम शब्दों के साथ 'डु', 'मु', 'वु', 'लु' तथा अन्य प्रत्यय जोड़कर उन्हें तेलुगु के शब्द-रूप में व्यवहृत किया गया।

परन्तु नन्नय के पश्चात् प्रामाणिक तेलुगु भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। यह क्रम तो करीब ई० सन् १९४० तक चलता रहा, किन्तु सन्धि, प्रत्यय तथा कुछ देशी शब्द भी साहित्यिक भाषा में अपना लिये गये। नन्नय ने तत्सम शब्द-प्रधान-शैली का प्रचार किया, उनके बाद के कवियों ने संस्कृत के प्रभाव को तेलुगु भाषा पर से कम करने का प्रयत्न किया और शुद्ध तेलुगु में ग्रन्थ-रचना करने की परम्परा चलायी। इस बीच में अन्य भाषाओं के शब्द भी तेलुगु में मिलते गये और उन सब शब्दों को तेलुगु ने भली-भाँति आत्मसात् कर लिया। बिशप काल्डवेल का विचार है कि निम्नलिखित शब्द संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं से तेलुगु में आ गये हैं—उदाहरणार्थ, अक्का, अत्ता, आणि, कोट्ट, नीर, पट्टनम्, अटवि, मीन, वलय, शुक्ति इत्यादि।

द्राविड़ भाषाओं के अनेक शब्द तेलुगु में आये, जैसे—तमिल, तिरुचूर्णम्, मलिग, नंबि, तंबि, कैंकर्यमु, अलाकु, पडि, तिरुनाकलु, संबलम, तिरुवाराधनमु

इत्यादि । कन्नड़ के अनेक ऐसे शब्द तेलुगु में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे—अरसू, गंड-पेंडियरमु, देवर, बेडलु, बिडारु इत्यादि ।

इसी युग में मुसलमानों का दक्षिण देश पर आक्रमण हुआ और उन लोगों ने यहाँ अपना राज्य स्थापित कर शासन भी किया । बहमनी तथा गोलकोंडा के नवाबों के राज्य-काल में अनेक अरबी, फारसी और उर्दू शब्द तेलुगु में आये, जैसे—गुमाश्ता, दस्तावेजु, खैदु, फसली, कोत्वालु, अमलु, नायब, दीवान, अर्जी, जेबु, मेज़ा, चाकू, जमेदार, तुपाकि, तगादा, रयितु, खजाना, बाकी, इनामु इत्यादि ।

बाद में जब अंग्रेजों ने भारत में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी स्थापित कर व्यापार करना प्रारम्भ किया, तो उनकी देखा-देखी फ्रान्स तथा पुर्तगालवासियों ने भी हिन्दुस्तान में अपना व्यापार बढ़ाया, धीरे-धीरे यहाँ के कुछ प्रदेश भी उन्होंने हस्तगत किये । इन विदेशियों के सम्पर्क से उनके भी अनेक शब्द भारतीय भाषाओं में आये । तेलुगु भी उनके प्रभाव से कैसे अछूती रह सकती थी, इसमें समाहित शब्दों के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे—रिजिस्टर, मेंबर, कोर्ट, ला, डाक्टर, पेट्रोल, रिकार्ड्, षापु, होटल, गवर्नर, स्टेशन, टिन्नु, आफ़ीस, स्कूल, डिग्री, टैमु, लाटरी, केसु, स्टाम्पु इत्यादि अंग्रेजी-शब्द और फादिरि, बोत्तामु, कमीजु, परासु, फिरंगि, कमानु, बालची, परासु इत्यादि फ्रेन्च शब्द और अनास, अलमारु, कप्तानु, बिस्कोतु, काज़ा, पेना, तु० वालु, इस्त्री इत्यादि पुर्तगीज शब्द तेलुगु भाषा में यथावत् व्यवहृत हुए हैं ।

इस प्रकार अन्य देशी व विदेशी भाषाओं के शब्दों के सम्पर्क से इस युग में तेलुगु भाषा के शब्द-कोष में पर्याप्त वृद्धि हुई ।

आधुनिक युग

आधुनिक युग में वैज्ञानिक उन्नति, नवीन पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली और विचार-शैली के परिवर्तन तथा राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के वादों के प्रचलन के कारण भाषा के प्राचीन स्वरूपों और भाषा की अभिव्यंजना-शैली में परिवर्तन होना अनिवार्य हो गया । इनके सन्दर्भ में भाषा की परम्परानुगत रीतियों का भी नये दृष्टिकोण से मूल्यांकन होने लगा । यद्यपि तेलुगु भाषा ने देशी तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों को इस प्रकार आत्मसात् कर लिया था कि

वे तेलुगु के ही शब्द प्रतीत होने लगे थे, फिर भी चिन्नय सूरि के समय में जब तेलुगु अत्यधिक साहित्यिक होने लगी और जनता से दूर हटने लगी, तो भाषा की शैलीगत विशेषताओं पर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ। ऐसी स्थिति में साहित्यिक भाषा के विरुद्ध एक जबर्दस्त आन्दोलन हुआ, जो तेलुगु में व्यावहारिक भाषा अर्थात् लोक-भाषा के आन्दोलन के नाम से विख्यात हुआ। इस आन्दोलन के नेता डा० गिडुगु राममूर्ति पंतुलु थे और इस आन्दोलन को बल देनेवाले महाकवि गुरजाडा अप्पाराव तथा गद्यब्रह्म कंदुकूरु वीरेशलिंगम् पंतुलु थे। डाक्टर राममूर्ति पंतुलु का विचार है कि भाषा में परिवर्तन किसी एक निश्चित युग में ही नहीं होता, बल्कि सदा होता ही रहता है। आदिकवि ने अपने समय के शिष्ट व्यावहारिक रूप को काव्य-भाषा के रूप में ग्रहण किया, परन्तु वह भी काल-क्रम में परिवर्तित होती गयी और आज हमारे सम्मुख वह कुछ दूसरे ही रूप में उपस्थित है। हिन्दी में भी वीरगाथा-काल, भक्ति-काल, रीति-काल और आधुनिक काल की भाषाओं में विशेष अन्तर दिखाई देता है। यहाँ तक कि हिन्दी की खड़ी बोली के प्रारम्भिक रूप में और उसके आज के रूप में काफी अन्तर दिखाई देता है। भाषा की ऐसी परिवर्तनशीलता ने भाषा के स्वरूप पर विचार करने के लिए तेलुगु के विद्वानों को भी बाध्य किया था।

किसी प्रदेश की जीवन्त भाषा को देश्य भाषा कहते हैं। संस्कृत भाषा में रचित एक प्राचीन तेलुगु व्याकरण में कहा गया है—"नित्या प्रवाहिनी देश्या"—अर्थात् "भाषा नदी के समान सतत परिवर्तनशील होती है।" उसीमें आगे शब्द के रूप के सम्बन्ध में बताया गया है—"जनता के प्रचलित प्रयोग के आधार पर शब्द का शुद्ध रूप निर्धारित करना चाहिए।" इसी देश्य रूप को तेलुगु में व्यावहारिक भाषा कहा गया है, अर्थात् जो जनता के दैनन्दिन व्यवहार में प्रयुक्त होनेवाली भाषा है। परन्तु ग्राम्य भाषा इसके अन्तर्गत नहीं आती। भाषा में जहाँ भी कृत्रिमता आती है और जब वह काव्यबद्ध होती है, तो ऐसे प्रयोग कालान्तर में लुप्त होते जाते हैं। यही कारण है कि प्राचीन भाषा के अनेक शब्द आज प्रचलन में नहीं पाये जाते।

आज तेलुगु की व्यवहार-भाषा (बोलचाल की प्रचलित भाषा) और साहित्यिक भाषा में बड़ा अन्तर है। व्याकरण के आधारभूत सिद्धान्तों का

उदारता के साथ पालन करते, तो यह भेद दूर हो सकता था, किन्तु चिन्नय सूरि नामक एक प्रकाण्ड पण्डित ने अपने समय की गद्य-लेखन की परम्परा के विरुद्ध "पंचतन्त्रम्" के प्रथम दो भागों का पद्य से गद्य में रूपान्तर करके इसके विकास की स्वाभाविक धारा को रोक दिया। उनकी भाषा में संस्कृत के शब्द व समासों की प्रधानता थी। परवर्ती लेखकों ने उन्हीं की शैली का अनुकरण किया। उस शैली को आधार बनाकर श्री चिन्नयसूरि ने एक उत्तम व्याकरण-ग्रन्थ प्रस्तुत किया, जो 'बाल-व्याकरण' नाम से विख्यात है और जो अत्यन्त प्रौढ़ व्याकरण है। श्री वीरेशलिंगन् ने पहले चिन्नय सूरि द्वारा प्रवर्तित गद्य-शैली का अनुकरण किया, बाद को उन्होंने भी सरल शैली के आदर्श का ही अनुकरण किया। स्कूल-कॉलेजों में जब वही गद्य-शैली प्रामाणिक मानी जाने लगी, तो अंग्रेजी के प्रभाव के कारण अंग्रेजी शिक्षितों की बोलचाल की भाषा विकृत हो गयी। श्री राममूर्ति के व्यावहारिक भाषा के आन्दोलन के पीछे उपर्युक्त सभी कारण विद्यमान थे।

डा० राममूर्ति पंतुलु ने अपने बाद इसका अधिकाधिक प्रचार करने के निमित्त मद्रास और आन्ध्र के कॉलेजों में जाकर अपने सिद्धान्तों का परिचय देते हुए उनका प्रतिपादन किया। उन्होंने "मॉडर्न तेलुगु मूवमेंट" (वर्तमान तेलुगु-आन्दोलन) के समर्थन में "सच्चा सम्प्रदाय", "आन्ध्र पण्डित भिषक्कुल भाषा भेषजमु" और "बालकवि शरण्यम्" नामक पुस्तकें लिखकर अपने सिद्धान्तों के महत्त्व का परिचय दिया। उनके बाद में उनके सिद्धान्तों की यथार्थता समझने पर विद्वानों, पत्रकारों और नयी पीढ़ी के प्रबुद्ध पाठकों ने भी उनका समर्थन व स्वागत किया। आज अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, पुस्तकों की रचना में भी इसी व्यावहारिक रूप का प्रयोग हो रहा है, परन्तु यहाँ यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि विश्वविद्यालयों तथा सरकार ने पहले इसको मान्यता नहीं दी, परन्तु तेलुगु भाषा के इस व्यावहारिक रूप-सम्बन्धी सिद्धान्तों से वे अवश्य प्रभावित हुए। बहुत शीघ्र ही इस रूप को सरकारी मान्यता भी प्राप्त होने वाली है। तेलुगु में यदि स्वस्थ साहित्य का सर्जन अधिकाधिक होना है, तो भाषा के उपर्युक्त दोनों रूपों के बीच की विभाजन-रेखा का मिट जाना आवश्यक है।

विचित्र बात तो यह है कि ऐसा आन्दोलन हमें अन्य भारतीय भाषाओं में देखने को नहीं मिलता। तेलुगु भाषा में एक स्वस्थ परम्परा तथा आमूल परिवर्तन लाने की दिशा में यह बहुत बड़ा कदम कहा जा सकता है। इस वाद के समर्थक प्रतिभाशाली विद्वान् इसके व्यावहारिक रूप को समस्त क्षेत्रों में स्थान दिलाने में प्रयत्नशील हैं। इस व्यावहारिक रूप के प्रचलन के लिए व्याकरण भी प्रस्तुत किये गये हैं, अतः हम इस बात का विश्वास कर सकते हैं कि भविष्य में इसी रूप का सर्वत्र समादर होगा।

४

तेलुगु साहित्य

काल-विभाजन

तेलुगु साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आधुनिक तेलुगु साहित्य के युग-निर्माता स्व० वीरेशलिंगम् पंतुलु ने अपने "आन्ध्र कवुल चरित्रमु" (आन्ध्र कवियों का इतिहास) को अधिक सुगम एवं सरल बनाने के विचार से कवियों को काल-क्रम के अनुसार तीन प्रधान भागों में बाँटा है--(१) प्राचीन कवि, (२) मध्य युग के कवि और (३) आधुनिक कवि। श्री गुरजाड़ राममूर्ति ने अपने "कवि जीवितमुलु" (कवियों की जीवनियाँ) नामक ग्रन्थ को कवियों की रचनाओं के आधार पर क्रमशः (१) महाभारत के कवि, (२) रामायण के कवि और (३) प्रबन्धों के कवि नाम से तीन भागों में विभाजित किया है। परन्तु विषय की दृष्टि से तेलुगु में महाभारत, रामायण और प्रबन्ध-काव्य ही नहीं, अपितु नाटक, कहानी, उपन्यास, जीवनियाँ, समीक्षा-ग्रन्थ, शतक, खण्ड-काव्य, रीति-ग्रन्थ, यात्रा-साहित्य और शास्त्र-ग्रन्थ आदि भी रचे गये हैं। तेलुगु का शतक-साहित्य इतना समृद्ध है कि उसने अपना एक युग ही बना लिया है। यदि उक्त काल-विभाजन को स्वीकार कर लिया जाय, तो ऐसी दशा में उपरि लिखित ग्रन्थों का प्रतिनिधित्व करनेवाला युग ही नहीं रहा।

श्री वंगूरि सुब्बाराव ने "आन्ध्र वाङमय चरित्र" (आन्ध्र साहित्य का इतिहास) लिखा। यद्यपि लेखक ने नवीन मार्ग का अनुसरण किया और इसके पूर्व रचित ग्रन्थों की अपेक्षा यह ग्रन्थ साहित्य के इतिहास की परिभाषा के अत्यन्त निकट है, किन्तु यह भी समग्र दृष्टि से सार्थक नहीं हुआ। उनका दृष्टिकोण ही कुछ भिन्न था। श्री भोगराजु नारायणमूर्ति ने "आन्ध्र-कवित्व-चरित्रमु" लिखा, इसमें कविता का इतिहास वर्णित है। केवल कविता का इतिहास ही साहित्य

का इतिहास नहीं कहा जा सकता। इस ग्रन्थ का क्षेत्र सीमित है। तेलुगु-साहित्य का समग्र इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयत्न मद्रास विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग द्वारा हुआ। तेलुगु विभाग के अध्यक्ष श्री एन० वेंकटराव ने कई वर्षों के अनुसन्धान के बाद "तेलुगु-साहित्य का बृहत् इतिहास" की रचना प्रारम्भ की। उसके दो भाग अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। यह पुस्तक लगभग दो हजार पृष्ठों में समाप्त होगी। श्री शिष्टा रामकृष्ण शास्त्री ने भी मद्रास विश्वविद्यालय की ओर से "आन्ध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु" प्रथम भाग (A complete History of Telugu Literature Vol. I) प्रस्तुत किया। यह करीब आठ सौ पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें ई० सन् चौदहवीं शताब्दी तक का साहित्य मिलता है। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ अत्यन्त विपुल रूप में लिखे गये हैं। अपूर्ण होने के कारण उनके काल-विभाजन पर विचार नहीं किया जा सकता, परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि ये दोनों ग्रन्थ अनुसन्धान करनेवालों तथा तेलुगु-साहित्य का समग्र परिचय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवालों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। यद्यपि इन ग्रन्थों में कवि और काव्य का विपुल परिचय सन्निहित होने के कारण युग की प्रवृत्तियों का जैसा चित्रण होना चाहिए, वैसा नहीं हो पाया है।

श्री खण्डवल्ली लक्ष्मीरंजनम् ने "आन्ध्र-वाङ्मय-चरित्र-संग्रहमु" (आन्ध्र-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास) लिखा है। अन्य लोगों ने कवियों की जीवनियाँ और साहित्य की विधाओं का परिचय दिया है। ये सब ग्रन्थ अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी एवं प्रामाणिक भी हैं। इस सन्दर्भ में श्री के० वेंकटनारायण राव कृत "आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहमु" (तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त इतिहास) उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ में लेखक ने कुछ निश्चित सिद्धान्तों का पालन किया है। उनके आधार पर तेलुगु-साहित्य को पाँच प्रधान भागों में बाँटा गया है। आवश्यकतानुसार विषय और युग की परिस्थितियों का सम्यक् परिचय देने के विचार से उनके उप-विभाग भी किये गये हैं। प्रत्येक युग की राजनीतिक परिस्थितियों का भी प्रारम्भ में परिचय दिया गया है और युग की रीतियों का संक्षेप में परिचय कराया गया है। कवियों के परिचय के साथ साहित्य में उनका स्थान भी निर्धारित किया गया है। इसमें अनावश्यक वर्णन और प्रशंसा कहीं भी देखने को नहीं मिलती। केवल कवियों की कविता के लक्षण बताये गये हैं। इस

ग्रन्थ में विषय-विभाजन तथा रचना-पद्धति में नये मार्ग का अनुसरण किया गया है। उक्त ग्रन्थ के काल-विभाग यों हैं—

प्रथम खण्ड (१) प्राचीन कविता ई० सन् २८ से १००० तक।

द्वितीय खण्ड (२) पुराण कविता ई० सन् १००१ से १३८० तक।

(अ) चालुक्य चोड युग (ई० सन् १००१ से १२०० तक)।

(आ) काकतीय युग (ई० सन् १२०१ से १३८० तक)।

तृतीय खण्ड (३) काव्य तथा प्रबन्ध-कविता ई० सन् १३८१ से १६५० तक।

(अ) रेड्डी, नायक और कर्नाटक युग : काव्य (ई० सन् १३८१ से १५०० तक)।

(आ) श्री रायल युग : प्रबन्ध कविता (ई० सन् १५०१ से १६५० तक)।

चतुर्थ खण्ड (४) अर्वाचीन कविता : ई० सन् १६५१ से १८९० तक।

(अ) मध्य युग—शतक :(ई० सन् १६५१ से १८०० तक)।

(आ) सन्धि युग – (ई० सन् १९०१ से १९०० ?तक)।

पंचम खण्ड (५) नवयुग : ई० सन् १९०० से आज तक।

इस ग्रन्थ में लेखक ने काव्य-रचना-काल और काव्य के लक्षणों के आधार पर साहित्य के विकास-क्रम का विभाजन किया है, जो अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, परन्तु इस विभाजन के सम्बन्ध में भी आज विद्वानों में मतभेद है। इसमें आधुनिक युग का अति संक्षिप्त परिचय हो मिलता है तथा अन्य युगों के भी प्रसिद्ध कवियों का परिचय तथा शेष कवियों की नामावली मात्र उल्लिखित है। तेलुगु-साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक श्री कोरडा रामकृष्णय्या ने तेलुगु-साहित्य के इतिहास का निम्न प्रकार से विभाजन किया है—

१. अज्ञात युग	सन् ई० पू०	से १००० तक
२. भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग	ई० सन् १०००	से १३५० तक
३. सन्धि युग या श्रीनाथ युग	,,	१३५० से १५०० तक
४. प्रबन्ध युग या 'रायल युग'	,,	१५०० से १७०० तक
५. दक्षिण-देश वाङ्मय युग	,,	१७०० से १९०० तक
६. आधुनिक युग	,,	१९०० से आज तक

डा० निडदवोलु वेंकटराव ने तेलुगु-साहित्य के क्रमिक विकास को नौ कालों में बाँटा है। परन्तु साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा विषय-क्रम के आधार पर निम्न प्रकार से तेलुगु-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन किया जा रहा है, अत्यन्त समीचीन प्रतीत होगा। यहाँ हम सम्पूर्ण तेलुगु वाङ्मय को छः प्रधान कालों में विभाजित कर रहे हैं। प्रत्येग युग की विशेषताओं के साथ उसकी विविधताओं का भी परिचय कराया जायगा। इन कालों के उप-विभाग भी किये जा सकते हैं। उपयुक्त सन्दर्भों में उनका भी उल्लेख किया जायगा। यहाँ जिस प्रकार भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग में चालुक्य, चोड वंशी तथा काकतीय नरेशों की साहित्य-सेवाओं का विपुल परिचय कराया जायगा, वैसे ही सन्धि-युग या श्रीनाथ युग में रेड्डी तथा नायक राजाओं के दरबारों की साहित्यिक रीतियों और प्रवृत्तियों का भी पर्याप्त परिचय दिया जायगा। युग के लक्षण बताते समय तेलुगु-साहित्य की कतिपय विशेषताओं का भी तदनुरूप उल्लेख किया जायगा, जैसे—शतक, द्व्यर्थी काव्य, अवधान कविता, दण्डक आदि। उपर्युक्त समस्त विशेषताओं से पूर्ण तेलुगु वाङ्मय को मोटे रूप से हम छः युगों में इस प्रकार बाँट सकते हैं—

(१)	अज्ञात युग	ई० पू० २८ से १००० ई० तक
(२)	भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग	ई० सन् १००१ से १३५० तक
(३)	सन्धि युग या श्रीनाथ युग	,, १३५१ से १५०० तक
(४)	प्रबन्ध युग या 'रायल युग'	,, १५०१ से १७०० तक
(५)	अर्वाचीन युग या संक्रान्ति युग	,, १७०१ से १८५० तक
(६)	आधुनिक युग या नवीन युग	,, १८५१ के बाद

उपर्युक्त युगों का नामकरण उस समय की प्रमुख प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर किया गया है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि उस युग में अन्य प्रवृत्तियाँ थीं ही नहीं। जैसे अज्ञात युग में तेलुगु-साहित्य था ही नहीं, अथवा भाषान्तरीकरण युग या कवित्रय युग में ये तीन ही कवि हुए और केवल भाषांतरीकरण, अर्थात् अनुवाद मात्र ही होता रहा, मौलिक रचनाएँ नहीं हुईं; यह समझना गलत होगा। भाषांतरीकरण युग में कवित्रय के अलावा अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए,

जिन्होंने अपने मौलिक और प्रौढ़ काव्यों के द्वारा तेलुगु-वाङमय को समृद्ध बनाया। यही बात अन्य युगों के सम्बन्ध में भी घटित होती है।

इस प्रसंग में प्रत्येक युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिचय कराने के पूर्व उस युग की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी संक्षेप में परिचय कराया जायगा।

अज्ञात युग (ई० पू० २८ से ई० सन् १००० तक)

हिन्दी की ही भाँति तेलुगु भाषा का प्रारम्भिक रूप भी प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं से अधिक प्रभावित है। डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार संवत् ७५० से १२०० तक का हिन्दी-साहित्य सिद्धों, जैनों तथा नाथपंथी लेखकों द्वारा अपनायी गयी अपभ्रंश भाषाओं से प्रभावित है। सच कहा जाय तो हिन्दी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुई है। विद्यापति की रचनाएँ तो अवहट्ट भाषा में ही मिलती हैं। इसी भाँति तेलुगु भी पहले प्राकृत भाषा से प्रभावित थी। इसका प्रमाण हमें ई० पू० २८ में प्राप्त तेलुगु की रचनाओं में ही उपलब्ध होता है।

सातवाहन राजा के दरबारी कवि गुणाढय ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं छ: महीने में अपने प्रभु को सम्पूर्ण व्याकरण का ज्ञान नहीं कराऊँगा तो मैं सदा के लिए संस्कृत, प्राकृत तथा देशभाषाओं (तेलुगु) में कविता करने से संन्यास ले लूँगा। ई० पूर्व से ही तेलुगु विद्यमान थी, किन्तु उसे राजाश्रय प्राप्त नहीं था। आन्ध्र राजा हालशातवाहन ने "गाथा-सप्तशती" की रचना प्राकृत में ही की थी। उस समय संस्कृत और प्राकृत भाषाओं को ही राजाश्रय प्राप्त था। देशी भाषा तेलुगु का व्यवहार केवल घरों में होता था। राजाश्रय प्राप्त न होने के कारण तेलुगु में ग्रन्थ-रचना नहीं हुई। संस्कृत और प्राकृत भाषा के कवियों को आदर के साथ अग्रहार, पुरस्कार आदि प्रदान किये जाते थे। क्रमश: देशी भाषाओं का व्यवहार अन्य कार्यों में भी होने लगा। यही कारण है कि सातवाहन राजाओं के शिला-लेखों में तेलुगु शब्द पाये जाते हैं। कभी-कभी अग्रहार, पुरस्कार आदि प्राप्त करने वालों के नाम, दान-पत्र आदि तेलुगु में ही लिखे जाते थे।

सातवाहन राजा आन्ध्र थे और उनकी भाषा तेलुगु थी। इतना होते हुए भी उन लोगों ने इसलिए शासन-सम्बन्धी कार्यों में तेलुगु भाषा को स्थान नहीं दिया

कि वे केवल आन्ध्र प्रदेश पर ही नहीं, अपितु महाराष्ट्र, मैसूर तथा तमिलनाडु के भी कतिपय प्रदेशों पर शासन करते थे। अतः इन प्रदेशों को एक सूत्र में बाँधने वाली एक सामान्य भाषा की आवश्यकता थी। उसके लिए प्राकृत ही उचित थी। संस्कृत भाषा सब कोई जानते न थे। जैसे मुसलमानों के समय में उर्दू तथा अंग्रेजों के समय में अंग्रेजी राजकीय भाषा बनी रही और देशी भाषाएँ, जैसे हिन्दी आदि बहुत समय तक विकास को प्राप्त न हो सकीं, वही स्थिति तेलुगु की भी रही। परन्तु क्रमशः राज्य की सीमाएँ भी बदलती रहीं और राजनीतिक उलट-फेरों के साथ सामाजिक रीति-नीतियों में भी परिवर्तन होते रहे। प्राकृत भाषा का स्थान तेलुगु लेने लगी। शिलालेखों में भी क्रमशः तेलुगु का प्रयोग बढ़ने लगा। इसके अतिरिक्त शातवाहन राजाओं के समय में ही तेलुगु मूल द्राविड़ से अलग हो अपना एक स्वतन्त्र स्वरूप प्राप्त करने लगी थी।

ई० सन् छठी शताब्दी में प्रथम तेलुगु शिलालेख उपलब्ध हुआ है। उसके पूर्व के प्राकृत एवं संस्कृत के शिलालेखों तथा गाथाओं में प्रयुक्त तेलुगु शब्दों द्वारा हम तेलुगु भाषा के विकास का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ई० सन् के प्रारम्भ से ही तेलुगु जनता के व्यवहार में प्रयुक्त होती थी।

तेलुगु भाषा का प्रारम्भिक उपलब्ध साहित्य शिलालेखों में ही है। छठी शताब्दी के चोल तथा पूर्वी चालुक्यों के शिलालेखों में तेलुगु साहित्य क्रमशः गद्य, पद्य तथा चंपू रूपों में मिलता है। ई० सन् छठी शती तक हमें प्राकृत मिश्रित अनेक शिला-लेख उपलब्ध होते हैं, जिनके आधार पर तेलुगु भाषा के क्रमिक विकास का सुन्दर परिचय मिल जाता है। परन्तु उल्लेखनीय बात तो यह है कि सातवीं शती में सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह सर्वसिद्धि ने (ई० सन् ६३३ से ६६३ तक) तीस वर्ष तक वेंगी नगर पर शासन किया था। उन्होंने अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की थी तथा असंख्य आचार्यों को नियुक्त करके उन्हें अग्रहार आदि दान में दिये थे।[1] महाकवि दण्डी ने "आन्ध्रनाथेन जयसिंहेन" कहकर इनकी प्रशंसा की है। कन्नड़ के महाकवि पंप, रन्न तथा नाग वर्मा इसी वेंगी प्रदेश के निवासी थे। महाकवि रन्न ने अपने "अजितपुराण" में वेंगी देश की प्रस्तुति की है।

---

१. **'इंडियन ऐंटिक्वेरी', जि० १३, पृष्ठ १२, पंक्ति १८।**

जयसिंह सिद्धि ने ई० सन् ६४६ में गुंटूर जिले के नरसरावपेटा के समीप में "विप्पर्ल" नामक ग्राम में तेलुगु में एक शिलालेख खुदवाया था। उससे हमें भली-भाँति विदित होता है कि उस समय वेद-विद्या और संस्कृत की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी, साथ ही अन्य विद्याओं के अध्ययन का भी प्रबन्ध था। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि तेलुगु की पढ़ाई की भी व्यवस्था रही होगी। इस सम्बन्ध में ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं।

अज्ञात युग के साहित्य के अस्तित्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

(१) विकासवाद के अनुसार किसी भी साहित्य में कविता का क्रमिक विकास होता है, एक साथ महाकाव्य की रचना नहीं हो सकती।

(२) तेलुगु के आदि महाकवि नन्नय के पूर्व, अर्थात् अज्ञात युग के चालुक्य-वंशी नरेशों के तेलुगु शिलालेखों से यह समझा जा सकता है कि नन्नय की भाषा जैसी संस्कृत गर्भित तेलुगु रचनाएँ उनसे दो शताब्दी पूर्व ही विद्यमान थीं, किन्तु ऐसी शैली राजदरबारी कवियों द्वारा ही मान्य होती थी, साधारण जनता में उसका प्रचार नहीं था।

(३) शिलालेखों की रचना देशी छन्दों में हुआ करती थी।

(४) भाषा में अनुशासन का अभाव था, अर्थात् व्याकरण-सम्मत सुनिश्चित भाषा के नियन्त्रित रूप का अभाव था।

(५) देशी कवियों ने देशी छन्दों, जैसे—द्विपद, तरुवोजा, सीसमु, गीतमु इत्यादि में अपनी लोक-भाषा की कविताएँ और गीत आदि गाये। उपर्युक्त रचनाएँ लोगों ने कंठाग्र कर रखी थीं, वे ग्रन्थस्थ नहीं हुई थीं।

(६) कुछ विद्वानों के कथनानुसार इस युग का साहित्य धार्मिक-विद्वेष तथा व्यक्तिगत द्वेष के वशीभूत हो नष्ट किया गया माना जाता है। इस वाद के समर्थन में बताया जाता है कि वेंगी देश (आन्ध्र का एक प्रान्त) में जन्म लेकर क्रमशः ई० सन् ६४१ में पंप कवि ने तथा ६४८ में नागवर्मा ने कन्नड़ में महाभारत तथा रामायणों की रचना की है। इसके पूर्व ही इन कवियों ने तेलुगु में काव्य-रचना की होगी। ये जैन धर्मावलंबी थे, अतः जैन धर्म के समर्थन में लिखित इनके ग्रन्थ वैदिक मतावलम्बियों द्वारा जलाये गये थे।

(७) अप्पकवि ने अपने "अप्पकवीयमु" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि नन्नय के जो कि तेलुगु के प्रथम महाकवि माने जाते हैं, समकालीन वेमुलवाड भीमकवि ने "राघव पांडवीयमु" नामक द्वयर्थी काव्य तथा अथर्व ने महाभारत की रचना की और नन्नय को दिखाकर उनसे निवेदन किया कि वे उन्हें भी राजा के दर्शन कराने की कृपा करें; परन्तु उन ग्रन्थों की प्रौढ़ता और शैली पर मुग्ध हो नन्नय ने इस डर से उन ग्रन्थों को नष्ट कराया कि उनके रहते उनके अपने ग्रन्थ की प्रशस्ति न होगी। परन्तु कुछ विद्वान् इस वाद से सहमत नहीं हैं, नन्नय-जैसे कवि पर यह आक्षेप सहसा विश्वसनीय नहीं है।

(८) राजराजनरेन्द्र के पूर्व के राजा एवं पण्डित संस्कृत के पक्षपाती थे तथा तेलुगु के प्रति उनके मन में उपेक्षा की भावना थी। इस कारण से तेलुगु में काव्य-रचना न हो सकी।

(९) जनता में यह अन्धविश्वास था कि देववाणी संस्कृत के ग्रन्थों का देशी भाषा तेलुगु में रूपान्तर करने से पाप लगेगा।

(१०) देश में राजनीतिक स्थिरता का अभाव था। राजा सदा आत्मरक्षा अथवा राज्य-विस्तार में ही लगे रहते थे। उन्हें साहित्य-संगीत आदि कलाओं की उन्नति में योगदान देने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

अब तक उपलब्ध तेलुगु शिलालेखों में रेनाडु के चालुक्यवंशी राजा महेन्द्र विक्रम चोल के सुपुत्र पुण्यकुमार का शिलालेख (ई० सन् ६१०) अति प्राचीन माना जाता है। इस शिलालेख की भाषा के अध्ययन से भलीभाँति हमें विदित होता है कि तेलुगु संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास करती उसी समय अपने एक स्वतन्त्र स्वरूप की प्राप्ति की स्थिति में थी। यह शिलालेख गद्य में है, परन्तु यह वेंगी लिपि में है।

कड़पा जिले के चिलमकूरु तथा यर्रगुडिपाडु में भी रेनाडु के चोलवंशी राजाओं के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। ये छठी शती के प्रथम भाग के हैं, किन्तु इन शिलालेखों द्वारा तेलुगु साहित्य का स्वरूप जानने में विशेष सहायता नहीं मिलती। लेकिन पूर्व चालुक्यवंशी राजा जयसिंह (राज्यकाल ई० सन् ६६४ से ६७३) ने सन् ६४९ में जिला गुंटूर, विप्पर्ति में जो शिलालेख खुदवाया था, उसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, साथ ही इसमें भाषा के विकास का

सुन्दर नमूना भी है। इसमें तेलुगु भाषा की प्राचीनता का परिचय ही नहीं मिलता, अपितु यह भी मालूम होता है कि उस समय तेलुगु के मुहावरे वगैरह प्राचीन द्राविड़ सम्प्रदायों की रक्षा करते हुए प्राकृत भाषा के सम्पर्क से नूतन विकास को प्राप्त होने की दशा में थे।

इसके उपरान्त अनेक शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, किन्तु उनमें पूर्वी चालुक्य-वंशी नरेश गुणक विजयादित्य (ई० सन् ८४८ से ८९२) के "कंदुकुरु", "अद्दंकि" तथा "धर्मवरमु" के शिलालेख विशेष महत्त्व रखते हैं। विजयादित्य के राज्याभिषेक (ई० सन् ८४८से ४९) से तेलुगु साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ जाता है। इनके शिलालेखों के देशी छन्दों से स्पष्ट रूप से यह विदित होता है कि इनके पूर्व से ही तेलुगु में काव्य-रचना होती रही है। "अद्दंकि" शिलालेख गद्य-पद्यात्मक चंपू शैली में विरचित है। विजयादित्य के सेनापति पांडुरंग ने आदित्य भट्टारक को कुछ जमीन दान कर दी थी। उसी का उल्लेख उपर्युक्त शिलालेख में है। देशी छन्दों में इसकी रचना हुई है। इसमें तत्सम शब्द तो हैं, किन्तु प्राकृत के प्रभाव से यह शैली मुक्त है। तेलुगु का प्रथम महाकाव्य जो इस समय से दो शताब्दियों बाद लिखा गया, इसी चंपू शैली में ही है। इसी प्रकार "धर्मवरमु" का शिलालेख भी अपना अलग अस्तित्व रखता है। शुद्ध साहित्यिक तेलुगु-गद्य-शैली का यह एक उत्तम उदाहरण है। संस्कृत के दीर्घ समासों से युक्त होने पर भी यह शैली तेलुगु-शैली की तरह इसलिए प्रतीत होती है कि तेलुगु ने इसमें प्रयुक्त शब्दों को पूर्णरूप से आत्मसात् कर लिया है। यह शैली हमें नन्नय की शैली का स्मरण दिलाती है।

विजयादित्य की राजधानी बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) में थी। अद्दंकि शिलालेख में यह बताया गया है कि विजयादित्य का पट्टाभिषेक सन् ८४८ में हुआ। उसी वर्ष इनके सेनापति पांडुरंग ने एक बड़ी सेना लेकर पड़ोसी राजाओं पर आक्रमण किया और १२ दुर्गों को जीता। इस तरह उन्होंने वेंगी राज्य का विस्तार किया। वेंगी चालुक्यवंशी नरेशों को "त्रिभुवनांकुश" नामक उपाधि प्राप्त थी, अतः उन दुर्गों पर त्रिभुवंशुक राजाओं की पताका फहरायी।

इस सन्दर्भ में युद्धमल्लु का बेजवाड़ा शिलालेख भी उल्लेखनीय है। इसमें युद्धमल्लु की प्रशंसा वर्णित है। यह पद्य में रचा गया है। प्राचीन समय की

..टरेफ़ का प्रयोग बहुत अधिक देखा जा सकता है। उस समय की
में अनुस्वार के स्थान पर अनुनासिक का प्रयोग, बहुवचन के प्रयोगों में
ल" के स्थान पर "ळ" का प्रयोग, "म्बु" के स्थान पर "मु", "ऋ" के स्थान
में "र' कार तथा "इ" कार, जैसे—बृंद का "ब्रिन्द", "ण" के बदले "न" कार,
षष्ठी विभक्ति प्रत्यय "कोक्क" के स्थान पर "कुन्" अथवा "कु" और बहुवचन
में "ल" का प्रयोग इत्यादि तेलुगु भाषा के क्रमिक विकास का द्योतक है। इस
विकास-क्रम में संस्कृत तथा अन्य द्राविड़ भाषाओं (मुख्यतः तमिल और कन्नड़)
के स्वरूप एवं सम्प्रदायों को आत्मसात् करके तेलुगु अपने एक विशिष्ट रूप को
प्राप्त हो सकी है। संस्कृत भाषा के प्रेमी एवं समर्थकों ने तेलुगु में संस्कृत-भाषा
के सम्प्रदायों को लाने के विचार से संस्कृत प्रत्यय मिलाकर तेलुगु को संस्कृतगर्भित
बनाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार की शैली तमिल, कन्नड़ और मलयालम में
"मणि प्रवाल शैली" नाम से विख्यात है। यह शैली तेलुगु में कुछ समय तक
व्यवहृत एवं परिवर्द्धित होती रही और बाद के कवियों ने इस शैली का प्रयोग
अपने काव्यों में भी किया, परन्तु यह पण्डित-समाज द्वारा स्वीकृत न होने के कारण
क्रमशः लुप्त होने लगी। अनेक पण्डित-सभाओं में इस शैली को लेकर काफ़ी
चर्चा भी हुई थी। इस चर्चा के परिणामस्वरूप ही संस्कृत शब्दों के स्थान पर
क्रमशः तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार नन्नय के
पूर्व विद्वानों द्वारा मान्यता-प्राप्त भाषा का अभाव तथा भाषा का संस्कार न होने
के कारण विशेष रूप से उत्तम ग्रन्थों का प्रणयन नहीं हो पाया।

इस युग के शिला-लेखों द्वारा यह विदित हुआ है कि इस युग में पद्य, गद्य,
तथा चंपू शैली में रचना होती रही है। जैसा सत्य है कि प्रत्येक भाषा में काव्य-
रचना के पूर्व गीतों की रचना हुआ करती है, तेलुगु इसका अपवाद नहीं है।
ऐसे गीतों में पाण्डित्य का अभाव भले ही हो, परन्तु मधुर ग्राम्य शब्दों से युक्त
होने के कारण यह जनपदों के निवासियों के मनोरंजन व ज्ञानवर्द्धन में काफ़ी
सहायक सिद्ध होती है और लोक-प्रचलित शैली में रचे गये ऐसे गीत जनता की
जिह्वा पर थिरकते मौखिक रूप में चिरकाल तक प्रचार पाते रहते हैं। यह
अवश्य है कि वे ग्रन्थस्थ नहीं हो पाते। प्राचीन तेलुगु में भी ऐसे गीतों की कमी
नहीं रही।

सोमनाथ (ई० सन् १२८५ से १३२३) ने अपने काव्य "पंडिताराध्य चरित्र" में इस युग के गीतों का उल्लेख किया है। इस काव्य के "वाद प्रकरण' (पृष्ठ ५१३) में बताया है कि--

"पदमुलु दुम्मेद पदमुल्, प्रभात
पदमुलु बर्वत पदमुलानन्द
पदमुलु, शंकर पदमुलु, निवालि
पदमुलु, वालेशु पदमुलु, गोब्बि
पदमुलु, वेन्नेल पदमुलु, संज
वर्णन, मरि गणवर्णन पदमुलु"

अर्थात् इसमें भ्रमर-गीत, प्रभात-गीत, पर्वत-गीत, आनन्द-गीत, शंकर-गीत, ज्योत्स्ना-गीत, सन्ध्या-गीत, गण-वर्णन-गीत इत्यादि थे।

इनके अतिरिक्त प्राचीन तेलुगु में प्राप्त देशी वाङमय-सम्बन्धी पुतली खेलों के गीत, नौका-गीत, ढेंकली-गीत, कुटाई के गीत, चक्की-गीत, कटाई-गीत, स्त्रियों के गीत, खलिहान के गीत, वीर-गीत इत्यादि जनपदवासियों के मनोरंजन के साधन बने हुए थे। कुश-लव-कथा, ऊर्मिला देवी की निद्रा, लक्ष्मण की मूर्च्छा आदि के वर्णनों में रचे लोक-गीत भी इसी श्रेणी के कहे जा सकते हैं। लोक-साहित्य सम्बन्धी समर्पण-गीत, बिदाई-गीत, पूजा-गीत आदि भी देशी वृत्तों में रचे गये हैं। ऐसे अनेक गीत उपलब्ध भी हुए हैं। इन देशी वृत्तों का भी एक छन्द शास्त्र था, परन्तु वह उपलब्ध नहीं होता, गोकि उसकी रचना की पुष्टि ग्यारहवीं शती में तमिल में विरचित "याप्पिरंगलं" नामक छन्दो:शास्त्र-ग्रन्थ द्वारा होती है, जिसमें लेखक ने लिखा है कि "वांचियार नामक जैन लेखक द्वारा तेलुगु में विरचित छन्द:शास्त्र के आधार पर मैंने यह ग्रन्थ लिखा है।"

इससे स्पष्ट विदित है कि नन्नय (ई० सन् १०२३) के बहुत समय पूर्व से ही देशी वृत्तों में कविता होती रही है तथा वांचियार-जैसे कवियों ने उस समय रीति (लक्षण) ग्रन्थों की रचना भी की थी और देशी वृत्तों में "यति", वर्णमैत्री के साथ नियत गण के प्रारम्भ में प्रयुक्त होती थी। संस्कृत के श्लोकों में "यति" केवल विश्राम स्थान जताने के लिए प्रयुक्त होती है, परन्तु उसमें वर्णमैत्री का प्रचलन नहीं रहा है। कन्नड़ ने संस्कृत का अनुसरण किया है, लेकिन तमिल छन्दों में "यति" स्थान पर वर्णमैत्री पायी जाती है, इस विषय में तमिल और

तेलुगु में साम्य है। इसी प्रकार संस्कृत के श्लोकों में "प्रास" का नियम नहीं है, परन्तु तमिल-साहित्य में यह बहुत प्राचीनकाल से ही पाया जाता है और इसी को तेलुगु और कन्नड़ साहित्यों ने अपनाया होगा। तेलुगु के देशी छन्द--तरुवोज, अक्कर, द्विपद इत्यादि छन्दों में प्रास-नियम हैं और सीस तथा गीत छन्दों में यति के स्थान पर प्रास-यति के लिए भी गुंजाइश है। हिन्दी में प्रास का नियम नहीं पाया जाता। इस नियम को दक्षिण के रीति-शास्त्रकारों ने संस्कृत से गृहीत वृत्तों में भी चालू किया। इस प्रकार मार्ग कविता (संस्कृत कविता) भी देशी छन्दों के सम्प्रदाय के अनुसार रचित हो, देशी भाषा-साहित्यों की श्रीवृद्धि में सहायक सिद्ध हुई है।

मार्गी और देशी कविता

प्रथम तेलुगु साहित्य में मार्ग और देशी शब्दों का प्रयोग नन्नेचोड (ई० सन् १०८० से ११२५ तक) ने अपने काव्य "कुमार सम्भव" की भूमिका में इस प्रकार किया है--

मनु मार्गकवित लोकं
बुन वेलयग देशिकवित बुट्टिंचि तेनुं
गुनु निलिपि रंध्र विषयं
बुन जन जालुक्यराजु मोदलुग बलुवुर् ।

अर्थात्--मार्ग कविता का प्रचलन पहले हुआ, इसके उपरान्त ही चालुक्यवंशी राजाओं ने देशी कविता को प्रोत्साहन दे आन्ध्र में उसे उत्तम स्थान प्रदान कराया।

यों तो देशी शब्द का प्रयोग बहुत पहले से ही होता आ रहा था, पर "मार्ग कविता" का प्रयोग साहित्य में सर्वप्रथम इसी कवि ने किया है। नाटच-शास्त्र तथा संगीत-दर्पण में भी मार्गी तथा देशी का विवेचन इस प्रकार किया गया है कि जो शिष्टजन द्वारा समादृत तथा शास्त्रसम्मत है, वह मार्गी है तथा जो शास्त्र के नियमों के बन्धनों से मुक्त हो जनता के मनोरंजनार्थ विविध प्रदेशों में विविध प्रकारों में व्यवहृत है, वह देशी है--चाहे वह संगीत हो, नृत्य हो, साहित्य हो अथवा कोई और कला हो। कुछ विद्वानों का विचार है कि मार्ग शब्द अंग्रेजी के "क्लैसिकल" के अर्थ में तथा देशी शब्द अंग्रेजी के "रोमैन्टिक" के अर्थ में प्रयुक्त

माना जा सकता है, परन्तु तेलुगु का जहाँ तक प्रश्न है, मार्गी और देशी शब्दों का अर्थ विचारणीय है, क्योंकि प्राचीन समय में केवल संस्कृत में ही कविता होती थी, अतः वह कविता, जो लक्षण-ग्रन्थों के नियमों से युक्त थी, मार्गी कहलाती थी। तेलुगु में नन्नय ने सर्वप्रथम संस्कृत के इसी सम्प्रदाय को आधार बनाकर अपने काव्य की रचना की, अर्थात् संस्कृत के वर्ण-वृत्तों में रचित महाभारत को ग्रहण कर, उसी की रीतियों का अनुसरण किया। इसीलिए नन्नय आदि की कविता आज तेलुगु में मार्ग कविता मानी जाती है। क्रमशः कवियों ने जन-साधारण के उपयोगार्थ काव्य की भाषा और शैली में सरलता लाने का प्रयत्न किया तथा प्राचीन देशी परम्परा में व्यवहृत शब्दों व रीतियों को ग्रहण कर शैव कवियों ने तेलुगु कविता में देशी-सम्प्रदाय चलाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भ से ही तेलुगु में शैली, भाषा और वस्तु इत्यादि काव्य के रूपों और गुणों में भी सुधार एवं संस्कार लाने का निरन्तर प्रयत्न होता रहा है। युग के परिवर्तनों तथा वैज्ञानिक प्रगति के अनुरूप तेलुगु भाषा प्रारम्भ से लेकर आज तक अपने को सुधारती-सँवारती तथा अनिवार्य परिवर्तन करती आगे बढ़ती जा रही है, जिससे सभी प्रकार के विचारों तथा सिद्धान्तों को अभिव्यक्त करने में वह सक्षम हो सके। संस्कृत और देशी दोनों तरह के सम्प्रदाय तेलुगु साहित्य की विषय-वस्तु, छन्द और शैली में देखने को मिलते हैं।

नन्नय के पूर्व कवियों की रचनाएँ या तो नष्ट हो गयी हैं, या अज्ञात रह गयी हैं, इसी कारण इस युग का नामकरण "अज्ञात युग" किया जा सकता है। इस युग के जो कवि माने जाते हैं, उनके जीवन-काल के सम्बन्ध में भी मतभेद हैं, फिर भी कुछ समीक्षक श्रीपति पण्डित तथा पद्मकवि को अज्ञात युग के अन्तर्गत मानते हैं। श्रीपति पण्डित बेजवाड़ा के निवासी थे। उन्होंने केवल शिव-भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ ही नहीं कीं, अपितु अपनी भक्ति के बल से इन्होंने अनेक चमत्कार भी दिखाये।

पद्म कवि ई० सन् ९४१ में हुए थे। अपने समय के जैन-समयाचार्यों में ये अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इन्होंने "जिनेन्द्रपुराण" लिखा है और पंप महाकवि (कन्नड़ कवि) के गुरु जिनेन्द्र मुनि का चरित्र इसमें वर्णित हैं।

५

भाषान्तरीकरण युग या कवित्रय युग

(ई० सन् १००२ से १३५० तक)

सामान्य परिचय

दसवीं शती के अन्तिम चरण में आन्ध्र प्रदेश के वेंगी राज्य में अराजकता फैल गयी थी। ऐसी स्थिति में चोल राजा केसरी वर्मा ने वेंगी (आन्ध्र प्रदेश का प्राचीन नाम) राज्य पर हमला किया और पूर्वी चालुक्यवंशी नरेश दानार्णव (ई० सन् ९७० से ९७३तक) के ज्येष्ठ पुत्र शक्तिवर्मा को गद्दी पर बिठाया, साथ ही उस राज्य के साथ मैत्री स्थापित करने के विचार से केसरी वर्मा ने शक्ति वर्मा के छोटे भाई विमलादित्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। इसके पीछे एक राजनीतिक उद्देश्य था। उस समय चोल राजा की पश्चिमी चालुक्यों के साथ दुश्मनी भी थी, जिसका लाभ उठाते हुए उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी चालुक्यों के बीच वैर का बीज बोकर अपने राज्य को सुस्थिर बनाया। शक्ति वर्मा ने ई० सन् ९९९ से १०११ तक राज्य किया। इसके पश्चात् उनके भाई विमलादित्य ने ई० सन् १०११ से १८ तक राज्य किया। अपनी वृद्धावस्था में इन्होंने जैन धर्म ग्रहण किया और सिद्धान्तदेव नामक जैन गुरु के शिष्य हुए। इनके ज्येष्ठ पुत्र राजराजनरेन्द्र (विष्णुवर्द्धन) ई० सन् १०१९ की १९ जुलाई को वेंगी राज्य की गद्दी पर बैठे। तेलुगु साहित्य का प्रथम महाकाव्य इन्हीं की प्रेरणा से लिखा गया।

राजराजनरेन्द्र के समय में ही उत्तर भारत में माल्वदेश की धारा नगरी को अपनी राजधानी बना राजा भोज शासन कर रहे थे। राजा भोज की भाँति राज-राजनरेन्द्र भी कलाप्रेमी थे। इनके समय में देश में राजनीतिक शान्ति विराज रही थी। अतः इन्होंने अपना पूरा समय धर्म के प्रचार एवं कलाओं की उन्नति

में लगाया। आन्ध्र में जैन और बौद्ध धर्म का पतन हो चुका था। इनके पूर्वजों में अधिकांश लोगों ने वैदिक धर्म का पोषण किया था। उन्होंने वैदिक धर्म के उद्धार का संकल्प किया। उन दिनों वैदिक धर्म को प्रतिपादित करने के लिए जिन धर्म-शास्त्रियों का प्रवचन होता था, उनमें पुराणों को प्रमुखता प्राप्त थी, परन्तु साधारण जनता और स्त्रियों की अभिरुचि पुराणों की अपेक्षा महाभारत के प्रति अधिक थी। लोगों में यह विश्वास भी था कि महाभारत के श्रवण से सौ गायों के दान तथा अनेक वैदिक विप्रों को दान देने का फल प्राप्त होता है, अतः अपने अवकाश के क्षणों में लोग महाभारत का श्रवण करते थे। वैदिक धर्म के प्रति लोगों का विश्वास सुदृढ़ होने का यह भी कारण था कि इन्हीं पूर्वी चालुक्य राजाओं के समय में कुमारिल भट्ट ने वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया था। वैदिक धर्म के सिद्धान्त भी सरल थे, जिन्हें संक्षेप में यों समझा जाता है कि—(१) वेद अपौरुषेय हैं, इसलिए प्रामाणिक हैं, (२) वेदों द्वारा प्रतिपादित यज्ञ-यागादि के आचरण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, (३) उपनिषदों का श्रवण मोक्ष-प्राप्ति का मार्गदर्शक है, (४) चतुर्विध वर्ण एवं आश्रम मानव-समाज के आचार-धर्म-सम्बन्धी नियम हैं तथा (५) ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर क्रमशः इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणभूत हैं।

इन सिद्धान्तों का राजा और प्रजा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि प्रत्येक मांगलिक कार्य के अवसर पर पुराणों का श्रवण करना तथा महाभारत की प्रतियाँ लिखवा कर बाँटना एक परिपाटी-सी हो गयी, किन्तु कठिनाई यह थी कि पुराण और महाभारत संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध थे, साधारण प्रजा जिनका पूरा लाभ नहीं उठा सकती थी। अगर उपर्युक्त ग्रन्थ देशी भाषा तेलुगु में होते तो लोग स्वयं पढ़ कर उनका आनन्द उठाते। इसी अभिप्राय से प्रेरित होकर सर्वप्रथम बौद्ध धर्माचार्यों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का देशी भाषाओं में रूपान्तर कराया और स्वयं भी देशी भाषा में ही उन्होंने ग्रन्थों की रचना की। इस भाषान्तरीकरण ने जनता के हृदयों को अधिक आकर्षित किया और धर्म के प्रचार में यह कार्य विशेष सहायक सिद्ध हुआ। ऐसी स्थिति में जैन एवं बौद्ध धर्मों के उत्थान के कारण पतनावस्था को प्राप्त वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए "पंचम वेद" नाम से विख्यात "महाभारत" के भाषांतरीकरण की आवश्यकता का राजराजनरेन्द्र ने अनुभव किया।

इसका दूसरा कारण यह भी था कि इसके पूर्व ही तमिल और कन्नड़ में महाभारत का रूपांतर हो चुका था और उन प्रदेशों के राजाओं ने देशी भाषाओं को प्रोत्साहित भी किया था। इन्हीं कारणों से राजराजनरेन्द्र ने महाभारत का तेलुगु रूपांतर कराने का निश्चय किया। इसके पूर्व ही महाभारत की रचना तेलुगु में हुई होती, किन्तु आन्ध्र देश की धार्मिक दशा इस कार्य में बाधक थी। तत्कालीन युग में महाभारत को पंचम वेद माना जाता था, अतः देव भाषा में विरचित इस ग्रन्थ का देशी भाषा में रूपांतर करने में पंडितों ने विरोध प्रकट किया होगा। भाषांतरीकरण में भाषा का संस्कार किस रूप में हो, यह भी एक विवादस्पद प्रश्न तत्कालीन विद्वानों के सम्मुख उपस्थित रहा होगा।

राजराजनरेन्द्र के दरबार में अनेक भाषाओं के ज्ञाता महाकवि थे। उन सबको यथोचित रूप में अग्रहार, पुरस्कार, दान इत्यादि प्रदान कर राजा इनका सम्मान किया करते थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वेद-विद्या (वैदिक शिक्षा) के प्रचारार्थ राजा ने अनेक ब्राह्मणों को अग्रहार प्रदान किया था। संस्कृत, पैशाची, कन्नड़ एवं तेलुगु भाषा के महाकवि नारायण भट्ट को इन्होंने "नंदमपूडि" नामक ग्राम प्रदान किया था और विख्यात गणित-विद्वान् पावुलूरि मल्लन्ना को "नवखण्डवाडा" नामक गाँव दिया था। राजराजनरेन्द्र की उदारता के ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ऐसे विद्वानों से सुशोभित उनकी राजसभा धर्म एवं साहित्यिक चर्चाओं की वेदिका बनी हुई थी। उन विद्वानों में से राजराज ने नन्नयभट्ट को, जोकि उनके पुरोहित भी थे, महाभारत के रूपांतर का कार्य सौंपा था।

नन्नय भट्ट

नन्नय भट्ट संस्कृत और तेलुगु भाषा के प्रकाण्ड पण्डित, कवि, आचार्य, पुराणों के ज्ञाता और शब्दशास्त्र (व्याकरण) के पारंगत थे, फिर भी महाभारत का भाषांतरीकरण सुगम और साध्य नहीं था, क्योंकि वह एक ही साथ धर्मशास्त्र, वेदान्त-ग्रन्थ, नीतिशास्त्र, महाकाव्य, इतिहास, रीति-शास्त्र (लक्षण ग्रन्थ), पुराण आदि अनेक विषयों की चिन्तन-सामग्रियों का विस्तृत भण्डार था।

व्यास महर्षि ने ही इस ग्रन्थ का—भारत, संहिता और जय—नामों से उल्लेख

किया है। चतुर्विध वेदों से इस ग्रन्थ का भार अधिक था, इसलिए महर्षि व्यास ने तम प्रत्यय जोड़कर इस ग्रन्थ का नामकरण (भार + तम् = भारतम्) किया है।

महाभारत की रचना में नन्नय भट्ट की सहायता, उनके सहपाठी एवं संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ एवं तेलुगु भाषाओं के उद्भट कवि शिखामणि तथा "कवीभवज्रांकुश" नामक उपाधि से विख्यात नारायण भट्ट ने की थी। उनकी इस सहायता का नन्नय ने बड़ी सहृदयता के साथ आभार प्रकट किया है। महाभारत के भयंकर युद्ध में नर (अर्जुन) की नारायण (कृष्ण) ने जैसी सहायता की थी, वैसी ही सहायता "महाभारत" की रचना में नन्नय के आप्त मित्र एवं सहपाठी नारायण भट्ट ने उन्हें दी है।

युग का नामकरण—इस युग में संस्कृत के प्रायः सभी पुराणों—महाभारत, रामायण, उत्तरहरिवंश, नृसिंह पुराण, मार्कंडेय पुराण, इत्यादि का रूपांतर हुआ, साथ ही इस युग में काव्य, शास्त्र और पुराणों का आधिक्य रहा। नन्नय, तिक्कना और एर्राप्रेगड़ा ने महाभारत का तेलुगु में इस प्रकार भाषांतरीकरण किया कि आज तक वह तेलुगु के प्रौढ़ काव्य की कसौटी बना हुआ है। इतना ही नहीं, महाभारत में काव्य का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं व्यापक है कि उसमें अनेक नीतिप्रद आख्यान और उपाख्यान हैं, जो सब प्रकार के लोगों के लिए रुचिकर प्रतीत होते हैं। महाभारत और उसके कृतिकर्ता "कवित्रय" का जनता और साहित्य पर उस समय ऐसा विशद और स्थायी प्रभाव पड़ा कि उसके फलस्वरूप इस युग का नामकरण ही कवित्रय के नाम से किया गया। इस युग में जो भी काव्य, पुराण या शास्त्र-ग्रन्थ रचे गये, वे सब प्रायः संस्कृत के रूपांतर थे, अतः यह युग 'भाषांतरीकरण युग' भी कहलाया।

महाभारत की रचना—व्यास महर्षि ने महाभारत की रचना पद्य में की है, परन्तु नन्नय ने इसकी रचना गद्य-पद्यात्मक शैली में की। इसका कारण यह है कि कन्नड़ और तमिल में नन्नय के पूर्व "चंपू" शैली में ही महाभारत रचा गया था और उस समय तक तेलुगु के अधिकांश शिला-लेख चंपू में ही रचे गये थे तथा चंपू-शैली को ही विशेष जनादर प्राप्त था। मूल काव्य के कतिपय प्रसंगों को औचित्य की दृष्टि से नन्नय ने घटाया और बढ़ाया भी है। यह केवल अनुवाद नहीं, इसमें नन्नय ने "प्रसन्नकथा कलित अर्थ युक्ति" को प्रधानता दी है। महा-

भारत के रूपांतर में उन्होंने कुछ आख्यानों एवं उपाख्यानों को संक्षिप्त किया, कुछ को विस्तार से लिखा, कहीं-कहीं नये प्रसंग को जोड़ा और कतिपय वर्णनों को पूर्ण रूप से घटाया, परन्तु उनका ध्यान मूल-कथा की रक्षा की ओर सदा रहा और उन्होंने भाव, भाषा, रस, अलंकार एवं काव्योचित अभिव्यक्तियों का पोषण करते हुए इसको सर्वथा सरस, प्रौढ़ और प्राणवान् बनाया। आख्यायिका शैली को प्रधानता देते हुए भी उन्होंने वर्णनात्मक एवं नाटकीय शैलियों का सन्दर्भों के अनुरूप प्रयोग किया। नन्नय की भाषा में पचहत्तर प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं, फिर भी अर्थ और अन्वय में कोई दुरूहता नहीं दिखाई देती। शैलीगत सरसता और भाव-रम्यता इनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

नन्नय की शैली तत्सम शब्द प्रधान है। उसमें कोमलता, मनोरमता एवं माधुर्य का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनकी कविता सागर की भाँति अगम्य, सुन्दर, गम्भीर और अगाध अर्थ-पूरक है। पात्रों की सृष्टि में उनकी प्रखर प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनकी शैलीगत गम्भीरता ने उनकी कविता तथा पात्रों में भी चेतना, तेज और प्राण-प्रतिष्ठा की है।

सौगन्धिका-हरण प्रसंग में हनुमान् और भीम का संवाद, बकासुर-वध के वृत्तान्त में ब्राह्मण और ब्राह्मणी का वार्तालाप, रूरु और प्रमद्वरा का वृत्तान्त, उदन्त की कहानी, शकुंतला की गाथा, नलोपाख्यान, ययाति-वृत्तान्त आदि बड़े ही हृदयहारी हैं। अर्जुन की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में नन्नय ने वेंगी देश का अति सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। उनकी वैयक्तिक विलक्षणताओं और सरस अभिरुचियों का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में उनकी कविता में मिलता है। इस सरसता के साथ वैदिक धर्म का उन्होंने अद्भुत प्रतिपादन प्रस्तुत किया है।

छन्दों में रचना-सौन्दर्य की दृष्टि से तेलुगु में नन्नय ने जो महान् सुधार और संस्कार प्रत्युत्पन्न किये हैं, वे सर्वथा प्रशंसनीय हैं। संस्कृत, प्राकृत एवं द्राविड़ शब्दों को तेलुगु भाषा के उपयुक्त बनाकर उन्होंने उन पर ऐसा अनुशासन किया कि नन्नय "शब्दानुशासक" या "वागानुशासक" नाम से विख्यात हुए। इन्हीं कारणों से नन्नय का प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पड़ा, जिसे संक्षिप्त रूप में यों प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) काव्य की रचना में चंपू-शैली की परम्परा का विकास किया,

(२) संस्कृत के वृत्तों में तेलुगु काव्यों की रचना का समारम्भ किया और

(३) पुराणों की रचना हू-ब-हू अनुवाद के रूप में न करके कथाप्रधान काव्य के रूप में करने की प्रणाली का उन्होंने उन्नयन किया ।

नन्नय के काव्य में एक तिहाई पद्य हैं, उनका गद्य पद्यों की भाँति दीर्घ समासों से युक्त है । उन्होंने वार्तालाप, विशद वर्णन एवं शास्त्रीय प्रसंग में ही गद्य का प्रयोग किया है ।

नन्नय की रचनाएँ—अप्पकवि ने अपने "अप्पकवीयं" में इस प्रकार लिखा है—

आन्ध्र शब्द चिंतामणि व्याकरणमु
मुन्दु रचिंचि तत्सूत्रमुल देनुंगु
बासचे जेप्पे नन्नयभट्टु तोल्लि
पर्वमुलुमूडु श्री महाभारतम्मु ॥

अर्थात् नन्नय कवि ने "आन्ध्र शब्द चिंतामणि" नाम से तेलुगु-व्याकरण संस्कृत में लिखा और उसके सूत्र तेलुगु में बताये । साथ ही, महाभारत के प्रथम तीन पर्वों की भी उन्होंने रचना की ।

इसके आगे के छन्द में बताया गया है कि "राघव पांडवीयमु" नामक एक और काव्य की रचना नन्नय ने की थी । महाभारत काव्य के रचना-काल में नन्नय के आश्रयदाता राजराजनरेन्द्र ने अपने पुत्र "सारंगधर" के हाथ और पैर कटवा डाले थे, जो नन्नय के सखा और महाभारत के प्रेमी पाठक थे । उस घटना का प्रभाव नन्नय पर ऐसा पड़ा कि उन्हें मति-भ्रम हो गया और महाभारत की रचना तत्काल स्थगित हो गयी, पर अनेक विद्वान् इस कथन को कपोल-कल्पित बताते हैं, क्योंकि इतिहास की घटनाओं से इस कथन की पुष्टि नहीं होती । इस सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नन्नय अथवा उनके आश्रयदाता की अकाल मृत्यु होने के कारण महाभारत की रचना आगे न बढ़ पायी ।

"आनन्दरंगराट्छन्द" से विदित होता है कि नन्नय ने "इन्द्रविजयमु" और "लक्षणसार" नामक दो और ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु ये दोनों ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं । जनश्रुति यह है कि एलकूचि बालसरस्वती ने "आन्ध्र शब्द चिन्तामणि" की रचना करके उसे ख्याति प्रदान करने के विचार से नन्नय का नाम

उसमें जोड़ दिया है। उस ग्रन्थ में यह गद्यात्मक प्रसंग आता है कि "सकल भाषा वागनुशासनु नन्नय भट्ट विरचितान्ध्र शब्द चिन्तामणि"। कुछ समीक्षकों का विचार है कि नन्नय ने अनेक शिला-लेखों का संस्कार किया, अतः उन्हें इसी प्रतिभा पर "वागानुशासक" नामक उपाधि प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त "आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि" में अथर्वण का उल्लेख आता है। अथर्वण द्वारा विरचित "कारिक" में हरि का उल्लेख है, अतः इसका अर्थ यह होता है कि "आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि" नामक व्याकरण के पूर्व अथर्वणकारिक तथा हरिकारिकों की रचना हुई है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि तेलुगु के प्राचीन वैयाकरणों ने उपर्युक्त ग्रन्थों (केतना, तातम्बोट्टु, मुद्दराजु रामन्ना, अप्पकवि, कूचिमंचि तिम्मना इत्यादि के ग्रन्थों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। केतना ने अपने "आन्ध्र-भाषा-भूषणं" नामक व्याकरण में लिखा है कि "तेलुगु के लक्षण अब तक किसी ने नहीं बताये हैं। नन्नयादि की कृपा से मैं पण्डित कवियों की प्रशंसा प्राप्त करूँगा। इसके पूर्व संस्कृत, प्राकृत इत्यादि भाषाओं के लक्षण बताये हैं, परन्तु किसी ने तेलुगु का व्याकरण नहीं लिखा है। यह दोष कवियों और लाक्षणिकों का नहीं, बल्कि मुझे धन्य बनाने के विचार से ही उन लोगों ने व्याकरण की रचना न करके मेरे लिए यह कार्य छोड़ रखा है।"

नन्नय ने महाभारत की रचना में आदिपर्व और सभापर्व की पूर्ति की और वनपर्व (अरण्यपर्व) का कुछ अंश (४-१३२) ही पूरा कर पाये कि उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। अतः वनपर्व के चतुर्थ आश्वास में निम्नलिखित पद्य से उनकी कविता-स्रवंती रुक गयी—

शारदरात्रुलु ज्वल लसत्तर तारक हार पंक्तुलं
जारु तरंबुलय्ये विकसन्नव कैरवगंध बन्धुरो
दार समीर सौरभमु दालिच सुधांशुविकीर्यमाण-
कर्पूर पराग पांडुरुचि पूरमुलंबर पूरितंबुलै ॥

(वनपर्व –१३४-१४२)

अर्थात्—शरद ऋतु की रात्रियाँ तारकरूपी हारों की पंक्तियों से अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होने लगीं। सुविकसित कैरव सुमनों की सुगन्ध से पूर्ण पवन

डोलने लगा। शुभ्र ज्योत्स्ना की अपूर्व छटा ऐसी थी, मानों सुधाकर अपने किरण-जालों द्वारा कर्पूर-रज छिटका रहा हो।

नन्नय ने महाभारत में मार्गी और देशी दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, जिनमें शार्दूल, मत्तेभ, उत्पल, चंपक, मत्तकोकिल, तरल, स्रग्धरा, मानिनी, मालिनी, कविराज, विराजित, पृथिवी, तोटक, द्रुत विलंबित, वनमयूर, अंबुरुह, मणिभूषण, लयग्राही, दण्डक आदि वृत्त तथा कंद, आटवेलदी, उत्साह, मध्याक्कर, सीस, तेटगीति, तरुवोज, मधुराक्कर का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है।

नन्नय ने वैदिक धर्म की रक्षा के साथ "विश्वश्रेय: काव्य" धर्म का भी पालन किया, अत: इनका प्रभाव परवर्ती कवियों पर ऐसा पड़ा कि वे इनका अनुकरण करने लगे। परन्तु, नन्नय द्वारा महाभारत की रचना पूर्ण न हो सकी, फिर दो शताब्दियों के पश्चात् ही महाकवि तिक्कना और एर्राप्रेगड़ा ने उसकी पूर्ति की।

वेमुलवाड भीम कवि (ई० सन् १०८० से ११५० तक)

भीमना के जन्म-काल, जन्म-स्थान तथा उनके काव्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इनके जन्म के सम्बन्ध में एक अद्भुत कथा प्रचलित है। बताया जाता है कि ये एक मुग्धा बाल-विधवा के गर्भ से द्राक्षाराम में विलसित भीमेश्वर की कृपा से पैदा हुए, अत: उन्हीं भगवान् के नाम पर इनका नामकरण "भीमना" किया गया तथा उन्हीं की कृपा से ये एक उद्भट पण्डित और त्रिकालवेदी हो गये। भीमना का जन्म-स्थान श्री जयंति रामय्या पंतुलु ने तेलंगाने के करीम-नगर जिलान्तर्गत स्थित वेमुलवाड़ा बताया है और श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु ने पूर्व गोदावरी जिले में स्थित वेमुलवाड़ा बताया है। अधिकांश विद्वान् दूसरे मत का ही समर्थन करते हैं। इनकी जन्म-कथा हमें हिन्दी के महाकवि कबीर के जन्म-वृत्तान्त का स्मरण दिलाती है।

भीमकवि ने अपनी कविता में जिन राजाओं का उल्लेख किया है, उसके आधार पर ये ११ वीं और १२ वीं शदी के मध्य भाग के ठहरते हैं। इन्होंने राजा कलिंग-गंग का बार-बार उल्लेख किया है। ये भी १२ वीं शदी के प्रथम पाद में हुए थे। भीमना-सम्बन्धी असंख्य कथाएँ प्रचलित हैं। बताया जाता है कि ये अधिक क्रोधी स्वभाव के थे और अपना समुचित आदर न होने पर ये तुरन्त शाप दे देते

थे और उसका फल शापित व्यक्तियों को तत्काल ही भोगना पड़ता था। एक बार जब राजा कलिगगंग के दर्शनार्थ ये पहुँचे तो उन्होंने अपनी व्यस्तता जताते हुए थोड़ी देर बाद आने को कहा। इस पर क्रोधित हो कविवर ने शाप दिया कि ३२ दिनों के अन्दर तुम्हारा राज्य शत्रुओं के हाथों में चला जायगा। वह शाप सत्य साबित हुआ। एक दिन मुँह अन्धेरे भीमना के घर पर राजा की भेंट हुई। कवि को उस पर दया आयी। उस समय उन्होंने कहा था—"ब्रह्मा का लेख, विष्णु-चक्र, इन्द्र का वज्र, राम-बाण, युधिष्ठिर का क्रोध, मुनि का शाप, सर्प-दंशन, यम-दण्ड, शिवजी की त्रिनेत्राग्नि तथा पण्डित का वाक्य कभी व्यर्थ साबित होता है ?" तत्पश्चात् राजाको पूर्णिमा के बाद छः दिनों में उन्होंने एक हजार हाथी और दस हजार घोड़ों सहित राज्य के हस्तगत होने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार की अनेक कथाएँ इनकी जीवनी के सम्बन्ध में प्रचलित हैं।

भीमना की कृतियों में राघवपाण्डवीयम्, नृसिंह-पुराण, शतकंध-रामायण, कविजनाश्रय, हरविलास तथा सुमती-शतक की गण की जाती है। लक्षण (रीति) ग्रन्थों में इन कृतियों से जो पद्य उद्धृत किये गये हैं, उपर्युक्त नाम वाले उपलब्ध ग्रन्थों में वे पद्य नहीं हैं। कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु ने लिखा है कि बसव पुराण का कन्नड़ अनुवाद भीमना ने ही किया है, परन्तु उसमें उल्लिखित कवि के माता-पिता के नाम भिन्न होने के कारण यह भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता।

अप्पकवि ने बताया है कि भीमना ने "राघवपाण्डवीय" नामक द्व्यर्थी काव्य की रचना की और नन्नय भट्ट ने ईर्ष्यावश उसे नष्ट करा दिया। सूरना ने भी लिखा है कि भीमना ने राघवपाण्डवीय की रचना तो की है, लेकिन वह ग्रन्थ नाम मात्र को ही अवशिष्ट रह गया है। कवि सम्राट् श्रीनाथ ने अपने "काशी-खण्ड" में भीमना की प्रस्तुति की है। इनके पश्चात् अनेक कवियों ने उनका नाम आदर के साथ लिया है। आज भीमना के नाम से केवल चाटूक्तियाँ (फुटकल पद्य) मात्र उपलब्ध होती हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि वे निन्दा या दूषण कविता करने और शाप देने में समर्थ थे, पर इनके भी अनुयायियों की संख्या तेलुगु साहित्य में कम नहीं है।

पावुलूरि (ई० सन् ११००)

मल्लना के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। कोई इन्हें

पूर्व गोदावरी जिले का बताते हैं, तो कोई उन्हें गुंटूर जिले के बापट्ला तालुके में स्थित पावुलूरि का पटवारी बताते हैं। इन्होंने संस्कृत भाषा में वीराचार्यकृत "गणितसार-संग्रह" का तेलुगु पद्यानुवाद किया था, जो तेलुगु में "पावुलूरि गणित" नाम से विख्यात है। यह गणित इतना लोकप्रिय हुआ कि "बेंजमिन हाइन" नामक एक इंग्लैण्ड के विद्वान् ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। साथ ही यह कन्नड़ में भी अनूदित हुआ है।

मल्लना के दादा को राजराज नरेन्द्र ने "नवखण्डवाड़" नामक गाँव दान (अग्रहार) में दिया था, किन्तु इस गाँव को ११८६ में वेलनाटि चोडवंशी राजा पृथ्वीश की पत्नी जयांबिका ने पिठापुरम् में स्थित कुक्कुटेश्वर मंदिर को दान कर दिया। अतः मल्लना गुंटूर जिले में आकर बस गये थे।

वीराचार्य ने दशविध गणितों का संकलन कर संस्कृत में इसे "गणित-सार-संग्रह" का नाम दिया। उसके विभाग—(१) भिन्न प्रकीर्ण, (२) भागहार-गणित, (३) सुवर्ण-गणित, (४) मिश्र-गणित, (५) भिन्न-गणित, (६) क्षेत्र-गणित, (७) खात-गणित, (८) छाया-गणित, (९) सूत्र-गणित और (१०) प्रकीर्ण गणित नाम से हैं। इनमें 'भिन्न प्रकीर्ण' का तेलुगु अनुवाद ही "पावुलूरि गणित" नाम से प्रसिद्ध है। शास्त्र-ग्रन्थों की रचना कविता में करना कठिन है, फिर भी मल्लना ने उसे सरस शैली में रचा है। संस्कृत के श्लोकों से ग्रन्थ का शुभारम्भ हुआ है।

कवि नन्नेचोडु (ई० सन् ११३० से ७० तक)

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से हमें भली-भाँति यह विदित होता है कि वीर-गाथा काल के प्रारम्भ में राजनीतिक परिस्थितियों ने साहित्यिक प्रवृत्तियों का मार्ग-दर्शन कराया, तो भक्ति-काल की पृष्ठभूमि में सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियाँ साहित्य-सर्जन की प्रेरणात्मक स्त्रोतस्विनियाँ बनीं। रीति-काल की पृष्ठभूमि में भी राजनीतिक और लाक्षणिक प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं। हिन्दी के आधुनिक युग पर राजनीति के साथ राष्ट्रीय भावना, सांस्कृतिक चेतना और पाश्चात्य साहित्य एवं दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

तेलुगु वाङमय की पृष्ठभूमि में भी धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का प्रबल हाथ रहा है। राजराज नरेन्द्र के पुत्र राजेन्द्र चोल ने ई० सन् १०७० में "कुलोत्तुंग चोल" नामक उपाधि ग्रहण कर, वेंगी चालुक्य तथा चोल राज्य के अधिपति की हैसियत से अपनी राजधानी तमिलनाडु में बनायी। वेंगी पर कुलोत्तुंग के जो प्रतिनिधि राज्य कर रहे थे, वे दुर्बल थे, परिणामस्वरूप पश्चिमी चालुक्यों ने उस पर अपना अधिकार कर लिया। भूलोकमल्ल की मृत्यु के उपरान्त आन्ध्र पर पश्चिमी चालुक्यों का प्रभाव नहीं रहा, अतः आन्ध्र के विविध प्रदेशों के सामंत स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकार पुनः आन्ध्र में राजनीतिक अशान्ति फैल गयी। इन सामन्तों में कोई शैव थे, तो कोई वैष्णव। इसलिए शैव-वैष्णव का द्वेष-भाव बढ़ता गया। फलतः उनमें धार्मिक झगड़े शुरू हुए। इसी समय वीर शैव-सम्प्रदाय का तेजी के साथ प्रचार होने लगा। भूलोकमल्ल के मन्त्री बिज्जल ने ई० सन् ११६२ में चालुक्य-साम्राज्य को हस्तगत कर लिया। इनके मन्त्री बसवेश्वर ही वीर शैवमत के प्रतिपादक हैं। इस सम्प्रदाय ने ऐसा ज़ोर पकड़ा कि उसके सामने और सम्प्रदाय ठहर न सके। इसका प्रभाव जन-जीवन पर ही नहीं, अपितु साहित्य पर भी पड़ा। वीर शैवमत की बढ़ती के साथ वैदिक धर्म और संस्कृत का प्रभाव जाता रहा और देशी भाषा, देशी छन्द और देशी इतिवृत्त को प्रश्रय मिलने लगा। भाषा, साहित्य और धर्म-प्रचार के मामलों में जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बियों के मार्ग का इन लोगों ने भी अनुसरण किया और बताया कि--

(१) वर्णाश्रम धर्म का भेदभाव सत्य नहीं है,

(२) भक्ति ही प्रधान है और

(३) मनुष्य मात्र सब समान हैं।

इस सम्प्रदाय का प्रभाव इतना अधिक हुआ कि महाभारत का अनुवाद फिर आगे न बढ़ सका। शैवमत के आन्दोलन के फलस्वरूप तेलुगु में शैव-सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक उत्तम ग्रन्थ रचे गये तथा शैव कवियों को तेलुगु साहित्य में महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ और उनका अपना एक छोटा-सा युग ही स्थापित हो गया। इन शैव कवियों में नन्नेचोड़ प्रथम माने जाते हैं। इन्होंने कालिदासकृत "कुमार-सम्भव" को आधार बनाकर तेलुगु में "कुमार-संभवमु" नाम से एक उत्तम प्रबन्ध

काव्य की रचना की। दक्षिण भारत में प्रचलित अनेक लोक-कथाओं का भी नन्नेचोड़ ने अपने काव्य में प्रसंगानुसार समावेश किया।

राजा कुलोत्तुंग चोल ने शैव धर्म को प्रोत्साहित किया, उसी समय पुनः बौद्ध तथा जैन धर्मों का प्रचार जोर पकड़ने लगा। ई० सन् १०१८ में श्री पेरंबुदूर में रामानुजाचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैत मत के विरुद्ध अपने विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार प्रारम्भ किया। इन्हीं दिनों शैवमत क्रमशः पाशुपत, योग-शैव, कापालिक-शैव, काला-मुख, लाकुल इत्यादि रूपों में प्रचार पाने लगा। शैवागम के आचार्य मंधान भैरव तथा कालमुख योगी मल्लिकार्जुन आदि मदुरा, अलंपूर, श्रीशैल आदि क्षेत्रों में अपने शैव मत का प्रचार करने लगे थे। अद्वैतमत सर्वसाधारण की पहुँच के बाहर था, अतः भक्ति-प्रधान वैष्णव मत का दक्षिण में प्रचार करने में शठकोप, नाथमुनि, यामुनाचार्य आदि सफल और समर्थ रहे। ये लोग निम्न जाति वालों को भी अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करते थे। इसी समय आल्वारों ने वैष्णव मत तथा नायनारों ने शैव मत का अच्छा प्रचार किया। शैव मत का प्रचार साधारण जनता में ही नहीं, अपितु राज-परिवारों में भी फैला, परिणामस्वरूप कई राजा शैव सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये। उनमें नन्नेचोड़ भी एक थे।

नन्नेचोड़ चोड़वंशी नरेश थे। ये २१,००० गाँवों के अधिपति थे। ये पाकनाडु के चोड़वल्लि के पुत्र थे। इनके काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ पंडित इन्हें नन्नय भट्ट के पूर्व (ई० सन् ९५० से १०००) के मानते हैं, कतिपय समीक्षकों के अनुसार ये ई० सन् ११३० के ठहरते हैं। ये राजकवि थे। इन्होंने "कुमार-संभवमु" तथा "कला-विलास" की रचना की है। कुमार-संभव १२ आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है और यह चंपू-शैली में विरचित है तथा इसमें २००६ पद्य और गद्य हैं। इस काव्य को नन्नेचोड़ ने अपने गुरु श्रीशैल के जंगम-मल्लिकार्जुन शिवयोगी को समर्पित किया है। शिवयोगी एक महान् पण्डित थे। नन्नेचोड़ शैव थे, अतः उन्होंने शिव-कथा को ही अपने काव्य की वस्तु बनायी। शिव-भक्ति, नवनाथ-सम्प्रदाय और महाव्रत आदि का विपुल परिचय देते हुए अपने इस काव्य के प्रारम्भ में इन्होंने विष्णु-स्तुति भी की है, अतः हम यह उद्भावना कर सकते हैं कि ये अद्वैती भी थे। इस काव्य में मुख्यतः कुमार-

स्वामी का जन्म तथा तारकासुर पर उनकी विजय का वर्णन किया गया है। इसके बारह आश्वासों में क्रमशः—(१) सतीदेवी का जन्म, (२) गणाधिपति का जन्म, (३) दक्षाध्वर का विनाश, (४) तारकासुर का देवताओं को सताना और मन्मथ (कामदेव) का ईश्वर पर हमला करना, (५) मार-संहार एवं पार्वती का विरह, (६) पार्वती का तप, (७) ईश्वर का वटु रूपधारण, पार्वती की तपस्या का फल, (८) ओषधीप्रस्थपुर का वर्णन एवं पार्वती और परमेश्वर के विवाह की तैयारी, (९) पार्वती और परमेश्वर का विवाह और उनकी शृंगार-लीलाएँ, (१०) श्री कुमारस्वामी का जन्म और उनका देवताओं की सेना का अधिपति होना, (११) तारकासुर और कुमार के बीच दूत-कार्य और (१२) कुमार स्वामी की विजय की कथाएँ वर्णित हैं।

नन्नेचोड़ ने अपने काव्य में जो परिवर्तन किया तथा उसमें जो नयी उद्भावनाएँ कीं, उनके अनुसार उन्होंने—(१) सतीदेवी का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताने के विचार से दक्षाध्वर-ध्वंस की कथा वर्णित की, (२) गणाधिपति ज्येष्ठपुत्र हैं, अतः द्वितीय पुत्र का जन्म-वृत्तान्त विपुल रूप से नहीं बताया, (३) रति-मन्मथ का संवाद सन्निहित किया, जो कालिदास के काव्य में नहीं है, (४) शरवण में कुमार स्वामी के जन्म को प्रधानता दिया, (५) तारकासुर से युद्ध के पूर्व दूत-कार्य सम्पन्न कराया, (६) शिव-माहात्म्य को बतानेवाले परिवर्तन—जैसे पार्वती का अक्षराभ्यास "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र से प्रारम्भ किया और (७) मन्मथ के पुनर्जन्म का कारण ईश्वर को ठहराया आदि।

"कुमार-सम्भव" काव्य में वर्णित कथा के कुछ अंश का मूल ब्रह्माण्ड पुराण का "ललितोपाख्यान" है। इस काव्य की विशेषताओं में दो बातें मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं—प्रथम इस काव्य का प्रारम्भ और अन्त "श्री" के साथ हुआ है और द्वितीय इसमें कृतिभर्ता जंगममल्लिकार्जुन तथा कृति के नायक शिवजी में अभेद की स्थापना की गयी है अर्थात् गुरु और गोविन्द में जैसे ज्ञानमार्गी कवियों ने अभेद की स्थापना की है, उसे इसमें भी सन्निहित किया गया है।

"कुमार-सम्भव" एवं प्रबन्ध काव्य है। नन्नेचोड़ ने स्वयं लिखा है कि मैं इस काव्य को अष्टादश वर्णनों से सम्पन्न ही नहीं बनाऊँगा, बल्कि नवों रसों, छत्तीसों अलंकारों से इसे पूर्ण भी बनाऊँगा तथा यह काव्य मुख्यतः शृंगार और

वीर-रस-प्रधान काव्य होगा और इसमें अन्य रसों का भी उचित रूप में वर्णन होगा। कवि ने अष्टादश वर्णनों का उल्लेख भी किया है।

वन जलकेली रवि शशि
तनयोदय मंत्रमति रतिक्षितिपरणां
बुनिधि मधुऋतुपुरोध्या
हनग विरह द्यूतवर्णनाष्टादशमुन्

(चौथा आश्वास, ४४ पद्य)

अर्थात् इसमें वन, जलक्रीड़ा, रवि, राशि, पुत्र का उदय, मंत्र-वर्णन, गति, रति, राजा, युद्ध, समुद्र, मधुपान-गोष्ठी, ऋतु-वर्णन, नगर-वर्णन, उद्वाह, विरह, पर्वत और जुए का वर्णन है, परन्तु "कुमारसम्भव" में द्यूत-वर्णन नहीं है। छत्तीस अलंकार, बन्ध-कविता, कविता में शब्द, अर्थ एवं रस-पुष्टि, उदात्त भावनाएँ एवं कल्पनाएँ काव्य की उत्कृष्टता का परिचय देती हैं। साथ ही रसवाद, धनुर्वेद, आयुर्वेद, गज-परीक्षा इत्यादि शास्त्रीय विषय, शैवागम का विपुल परिचय, समस्त कलाओं का सम्यक् ज्ञान कवि की बहुज्ञता का परिचायक है।

कवि ने कथा-वस्तु में सहजता एवं स्वाभाविकता लाने के विचार से शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण किया है। "कुमार-संभव" के प्रथम आश्वास में गणेश की जन्म-कथा जैसी वर्णित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। रजत नग के पार्श्व में सती देवी तथा महादेव भावज केलि में जब निमग्न थे, उसी समय वहाँ पर कतिपय गजयूथ करेणुओं के साथ क्रीड़ाएँ कर रहे थे। उस समय सती देवी ने गर्भधारण किया, अतः पुरुष आकृति, गज-वदन, लम्बोदर, हरिनीलवर्ण से युक्त गणेश का जन्म हुआ। इस प्रकार काव्य में औचित्य का पोषण करने के लिए महाकवि ने सुन्दर उद्-भावनाएँ की हैं। प्रकृति-चित्रण और चरित्र-चित्रण में भी आप अद्वितीय हैं। भाव-गाम्भीर्य और माधुर्य गुणों से युक्त नन्नेचोड़ की कविता अत्यन्त मनोहर बन पड़ी है। तत्कालीन समाज के आचारों का चित्रण इस काव्य की मुख्य विशेषता कही जा सकती है। इन्हीं गुणों के आधार पर श्री शिष्टा रामकृष्ण शास्त्री ने अपने "आन्ध्र-वाङमय-चरित्र-सर्वस्वमु" में लिखा है कि वाल्मीकि के समान नन्नय, व्यास के समान तिक्कना और कालिदास के समान नन्नेचोड़ तेलुगु साहित्य

में हुए हैं। वाल्मीकि और व्यास तो पुराण कवि हैं और कालिदास काव्य अथवा प्रबन्ध कवि हैं। रूप-कल्पना में नन्नेचोड़ ने चमत्कारपूर्ण मार्ग का अनुसरण कर परवर्ती कवियों का मार्ग-दर्शन किया है। पार्वती का चित्रण पढ़ते ही बनता है—

शशिबिम्बमणि हेम सौदामिनी-चयो-
त्कर कांतुलन्नियु वेदकि देच्चि,
नवलता पुष्प पल्लव बिस कोमल,
विभवंबुलन्नियु वेदकिदेच्चि,
कर्पूर चन्दन काश्मीर मृगमदी
मोदंबु लन्नियु मुंचितेच्चि,
परिवादिनी शुक परपुष्ट मधुकरा,
रावंबु लन्नियु रांचितेच्चि,
हावभावरूप लावण्य सारमुल
त्रिभुवनमुल नेंचि तेच्चि नेर्पु,
सूपदलचि याडुरूपजुडोर्नारिंचे,
ननि नुंपित नोप्पु नगतनूज ॥ (१११-७८)

अर्थात् पार्वती की सृष्टि में ब्रह्मा ने बड़ी निपुणता से चन्द्र-बिम्ब, रत्न, सुवर्ण, सौदामिनी इत्यादि की कांतियाँ, नवलता, पुष्प, पल्लव तथा अन्य कोमल सम्पदाएँ, कर्पूर, चन्दन, काश्मीर मृग, मद आदि गन्ध, शुक, मधुकर आदि की मनोहर ध्वनियाँ, हाव-भाव, रूप-लावण्य इत्यादि का सार तीनों लोकों से बड़े प्रयास के साथ खोज-ढूँढ़कर संग्रह किया, तत्पश्चात् उन्होंने पर्वत-पुत्री के सौन्दर्य की सृष्टि की।

गद्य-लेखन में भी नन्नेचोड़ ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। काव्य में पचौथी भाग गद्य है। गद्य में गति, चमत्कार और शब्दालंकारों की प्रधानता होने के कारण वह अत्यन्त कर्णमधुर बन पड़ा है। कथोपकथन में चमत्कार, उपमानों की तुलना, रस-पोषण में भावना-शक्ति की तीव्रता कवि की अन्य विशेषताएँ हैं।

मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (ई० सन् १११० से ११७५ तक)

श्री मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य का जन्म जिला गोदावरी, द्राक्षाराम में हुआ

था। इनके पिता भीमेश्वर स्वामी के मन्दिर में पुजारी थे। कहा जाता है कि श्रीशैल के मल्लिकार्जुन देव की कृपा से इनका जन्म हुआ, अतः इनका नामकरण उन्हीं के नाम से किया गया। ये शैव-मत के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने गुंटूर जिले के चन्दवोलु (धनदपुर) में वेलनाटि चोड़ राजा वीर राजेन्द्रचोल के दरबार में बौद्ध-धर्माचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपने धर्म की ख्याति स्थापित की। शैव-मत की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए ये अपना सिर देने और धधकती आग पर चलने को भी तैयार रहते थे। बताया जाता है कि बौद्ध-धर्माचार्य पराजित हो, किसी टापू के बौद्ध-विहार में ठहरे थे, तभी मल्लिकार्जुन के शिष्यों ने उनकी हत्या कर दी। इस पर क्रोधित हो राजा ने, जो उस बौद्धाचार्य के शिष्य थे, मल्लिकार्जुन की आँखें निकलवा दी, किन्तु शिवजी के अनुग्रह से उन्हें पुनः नेत्र प्राप्त हुए।

तत्कालीन प्रसिद्ध सभी शैव-तीर्थों की मल्लिकार्जुन ने यात्रा की, इस यात्रा में उन्होंने "रुद्र-महिमा," "लिंगोद्भव-गद्य", "अमरेश्वराष्टक" इत्यादि पुस्तकों की रचना की। इनके अतिरिक्त पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने, जो मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य के शिष्य थे, उनकी जीवनी "पण्डिताराध्य चरित्र" नाम से लिखी। उक्त काव्य के दीक्षा-प्रकरण के १८१ पृष्ठ में बताया गया है कि मल्लिकार्जुन ने "हरलीला", "महिम्नस्तवं", "मलहणं", "अनामयं", "हलायुधं" "पंचगद्य", "शिवतत्त्वसार", "संसार-मायास्तवं", "शंकरगीत", "आनन्दगीत", "भण्डारु बसवन्नभव्यगीत" इत्यादि अन्य कृतियों की रचना भी की है। मल्लि-कार्जुन के ग्रन्थों में "शिवतत्त्वसारमु" विशेष उल्लेखनीय है। इसमें शैव-मत का प्रतिपादन एवं वेद-विरोधी जैन, बौद्ध तथा वेद-विहित अद्वैत आदि धर्मों का खण्डन किया गया है और शिव-भक्त, गण तथा उनकी महिमाओं का वर्णन किया गया है।

मल्लिकार्जुन पण्डित पाशुपत शैव-सम्प्रदाय के थे। इसके अनुसार समस्त प्राणी पशु हैं और शिवजी उनके पति हैं। संसार का बन्धन ही माया-पाश है। पशुपति शिवजी अपने भक्तों पर अनुग्रह करके 'पाश' का विच्छेद कर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं क्योंकि मुक्ति का प्रधान मार्ग भक्ति है। इस सम्प्रदाय के लोग वेद को प्रामाणिक मानते थे और वर्णाश्रम-धर्म पर विश्वास रखते थे। मल्लिकार्जुन ने मायावाद का खण्डन किया। इनके मतानुसार संसार सत्य है और जीवात्मा

और परमात्मा भिन्न हैं। शिव और जीव में पर्वत और परमाणु का अन्तर है। ज्ञान से मुक्ति सम्भव नहीं, भक्ति से ही सम्भव है। अपने मत के प्रतिपादन में मल्लिकार्जुन ने युक्ति के साथ, वेदोक्तियों का भी आश्रय लिया है। इस धर्म में कुछ आचार अत्यन्त विचित्र हैं, जैसे—(१) पति यदि शिवजी के भक्त न हों, तो पत्नी को उन्हें त्याग देना चाहिए (२३१–३३), (२) शैव-धर्म के प्रचार में हिंसा त्याज्य नहीं है (२४७–८०), (३) शिवजी के कार्य में यदि कोई मृत्यु को प्राप्त होता है, तो दुख नहीं मानना चाहिए, (४) श्राद्ध आदि कर्म भी नहीं करना चाहिए और प्रसन्नता के साथ आनन्द मनाना श्रेयष्कर है, इत्यादि।

"शिवतत्त्वसारमु" तेलुगु का प्रथम शतक माना जाता है। शतक के लक्षणों के अनुसार शतक में १०८ पद्य ही होने चाहिए, किन्तु इसमें ४८९ कन्द छन्द हैं। शतक-शैली पर रचित होने के कारण सम्भवतः शतक-साहित्य में इसे स्थान दिया गया है। यह ग्रन्थ प्रौढ़ शैली में रचित है। तेलुगु के विख्यात कवि नन्नेचोड़ इनके शिष्य थे। ये एक पहुँचे हुए पण्डित एवं आचार्य थे। श्री शैल के समीप में ही ये अपने परिवार के साथ लिंगैक्य हुए।

अथवणाचाय

बताया जाता है कि अधर्वण ने "अधर्वण-छन्द" नाम से छन्द-शास्त्र की रचना की। वह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है, परन्तु उक्त ग्रन्थ के प्राप्त ३० पद्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वह छन्द-शास्त्र लिखा अवश्य गया था।

अधर्वण ने संस्कृत भाषा में "विकृति-विवेक" अथवा "अधर्वण-कारिकावली" और "त्रिलिंग-शब्दानुशासन" नाम से दो तेलुगु के व्याकरण लिखे हैं, परन्तु इनके कृतित्व पर विद्वान् सन्देह प्रकट करते हैं। अप्पकवि ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अनेक लक्षण (रीति) ग्रन्थों के साथ "अधर्वण-छन्द" का भी उल्लेख किया है, लेकिन उनके व्याकरणों का जिक्र नहीं किया है। अधर्वण ने अपने ग्रन्थ में हेमचन्द्र का नाम लिया है। हेमचन्द्र का समय ई० सन् १०८८ से ११७२ तक माना जाता है, अतः अधर्व हेमचन्द्र के परवर्ती कवि कहे जा सकते हैं। यह भी बताया जाता है कि अधर्वण ने "महाभारत" (विराट, उद्योग तथा भीष्म पर्व) का अनुवाद किया था, किन्तु वह वैदिक धर्म के पुनरुत्थान का युग था और अधर्वण जैन धर्मावलम्बी

थे, इसलिए उनका महाभारत अनादृत ही रहा। कुछ लोगों का विचार है कि तिक्कना के महाभारत के सामने इनका ग्रन्थ ठहर न सका।

प्रथम प्रतापरुद्र

काकतीय नरेश प्रतापरुद्र ने ओरुगल्लु (वरंगल) को अपनी राजधानी बना (ई० सन् ११४० से ११९५ तक) पचपन साल तक अविच्छिन्न रूप से आन्ध्र पर शासन किया था। ये स्वयं संस्कृत, कन्नड़ और तेलुगु भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित एवं कवि थे। शैव-सम्प्रदाय के अनुयायी होने के कारण शैव-कवियों को इन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया। ये "विद्याविभूषण" नाम से विख्यात थे। इन्होंने संस्कृत में "नीतिसार" नाम से एक ग्रन्थ की रचना की है। कवि बद्देना ने अपनी "नीति-शास्त्र-मुक्तावली" पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है। प्रतापरुद्र ने तेलुगु में भी "नीतिसार" लिखा है। श्री मानवल्लि रामकृष्ण कवि ने "नीतिसार" के अनेक पद्यों को उद्धृत भी किया है।

बय्यना

अनंतामात्य ने अपने "भोजराजीय" की भूमिका में लिखा है कि उनके दादा वय्यना को महाकवि तिक्कना ने "भव्य भारती" नामक उपाधि से विभूषित किया था, किन्तु उन्होंने कौन-कौन से काव्य लिखे, इसका कहीं भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बय्यना ने चाटु-कविता की होगी।

मन्त्री भास्कर

महाकवि तिक्कना के ये पितामह थे। चोड़वंशी राजा तिक्कना के यहाँ ये मन्त्री और दण्डनायक थे। बताया जाता है कि इन्होंने रामायण ग्रन्थ को अरण्यकाण्ड के अन्त तक लिखा था, यही कारण है कि इनके नाम के साथ "भास्कर रामायण" जुड़ा हुआ है और इसी नाम से वे लोकप्रिय हुए, परन्तु अनेक समीक्षकों का विचार है कि यह रामायण, मन्त्री भास्करकृत न होकर हुलक्कि भास्करकृत है। फिर भी, यह कहा जाता है कि मंत्री भास्कर भी एक उत्तम कवि थे और इन्होंने रामायण की रचना की थी, जो अब नष्ट हो चुका है। एक प्रवाद यह भी है कि वह काव्य जीर्ण को चुका था, जिसे चार कवियों ने बाद में पूरा किया था।

महाकवि तिक्कना

तिक्कना (ई० सन् १२२० से १२९० तक) चोडवंशी राजा मनुमसिद्धि के दरबारी कवि और महामन्त्री थे। मनुमसिद्धि नेल्लूर विक्रमसिंहपुरी के राजा थे। उनके समय में राजनीतिक अस्थिरता थी। मनुमसिद्धि के पिता तिक्कराजु अत्यन्त पराक्रमी थे, जिनकी मृत्यु के पश्चात् पड़ोसी राजाओं ने नेल्लूर पर हमला किया और राजा काटम के साथ मनुमसिद्धि का जो युद्ध हुआ, वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व रखता है। चारागाह के मामले को लेकर यह युद्ध पालेरु नदी के किनारे पंचलिंगाला के पास हुआ था। तिक्कना के चचेरे भाई (जो राजा मनुमसिद्धि के प्रधान सेनापति थे) खड्ग तिक्कना ने इस युद्ध में अपनी अपूर्व वीरता का परिचय दिया था, जो आज भी लोक-कथाओं तथा लोक-गीतों में सजीव है। एक बार मनुमसिद्धि के निकट रिश्तेदार अक्कना और बय्यना ने नेल्लूर पर आक्रमण करके मनुमसिद्धि का सिंहासन छीन लिया था, परन्तु महा-कवि तिक्कना ने काकतीय नरेश गणपति देव के सभा-भवन में पहुँचकर अपने पाण्डित्य द्वारा उन्हें मुग्ध कर दिया और अपने आश्रयदाता को छुड़वाया।

तिक्कना के पूर्व धार्मिक क्षेत्र में भी अशान्ति फैली हुई थी। आदि कवि नन्नय भट्ट ने जैन और बौद्ध धर्मों की व्याप्ति को रोकने के विचार से वैदिक धर्म का प्रचार किया था, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं ईश्वर को वेद-स्वरूप माना जाता था। बाद में शिव और विष्णु को अपने-अपने उपास्य देवों के रूप में मानकर श्रुति और स्मृतियों की अपने ढंग से व्याख्या आरम्भ हुई। यहीं से शैव और वैष्णवों के बीच परस्पर वैमनस्य बढ़ता गया। अनेक आचार्यों ने द्वैत, विशिष्टा-द्वैत इत्यादि सम्प्रदाय को जन्म दिया, किन्तु तिक्कना के समय तक देश में विभिन्न धर्मों के बीच द्वेष-भाव कम हो गया था और हरि तथा हर (शिव और विष्णु) को अद्वैत मानकर उनकी उपासना करना लोगों ने प्रारम्भ किया था। तिक्कना ने इन समस्त धर्मों के बीच समन्वय लाने के लिए हरिहर-धर्म के अद्वैत भाव को उपयुक्त मानकर पंचम वेद महाभारत को इस भाव का प्रतिपादक समझा। यही कारण है कि उन्होंने महाभारत के शेष पन्द्रह पर्वों का तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया। तिक्कना का अद्वैत-भाव कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय रूप है।

उन्होंने अपने महाभारत काव्य को नेल्लूर नगर में स्थित भगवान् हरिहरनाथ को समर्पित किया है।

काव्य की रचना में तिक्कना ने अपने समय तक प्रचलित पुराण एवं प्रबन्ध काव्यों के सम्प्रदायों का समन्वय करके नवीन रीति का प्रादुर्भाव किया। साथ ही, दृश्य काव्य की शैली में उन्होंने वार्तालाप एवं तदनुकूल चरित्र-चित्रण भी प्रस्तुत किया। भाषा के विषय में भी उन्होंने नन्नय और नन्नेचोड़ कवियों के सम्प्रदायों का सम्मिलित रूप ग्रहण किया और तिक्कना के समवर्ती कवियों ने पुराणेतर लौकिक कथाओं को ग्रहण कर उनमें चमत्कारपूर्ण कल्पनाएँ की हैं।

तिक्कना का जीवन-परिचय केतनाकृत "दशकुमार-चरितमु" में मिलता है। केतना ने अपना काव्य तिक्कना को समर्पित किया और उसमें कृतिभर्ता का परिचय भी दिया। उक्त ग्रन्थ से भलीभाँति विदित होता है कि तिक्कना के पिता, दादा आदि गुंटूर में मण्डलाधिपति थे और उनका परिवार शिक्षा, राजनीति, वेदवेदांग इत्यादि में प्रवीण था। तिक्कना राजनीति और अर्थशास्त्र के पारंगत थे तथा संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित एवं महाकवि थे। मनुमसिद्धि के दरबार में रहते हुए उन्होंने समस्त सुखों का उपभोग भी किया। इतना होते हुए भी वे विनयी, न्यायशील और चरित्रवान् थे। "सोमदेवराजीय" नामक ग्रन्थ में वर्णित है कि काकतीय नरेश गणपतिदेव के दरबार में तिक्कना ने बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था और इस पर प्रसन्न हो राजा ने उन्हें आठ गाँव और नौ लाख रुपये का पुरस्कार दिया था।

तिक्कना की कृतियाँ

तिक्कना ने अपनी कविता के उद्देश्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि काव्य में (१) पुष्पों की पंखुड़ियों में गन्ध देनेवाले पराग की भाँति अर्थपूर्ण सुन्दर शब्दों से हार गूँथ, रस-भरित भावों को प्रकट करना चाहिए, (२) ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिनसे रसभंग होने की संभावना हो, (३) अप्रचलित प्राचीन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, (४) यति और प्रास के स्थलों पर भी अर्थपूर्ण शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, न कि भर्ती करनेवाले शब्दों का, (५) मुहावरेदार सहज शैली में बाधा डालनेवाले तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए,

(६) छोटे-छोटे शब्दों में मनोहर ढंग से कविता करनी चाहिए और (७) कविता की रचना अपनी प्रशंसा के लिए न करके सुरसिक कवियों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए करनी चाहिए इत्यादि । तिक्कना ने अपनी काव्य-रचना में इन नियमों का यथासाध्य पालन भी किया है । तिक्कना की निम्नलिखित कृतियों का सविस्तार विवरण मिलता है---

(१) **निर्वचनोत्तर रामायण**---कुछ पण्डितों का विचार है कि तिक्कना के पूर्व भास्कर रामायण एवं रंगनाथ रामायण की रचना हो चुकी थी, अत: तिक्कना ने 'पूर्व रामायण' की रचना न करके 'उत्तर रामायण' की रचना की, परन्तु यह धारणा गलत सिद्ध होती है, क्योंकि बुद्धा रेड्डी ने रंगनाथ रामायण की रचना तिक्कना की रामायण के पश्चात् ही की है । इसके अतिरिक्त तिक्कना ने स्वयं लिखा है कि तेलुगु में अबतक पूर्व रामायण की रचना नहीं हुई है; फिर भी मैं रामचन्द्र का उत्तम वृत्तान्त 'उत्तर-रामायण' द्वारा प्रस्तुत कर रहा हूँ । उन्होंने 'पूर्व-रामायण' की कथा का संक्षिप्त सारांश भी प्रारम्भ में दिया है । तिक्कना ने 'उत्तर-रामायण' की रचना निर्वचन पद्धति में की है । तिक्कना ने वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड का अनुवाद मात्र नहीं किया है, वल्कि मूल-कथा को ग्रहण करते हुए और प्रक्षिप्तों तथा अनौचित्यपूर्ण घटनाओं को त्यागकर उन्होंने रससिक्त काव्य के अनुरूप इसे एक सुखान्त मौलिक काव्य का रूप दिया है । अपने काव्य को सुखान्त बनाने के अभिप्राय से तिक्कना ने मूल में वर्णित रामचन्द्र की निर्याण-कथा को त्याग दिया तथा अपने काव्य के कथा-सन्दर्भ और उसकी अनुक्रमणिका को समुचित रूप में गठित करने के लिए मूल कथा से भिन्न, पूर्व रामायण की कथा को संक्षिप्त रूप में प्रथम आश्वास में प्रस्तुत किया । रावण का सूर्य, चन्द्र तथा पाताल लोकों पर आक्रमण करना, बाली और सुग्रीव के पिता ऋक्षस का वृत्तान्त और असंख्य राजाओं के भी वृत्तान्त को प्रक्षिप्त होने के कारण तिक्कना ने त्याग दिया और काव्योचित वर्णन की उन्होंने रक्षा की । इस काव्य में रावण का जन्म, सीताजी का वनवास, लव-कुश का जन्म आदि दस आश्वासों में वर्णित हैं । इसका रचना-काल ई० सन् १२५३ से ५८ के बीच माना जाता है ।

तिक्कना ने अपने काव्य के नायक श्री रामचन्द्र को एक साधारण मानव क

रूप में चित्रित किया है। उनके अतिमानवीयता के अंश को निकाल कर उन्हें सुख-दुख आदि मनोविकारों से पूर्ण बनाया है। सीता-परित्याग तथा शूद्रक मुनि के वध के समयों में श्रीरामचन्द्र ने जैसी व्यथा का अनुभव किया है, उसका चित्र पढ़ते ही बनता है।

रामचन्द्रजी सीताजी का परित्याग कर उन्हें वन में भेज रहे हैं, परन्तु यह वृत्तान्त उनसे बताते नहीं। उन्होंने पिछले दिन ही रामचन्द्र से यह कहा था कि गंगा के तट पर स्थित तपोवनों को देखने की इच्छा है, अतः उस ओर टहलने जायेंगे। इसका स्मरण दिलाकर रामचन्द्रजी सीता जी से कहते हैं कि तुम्हारे मनोरथ की पूर्ति के लिए लक्ष्मण को नियत किया है। तुम रथ पर सवार हो, वह तपोभूमि देख आना। यह वृत्तान्त हमें मूल में भी नहीं मिलता। सीताजी को वन-भूमि में छोड़ लक्ष्मण के लौट आने पर रामचन्द्रजी एकान्त में सीताजी का स्मरण कर विलाप कर उठते हैं। यह चित्र अत्यन्त हृदय विदारक और अति कारुणिक है। इसी प्रकार शंबूक-वध में राज-धर्म और मानव-धर्म के बीच जो संघर्ष होता है, उसका रामचन्द्रजी के चरित्र में सजीव चित्र खींचा है महाकवि ने। तिक्कना के काव्य की एक विशेषता उसकी उत्कृष्ट नाटकीयता है। इसका उत्तम उदाहरण रंभा-रावण का चमत्कारपूर्ण वार्तालाप है। यह एक भिन्न रूपक-सा लगता है। भावों के अनुरूप भाषा एवं शब्द-योजना, प्रकृति-वर्णन, युद्ध-वर्णन, शृंगार-वर्णन अत्यद्‌भुत बन पड़े हैं। इसमें गद्य न होने के कारण यह निर्वचन (गद्य-रहित) 'उत्तर-रामायण' कहलाया है।

(२) **महाभारत**—उत्तर-रामायण की रचना के पश्चात् तथा महाभारत की रचना के पूर्व तिक्कना ने यज्ञ किया था और वे सोमयाजी हो गये थे। तभी से वे तिक्कना सोमयाजी कहलाये। 'उत्तर-रामायण' काव्य को उन्होंने अपने आश्रयदाता मनुमसिद्धि को समर्पित किया था और महाभारत को अपने आराध्य देव हरिहर नाथ को। निर्वचनोत्तर रामायण के रचना-काल के समय तिक्कना भोगी थे और महाभारत की रचना उन्होंने चंपू शैली में की है।

महाभारत की रचना में तिक्कना ने नन्नय की पद्धति का अनुसरण किया है। मूल काव्य को कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत करके उन्होंने स्वतन्त्रता का निर्वाह किया है और कहीं-कहीं कुछ घटनाओं को अनावश्यक समझकर इन्हें त्याग

भी दिया है, जैसे यदि भगवद्गीता को संक्षिप्त किया तो विराट पर्व का विस्तार किया। इसी प्रकार तत्त्वोपदेश-सम्बन्धी विषयों को भी संक्षिप्त किया। काव्य-कला के लक्षणों के अनुरूप उन्होंने काव्य-रचना की। कतिपय पण्डितों का विचार है कि तिक्कना ने अपने महाभारत में अद्वैत-मत का प्रतिपादन किया है।

तिक्कना की कविता में तीन चौथाई शब्द शुद्ध तेलुगु के हैं, केवल एक चौथाई शब्द ही तत्सम हैं। अपने समय में प्रचलित देशी शब्दों के शिष्ट रूपों को ग्रहण करके उन्होंने अपने काव्य को सरस बनाया है। तिक्कना की रचना में नाटकीयता तो उल्लेखनीय है ही, कथा-सन्दर्भ के अनुरूप ही रस-परिकाय की दृष्टि से पात्रों में भावोद्रेक की अभिव्यक्ति कराने में कवि को अपूर्व कौशल प्राप्त है। द्रौपदी और कीचक का प्रसंग पाठकों को उत्तेजित करने में समर्थ हुआ है। प्रसंग के अनुरूप ही मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग करके तिक्कना ने अपने काव्य को सरस, सरल एवं सजीव बनाया है। नारी-वर्णन में तिक्कना ने कहीं मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया है, नख-शिख वर्णन में संयम और सौन्दर्य दोनों की उन्होंने रक्षा की है। पात्रों की चित्तवृत्तियों के विशद वर्णन में तिक्कना ने अपनी प्रतिभा और कौशल का सुन्दर परिचय दिया है। विविध प्रकार के भावों के चित्रण के लिए विविध प्रकार के छन्दों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। यदि गाम्भीर्य, उत्साह और उदात्तता को व्यक्त करने के लिए उन्होंने मत्तेभ और शार्दूल वृत्तों का प्रयोग किया है तो शृंगार और करुण-रस के प्रसंगों के चित्रण में चंपकमाला और उत्पलमालाओं का।

तेलुगु साहित्य में तिक्कना का स्थान

तेलुगु के विख्यात समीक्षकों का विचार है कि संस्कृत-साहित्य में कालिदास के कविता-शिल्प की जो मान्यता है, वही तेलुगु में महाकवि तिक्कना की है। तिक्कना तेलुगु वाङ्मय में "कविब्रह्म" नाम से विख्यात है। इनके समकालीन कवियों और रीति-शास्त्रकारों ने तिक्कना को अपना कृति-पति बनाया और परवर्ती कवियों ने इन्हें गुरु और आचार्य रूप में माना। इनकी शिष्य-परम्परा में एकलव्य-जैसे अनेक अनन्य शिष्य हुए हैं। बाद के अनेक कवियों ने तिक्कना को तेलुगु-साहित्य का उद्धारक बताया है। आदि कवि नन्नय के २०० वर्ष बाद

तिक्कना ने महाभारत के शेष १५ पर्वों की रचना करके आन्ध्र-जनता की प्रशंसा प्राप्त की। वनपर्व का जो शेषांश रह गया था, उसे एर्राप्रेगडा ने एक सौ वर्ष बाद पूरा किया। इस प्रकार तीन सौ वर्षों में तेलुगु महाभारत समाप्त हुआ। तीनों प्रतिभाशाली महाकवि थे, परन्तु इनकी शैली में भिन्नता है। नन्नय की शैली कथन-प्रधान है, तो तिक्कना की नाटकीयता प्रधान और एर्राप्रेगडा की वर्णनात्मक।

दूत-कार्य और युद्ध-वर्णन में तिक्कना ने जिस प्रतिभा और कौशल का चमत्कार दिखाया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसका कारण तिक्कना की राजनीतिज्ञता, युद्ध-निपुणता और वीरता है। वे स्वयं एक प्रधानामात्य और सेनापति थे, योद्धा तो थे ही। कृष्ण का दूत-कार्य राजनीति के दाँव-पेंचों का सुन्दर परिचय देता है। उनकी बहुज्ञता, समयस्फूर्ति और उनकी वाणी की निपुणता तो पढ़ते ही बनती है। कर्ण और अर्जुन का युद्ध बड़ा सजीव बन पड़ा है। तिक्कना के शास्त्र-ज्ञान एवं लोक-(व्यावहारिक) ज्ञान का सम्मिलित दर्शन उनके महा-ग्रन्थ महाभारत में मिलता है। महाकवि के अन्य ग्रन्थ विजयसेन, कवि-सार्व-भौम-छन्द और कृष्ण शतक माने जाते हैं।

केतना (ई० सन् १२२० से १२८० तक)

केतना संस्कृत और तेलुगु के उद्भट विद्वान् और कवि थे। ये महाकवि तिक्कना के समकालीन थे। इन्होंने कुल तीन ग्रन्थों की रचना की है। इनका प्रथम काव्य, संस्कृत के दण्डीकृत "दशकुमार-चरित्र" नामक गद्य ग्रन्थ का चंपू शैली में अनुवाद है। इस काव्य को केतना ने तिक्कना को समर्पित किया है और इसका परिचय भी स्वयं कवि ने दिया है, यथा—

कवित जेप्पि युभयकविमित्रुमेप्पिप
नरिदि ब्रह्मकैन नतडुमेच्च
बरग दशकुमार चरितंबु जेप्पिन
प्रोडनन्नुवेरे पोगड़नेल ॥

अर्थात् उभय कवि मित्र नाम से विख्यात तिक्कना को अपनी कविता द्वारा प्रसन्न करना ब्रह्मा के लिए सम्भव नहीं है, ऐसी स्थिति में मैंने उन्हें अपने

दशकुमार-चरित्र द्वारा खुश किया, फिर मेरी और मेरी कविता की प्रशंसा करने की आवश्यकता ही क्या है ?

कुछ लोगों का विचार है कि केतना तिक्कना के शिष्य थे, उन्होंने अपने काव्य को अपने गुरु के चरणों में समर्पित किया, परन्तु यह तर्क निराधार है । दण्डीकृत दशकुमार-चरित्र, पद-लालित्य और अर्थ-गाम्भीर्य की दृष्टि से अनुपम गद्य काव्य है, केतना ने इसका अनुवाद गद्य में न करके चंपू में किया है । अनुवाद करते समय केतना ने श्रृंगार-प्रधान घटनाओं को अति संक्षिप्त किया है और चरित्र-चित्रण में स्वतन्त्र-चिन्तन का परिचय दिया है । मूल में विकटवर्मा की कथा बताती है कि वह अत्यन्त कुरूप था, अतः उसकी पत्नी उसे नहीं चाहती थी और अन्त में उसने इसे मरवा डाला । विकट वर्मा के चरित्र में स्वाभाविकता लाने के विचार से केतना ने उसे अशिक्षित, नीच, उजड्ड, अशिष्ट तथा दासियों के साथ संभोग करनेवाला अधम व्यक्ति बताया है और लिखा है कि इसी कारण उसकी पत्नी उससे घृणा करती थी । इसी प्रकार सोमदत्त के वृत्तान्त को भी उन्होंने औचित्य की रक्षा करते हुए उपस्थित किया है ।

दशकुमार-चरित्र का प्रभाव तेलुगु-साहित्य और परवर्ती कवियों पर ऐसा पड़ा कि बाद में उसी शैली में विक्रमार्क-चरित्र, सिंहासन द्वित्रिशती, भोज-राजीय, पंचतन्त्र, हंस-विंशती, शुकसप्तति, षोडशकुमार-चरित्र, षट्चक्रवर्ती आदि अनेक ग्रन्थ रचे गये ।

केतना का दूसरा ग्रन्थ "आन्ध्र-भाषा-भूषणमु" है । यह पद्य-व्याकरण है । इस व्याकरण के प्रारम्भ में कवि ने अपना परिचय यों दिया है—

बिविध कला निपुणुड नभिनवदंडि येनंग
बुधजनंबुल चेतन् भुवि पेरुगोनिन वाडनु ।।

अर्थात् मैं समस्त कलाओं में निष्णात हूँ, और बड़े विद्वानों द्वारा अभिनव दण्डी नाम से प्रशंसा प्राप्त कर चुका हूँ ।

केतना का तीसरा ग्रन्थ "विज्ञानेश्वरीय" नामक एक धर्म-शास्त्र-ग्रन्थ है । याज्ञवल्क्यस्मृति का व्याख्यान "मिताक्षरी" का तेलुगु अनुवाद है । इसके प्रायश्चित्त खण्ड में केतना ने बताया है कि सर्वसाधारण की समझ में आने योग्य

तथा विद्वानों की प्रशंसा प्राप्त करने की रीति में समर्थ हो मैं तत्त्वज्ञ केतना "विज्ञाने-श्वरीय" की रचना कर रहा हूँ। उसी ग्रन्थ में केतना ने अपने को नाना शस्त्रज्ञ एवं विजयभूषण भी बताया है। केतना की कविता में संदर्भानुसार सुन्दर लोकोक्तियों, कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग हुआ है।

मारन कवि या मारय्य कवि

मारन कवि ने "मार्कण्डेय-पुराण" की रचना की। उन्होंने काव्य के अन्त में अपने को तिक्कना का शिष्य बताया है—"श्री मदुभय कविमित्र तिक्कन सोमयाजी प्रसादलब्ध सरस्वती पात्र, तिक्कनामात्य पुत्र, मारय नामधेय प्रणीतं।" इससे पता चलता है कि इनके पिता का नाम भी तिक्कना ही था। इस कवि ने अपनी कृति को प्रतापरुद्र द्वितीय के सेनापति नागय गन्ननायक को समर्पित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि ये ई० सन् १२९६ से १३२३ के बीच विद्यमान रहे होंगे और ई० सन् १३०० के करीब इन्होंने अपने काव्य की रचना की होगी।

बताया जाता है कि संस्कृत में व्यास महर्षि ने अट्ठारह पुराणों की रचना की है, जो क्रमशः ब्रह्म-पुराण, पद्म-पुराण, वैष्णव-पुराण, शैव-पुराण, भागवत्-पुराण, नारदीय-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, अग्नि-पुराण, भविष्य-पुराण, ब्रह्मवैवर्त-पुराण, लिंग-पुराण, वराह-पुराण, स्कंध-पुराण, वामन-पुराण, कूर्म-पुराण, मत्स्य-पुराण, गरुड़-पुराण और ब्रह्माण्ड-पुराण हैं। इन पुराणों के सर्ग, प्रति सर्ग, मन्वंतर, समस्त-नृप-वंश और वंशानुचरित ये पाँच मुख्य लक्षण माने गये हैं।

इन पुराणों में से मार्कंडेय पुराण का सर्वप्रथम मारय कवि ने तेलुगु-भाषा में आठ आश्वासों में स्वतन्त्र रूप में अनुवाद किया। इसमें धर्म-शास्त्र-सम्बन्धी बातें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं और इसमें काव्य-लक्षण समन्वित कविता कम है। प्रधानतः इसमें हरिश्चन्द्रोपाख्यान, मनुचरित्र तथा कुवलयाश्व चरित्र वर्णित हैं और गौण रूप में इसमें असंख्य कथाएँ समाहित की गयी हैं।

मारय की कविता, काव्य-लक्षणों से युक्त है। उसमें वर्णनों की अपेक्षा वस्तु की प्रधानता है और भावों में विशेष गहनता न होकर सरलता है। श्रृंगार-रस के वर्णन में कवि ने अपनी कुशलता का अच्छा परिचय दिया है।

मंचना

मंचना ने "केयूरबाहु-चरित्र" नाम से चार आश्वासों वाले काव्य की रचना की है और इसे वेलनाडु (गुंटूर प्रान्त) के चोड़-वंशी नरेश के मंत्री गुंडय को समर्पित किया है। इससे विदित होता है कि मंचना ई० सन् १३०० के करीब विद्यमान थे। विद्वानों का विचार है कि केयूरबाहु-चरित्र तथा राजशेखर-कविकृत "विद्ध-सालभंजिका" नामक संस्कृत-नाटक की कथा-वस्तु में बहुत कुछ समानता है, अत: मंचना ने संस्कृत नाटक की कथा-वस्तु को ग्रहण कर सन्दर्भानुसार काव्य में रोचकता और सरसता लाने के अभिप्राय से आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन किये होंगे। इसकी मूल कथा-वस्तु के नायक विद्याधर मल्ल हैं और उनकी राजधानी उज्जयिनी है। मंचना ने अपने काव्य के अन्य नायक केयूरबाहु की राजधानी त्रिपुरी नगरी बतायी है। राजशेखर कवि ने त्रिनगरी के राजा केयूर-वर्ष की प्रेरणा से "विद्धसालभंजिका" की रचना की है, अत: उनकी प्रधानता देने के विचार से ही उन्होंने यह परिवर्तन किया होगा। भागुरायण, चारायण, चण्डवर्मा, मेखला इत्यादि पात्र मूल ग्रन्थ और इनके ग्रन्थ दोनों में समान हैं, लेकिन यत्र-तत्र कतिपय छोटे-मोटे पात्रों के नाम और घटनाओं में परिवर्तन किये गये हैं, जो औचित्य के पोषण में अधिक सहायक हुए हैं। मूल में विदूषक का स्त्रीवेषधारी एक परिचारक के साथ विवाह कराया जाता है, किन्तु मंचना ने मेखला का पुरुषवेषधारिणी एक दासी के साथ विवाह कराया है। मूल में चारायण का कृत्रिम विवाह है, किन्तु मंचना ने मेखला का कृत्रिम विवाह कराया है।

"केयूरवाहु-चरित्र" के प्रारम्भ में ही चमत्कारपूर्ण कथाओं का सन्निवेश हुआ है। मृगांकावली प्रारम्भ में पुरुष रूप में मृगांकवर्मा नाम से पाली जाती है, जो अन्त में भागुरायण के यहाँ पहुँचती है। इसमें अत्यन्त मनोहर चमत्कार के दर्शन होते हैं। यह काव्य शृंगार-रस-प्रधान है। इसमें अनेक अद्भुत कथाओं के साथ पंचतंत्र आदि से ली गयी कई नीति-प्रधान कथाएँ भी सन्निविष्ट हैं। इस रूप में काव्य की रचना कृति-पति की इच्छा पर ही हुई है।

"केयूरबाहु-चरित्र" चार आश्वासों का काव्य है और इसमें कुल ७६० पद्य हैं। इस काव्य में कथा-वस्तु कम है और अनेक अप्रासंगिक कथाओं से धारा-

प्रवाह में शिथिलता आ गयी है। काव्य की शैली सरल और मधुर है। मुहवरा-प्रधान और शुद्ध तेलुगु में यह काव्य रचा गया है। उद्यान-विहार आदि का वर्णन कवि ने गद्य में किया है। प्रबन्ध काव्य की शैली में रचित होने पर भी अष्टादश वर्णनों को कवि ने प्रधानता नहीं दी। फिर भी, तेलुगु में इस काव्य का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भास्करुनि केतना (ई० सन् १२३० से ५१ तक)

ये महाकवि तिक्कना के पितामह मन्त्री भास्कर के पुत्र थे, यही कारण है कि इनका नाम भास्करुनि (भास्कर का) केतना पड़ा। केतना नाम से और दो कवि हुए हैं, अतः भिन्नता दर्शाने के लिए इनके नाम के साथ पिता का नाम भी जोड़ दिया गया है। पेदपाटि जग्गना ने अपने प्रबन्ध रत्नाकर में और कस्तूरि रंगकवि ने भी अपने ग्रन्थों में भास्करुनि केतना कृत "कादम्बरी" नामक चंपू काव्य से कुछ पद्य उद्धृत किये हैं, परन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है। बाणभट्ट ने संस्कृत में "कादम्बरी" की रचना गद्य में की, तो तेलुगु में इस कवि ने उसे चंपू काव्य का रूप दिया।

भद्रभूपति या बद्देना (ई० सन् १२३० से १२८० तक)

ये काकतीय साम्राज्ञी रुद्रमदेवी के सामन्त तथा कृष्णा जिले के एक छोटे भू-भाग के मण्डलाधिपति थे। ये तेलुगु चोल-वंशी थे और सूर्य-वंश में पैदा हुए थे। इन्होंने "नीति-शास्त्र-मुक्तावली" नाम से १५० पद्यों में राज-नीति-शास्त्र की रचना की है, जो "नीति-सार" अथवा "राजनीति" नामों से भी व्यवहृत हुई है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि यह ग्रन्थ संस्कृत में विरचित प्रतापरुद्र के "नीति-सार" का तेलुगु रूपान्तर है, परन्तु मूल ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। परवर्ती कवियों ने नीति-शास्त्र-मुक्तावली को भद्रभूपति का मौलिक ग्रन्थ बताते हुए अपने काव्यों में आदरपूर्वक उसका उल्लेख भी किया है।

भद्रभूपति ने राजनीति को १५ रीतियों में विभक्त किया है, प्रत्येक रीति में एक दशक पद्य हैं। ये रीतियाँ राजनीति, राज्य-लक्षण, मन्त्री-मार्ग, दुष्ट मन्त्री की चाल, अधिकार-विधि, कार्य-विचार, उपाय-गति, राज्य-रक्षा-विधि, अराजक-

वृत्ति, हितसेवक-दशा, दुष्ट-सेवक-क्रिया, दुष्ट-राजा का सेवा-बल, दानशीलता की महिमा, विवेक-संगति, और लोक-नीति रीतियों के रूप में मानी गयी हैं।

भद्रभूपति का दूसरा नाम बद्देना भी है। इन्होंने आत्मपरक सम्बोधन से प्रत्येक पद्य का अन्तिम चरण रचा है। स्वयं कवि ने इस काव्य में बताया है कि उन्होंने "नीति-शास्त्र-मुक्तावली" द्वारा राजनीति तथा "सुमति-शतक" द्वारा लोक-नीति पर प्रकाश डाला है। यह शतक इतना लोक-प्रिय हुआ है कि आन्ध्र के प्रत्येक बालक के कंठाग्र पर इसके पद्य थिरकते दृष्टिगोचर होते हैं। सरल वाक्यों में नीति-वचन जिस खूबी के साथ इन्होंने बताये हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। "सुमति" को इस शतक का मुकुट कहा जाता है। इसमें कवि के कथन का यह एक सार-भाव है कि सम्पत्ति के रहते भाई-बन्धु एवं रिश्तेदार इस प्रकार आते हैं, जैसे तालाब के भरे रहने पर मेंढक उसमें आ धमकते हैं। ऐसे नीति-वचन प्रारम्भिक पाठ से ही शिक्षा-रूप में पाये जाते हैं, यही इस शतक की लोकप्रियता का उत्तम उदाहरण है।

पाल्कुरिकि सोमनाथ (ई० सन् १२८५ से १३२३ तक)

चोल और चालुक्य राजाओं के यहाँ दण्डनाथ के पद पर रहते हुए ई० सन् १,००० के करीब बेतराजु ने काकतीय राज्य की स्थापना की। इस वंश के लोगों ने ३०० साल तक अविच्छिन्न रूप से राज्य किया। इस वंश के प्रतापी राजाओं में गणपति देव, रुद्रमदेवी तथा प्रतापरुद्र द्वितीय विशेष रूप से गणनीय हैं। काकतीय राजाओं के राज-काल में समस्त कलाओं का अच्छा विकास हुआ। इन राजाओं ने प्रारम्भ में बौद्ध-धर्म, तदनन्तर वैदिक-धर्म तथा फिर शैव-धर्म की उन्नति में प्रशंसनीय योगदान दिया। प्रतापरुद्र द्वितीय (ई० सन् १२९६ से १३२३) के समय में वीर-शैव और वैष्णव-सम्प्रदायों को समान रूप से आदर प्राप्त था। प्रतापरुद्र स्वयं शैव-मतानुयायी थे, किन्तु उनके सामन्त गोन बुद्दा-रेड्डी और साहिणीमार वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

प्रतापरुद्र द्वितीय ने सर्वप्रथम अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया, तदनन्तर मन्दिरों का निर्माण कराकर शिल्प और चित्र-कला के पोषण में उत्साह दिखाया। प्रतापरुद्र के दरबार में "प्रतापरुद्रीय" के रचयिता विश्वनाथ, शाकल्यभट्ट आदि

संस्कृत के महापण्डित तथा हुलक्किभास्कर आदि अनेक तेलुगु कवि थे। इन्होंने संस्कृत कवियों को प्रोत्साहित किया, तो उनके सेनापति-दण्डनाथ और मन्त्रियों ने तेलुगु कवियों को। गन्नय मन्त्री ने मारय कवि द्वारा मार्कण्डेय-पुराण की रचना करवायी और इन्दुलूरि अन्नय मन्त्री ने पाल्कुरिकि सोमनाथ का सत्कार ही नहीं किया, अपितु उन्हें प्रोत्साहित भी किया। प्रतापरुद्र के अश्वाध्यक्ष साहिणी-मार ने हुलक्कि भास्कर इत्यादि से चंपू रामायण लिखवाया। गोनबुद्धा रेड्डी ने स्वयं रंगनाथ रामायण की रचना की।

कोई भी सम्प्रदाय सिद्धान्त-सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर ही अधिक समय तक टिक सकता है। बसवना महाभक्त और गायक थे। भक्ति के आवेश में कई लोग बसव के अनुयायी हुए। इसी समय मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य ने अन्य धर्मावलम्बियों के साथ शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित किया, इस प्रकार बसव वीर-शैवमत के संस्थापक हुए। मल्लिकार्जुन पण्डित प्रचारक और पाल्कुरिकि सोमना इसके उद्धारक। सोमना ने अपने सम्प्रदाय के सैद्धान्तिक विवेचन के लिए पण्डितों के उपयोगार्थ सोमनाथ-भाष्य, रुद्र-भाष्य तथा जन साधारण के उपयोगार्थ बसव-पुराण, पण्डिताराध्य-चरित्र इत्यादि ग्रन्थों की रचना की। इनकी कृतियों में वीर-शैवधर्म प्रतिपादित हैं। इनकी कृतियाँ संस्कृत और कन्नड़ में भी अनूदित हुई हैं। स्वयं सोमनाथ ने भी कन्नड़ में रचनाएँ की थीं। वीर-शैव-मतानुयायियों ने बसव और मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य के पश्चात् "गुरुपीठ" के योग्य इन्हीं को माना। इन्हें वे लोग "भृंगी" का अवतार मानते थे और बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति के साथ अपनी संतति का नामकरण "सोमना" करने लग गये थे।

सोमनाथ ने वीर-शैवमत को वैदिक मत के अनुरूप बनाने में काफी श्रम किया। वैदिक मत में जिस प्रकार श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, काव्य, स्तुति इत्यादि हैं, उसी प्रकार सोमना ने भी वीर-शैवधर्म के प्रतिपादन के निमित्त चतुर्वेद-सार, अनुभवसार, रुद्रभाष्य, बसवपुराण, पण्डिताराध्य-चरित्र, वृषाधिप-शतक, बसवरगडा, बसवोदाहरण इत्यादि को संप्रेषित किया है।

सोमनाथ ने साधारण जनता के व्यवहार में प्रचलित लोक-भाषा में, सरल शैली और देशी पद्धति पर, देशी छन्द "द्विपद" में कई ग्रन्थ रचे, इसलिए इनके

सम्प्रदाय का प्रचार बड़ी शीघ्र गति के साथ हुआ। इस प्रकार सोमनाथ ने वीर-शैवमत-सम्बन्धी वाङमय को विशिष्ट लक्षण समन्वित बनाकर उसे प्रामाणिक रूप दिया और लोगों में उसके प्रति आदर-भाव पैदा किया, साथ ही वैदिक धर्म की भाँति उसे प्राचीनता, प्रामाणिकता और प्रशस्ति भी प्राप्त करायी।

सोमना काव्य के लक्षणों और भाषा की रीतियों से भलीभाँति परिचित थे, फिर भी यदि कविता की गति में रीतिक लक्षण बन्धन सिद्ध हों, तो उनका अतिक्रमण करने में वे जरा भी संकोच नहीं करते थे। परवर्ती कवियों ने सोमनाथ की प्रतिभा की अतुलनीय प्रशंसा की है। पिडुर्पति सोमना ने "बसवपुराण" काव्य में सोमनाथ की सर्वतोमुखी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है।

संस्कृत में अनुष्टुप छन्द जैसे पढ़ने, समझने और गाने में विशेष उपयुक्त होता है, वैसे ही तेलुगु में द्विपद छन्द है। सोमनाथ के पूर्व इस छन्द में कोई अच्छा काव्य नहीं रचा गया था, लोग-गीत और लोक-साहित्य अवश्य रचे गये थे। सोमनाथ ने "सत्कृति" के लिए नयी वस्तु, नौ रस, अनेक वर्णन, समस्त अलंकार, भाव-गाम्भीर्य इत्यादि आवश्यक लक्षण बताये हैं। संस्कृत के आलंकारिकों ने काव्य के दस गुण बताये हैं, किन्तु सोमनाथ इसके ४६ गुण बताते हैं, जिनमें सरलता, प्रसन्नता, परिणति, गण, पद, पद्धति, शब्द-शुद्धि, कला-समृद्धि, अर्थ-पुष्टि, रस-पुष्टि, विनूत्न-सृष्टि, विशेष्य, विशेषण, श्लेष-सौन्दर्य, सुकुमारता, यमक, गमक, यति, गति, पूरक, क्रिया, कांति, विश्रान्ति, अक्षर शय्या, रसिकता, उपमान, अवधान, उत्प्रेक्षा, लक्ष, लक्षण, व्यक्ति, अलंकार, युक्ति, सुमति, विचक्षता आदि मुख्य हैं। इसी प्रकार आलंकारिकों ने काव्य के दस दोष बताये हैं, पर इन्होंने ऐसे २५ दोष बताये हैं।

सोमना की कविता वाच्य-प्रधान है। "अनुभवसार" में कवि ने शैवधर्म के नियम बताये हैं और "चतुर्वेद-सार" में विभूति, रुद्राक्ष, लिंग-धारण आदि के माहात्म्य, प्रकृति और पुरुष के नाम, विष्णु-भक्तों का शिव-भक्त होने का कारण, अशुचि एवं शील आदि के लक्षण बताये हैं। "वृषाधिप शतक" में शिवजी के प्रति स्तोत्र, बसव की लीलाएँ और २३ भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। "बसवपुराण" और "पण्डिताराध्य-चरित्र" विशुद्ध तेलुगु के काव्य-सम्प्रदायों के आधार पर विर-

चित हैं। दोनों की कथा-वस्तु किसी पुराण से ग्रहण न करके देश के इतिहास से ग्रहण की गयी है और कथा के नायकों को महानायकों के लक्षणों से युक्त चित्रित किया गया है। सोमना ने बसव और पण्डिताराध्य को ईश्वर भक्त नहीं, बल्कि प्रमथों का अवतार माना है। शिवजी और इनमें अभिन्नता व्यक्त की गयी है। बसव तो सोमना की दृष्टि में साक्षात् ईश्वर का अवतार ही थे। पण्डिताराध्य-चरित्र में शिवजी के चाण्डाल वेष-धारण और जंगली कन्नप्पा की भक्ति के वर्णन अति अनुपम हैं।

वीर-शैवधर्म तथा तेलुगु-साहित्य में भी पाल्कुरिकि सोमनाथ का विशिष्ट स्थान है। कविता में जैसी प्रज्ञा इन्हें प्राप्त थी, पाण्डित्य में भी ये उतने ही सिद्ध और उद्भट विद्वान् थे। इन्हें वीर-शैवधर्म का ज्ञान-पीठ कहा जाता है। भाषा, इतिवृत्त और छन्द तीनों में इन्होंने देशी रीति को प्रधानता दी। ठेठ तेलुगु के माधुर्य का रसास्वादन कराने में सोमनाथ की रचनाएँ अद्वितीय हैं।

सोमनाथ के काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कोई इन्हें प्रतापरुद्र प्रथम अथवा रुद्रदेव (ई० सन् ११1० से ११९५) के समकालीन मानते हैं, तो कोई इन्हें प्रतापरुद्र द्वितीय के समकालीन बताते हैं। संस्कृत में इन्होंने सोमनाथ-भाष्य, रुद्र-भाष्य, वृषभाष्टक तथा कन्नड़ में बसव रगड़ा, सद्गुरु रगड़ा इत्यादि ग्रन्थ रचे हैं।

गोनबुद्धा रेड्डी (ई० सन् १२७० से १३२५ तक)

काकतीय नरेश शैवधर्म के अनुयायी थे, इसकी पुष्टि उनके नामों तथा कार्यों से भी हो जाती है, परन्तु उनके सामंत, सेनापति और मन्त्रियों में अधिकांश लोग वैष्णव-धर्मावलंबी थे। जनता अपनी इच्छा से किसी भी धर्म को अपना सकती थी। बसव द्वारा स्थापित वीर-शैवधर्म कर्नाटक से तथा रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित वैष्णव-धर्म तमिलनाडु से, उनके शिष्यों द्वारा आन्ध्र में फैलने लगे। उपर्युक्त दोनों धर्मों के आचार्यों का आन्ध्र में अच्छा स्वागत ही नहीं हुआ, अपितु उनके पुराण पुरुषों की कथाओं को काव्य का रूप देने का भी प्रयत्न हुआ। इसी प्रयत्न के प्रतिफल में रंगनाथ रामायण की उपलब्धि हुई है।

गोनबुद्धा रेड्डी ने अपने पिता पांडुरंग विट्ठलनाथ के नाम पर अपनी कृति

का नामकरण "रंगनाथ रामायण" किया। इस ग्रन्थ के कृतित्व के सम्बन्ध म कुछ लोग सन्देह प्रकट करते हैं। उनका मत है कि रंगनाथ नामक कवि ने ही उपर्युक्त रामायण की रचना की थी, परन्तु स्वर्गीय डॉ० कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने यह सिद्ध किया है कि रामायणकर्ता रंगनाथ नहीं, गोनबुद्धा रेड्डी ही थे। तेलुगु भाषा में यही प्रथम रामायण है। इस रामायण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह देशी छन्द द्विपद में रचित है। वाल्मीकि रामायण संस्कृत के सरल छन्द "अनुष्टुप्" में रचित होने के कारण यह "पाठ्ये गेये च मधुरम्" भी है। इस ग्रन्थ में अश्वमेघ-यज्ञ के अवसर पर लव-कुश ने श्रीरामचन्द्र के सान्निध्य में रामायण का गान किया है, जिस उद्देश्य से तेलुगु में पढ़ने और गाने के लिए उपयुक्त सरल छन्द "द्विपद" में ही बुद्धा रेड्डी ने इसकी रचना की है। यह छन्द हिन्दी के "दोहा" जैसा होता है। महिलाएँ रंगनाथ रामायण का पाठ करती हैं, प्रौढ़ लोग पुराण के रूप में उसका अध्ययन करते हैं और पुतली खेल तथा अन्य लोक-नाटचों के प्रदर्शन के समय इसी रामायण का गान किया जाता है।

द्विपद छन्द में रचित काव्य पहले आन्ध्र में अनादृत होते थे, पर इस छन्द में काव्य की रचना करके पालकुरिकि सोमनाथ ने पर्याप्त आदर पाया। बुद्दा रेड्डी की कथा-वस्तु समस्त जनता द्वारा समादृत रामचरित होने के कारण तथा इसमें सोमनाथ की रचना की अपेक्षा छन्द, व्याकरण इत्यादि के नियमों का समुचित पालन होने के कारण आन्ध्र जनता ने इस काव्य को एक प्रामाणिक काव्य माना और इसके प्रति आदर भाव भी व्यक्त किया। रंगनाथ रामायण की लोकप्रियता के और दो-तीन कारण बताये जा सकते हैं। सोमनाथ ने लौकिक पुरुष बसव को अवतार पुरुष माना था और उन्होंने कहीं-कहीं छन्द, व्याकरण आदि के नियमों का उल्लंघन भी किया था, किन्तु गोनबुद्धा रेड्डी ने सनातन धर्म सम्मत विष्णु-संभूत महापुरुष रामचन्द्रजी का चरित्र छन्द, व्याकरण आदि के नियमों का अक्षरशः पालन करते हुए "द्विपद" में रचा, जिससे उन्हें सार्वजनीन ख्याति प्राप्त हुई। सोमनाथ ने अपने काव्य में अपने माता-पिता का उल्लेख तक नहीं किया, बल्कि एक स्थान पर उन्होंने अपने को केवल अपने माता-पिता का पालित पुत्र बताया जबकि गोन बुद्धारेड्डी ने अपने पिता के नाम पर अपने काव्य

का नामकरण करके उनके प्रति अपनी पूरी कृतज्ञता प्रकट की। बुद्धा रेड्डी के पुत्र काचय और विट्ठल ने उनके ग्रन्थ के उत्तर-काण्ड की पूर्ति की।

मूल काव्य से परिवर्तन

बुद्धा रेड्डी ने अपने काव्य को अधिक सुन्दर एवं सुगठित रूप देने के विचार से मूल की कथा-वस्तु कहीं संक्षिप्त किया, तो कहीं त्याग दिया और कहीं नये प्रसंग और उद्भावनाओं को भी जोड़ा। उन्होंने अध्यात्म रामायण इत्यादि ग्रन्थों से भी कतिपय कथा-प्रसंगों को ग्रहण कर मूल कथा को और अधिक चमका दिया। काव्य में सभी दृष्टियों से आन्ध्रत्व और तेलुगुपन की झलक दृष्टिगोचर होती है। मूल संस्कृत ग्रन्थ के बालकाण्ड में "अहल्या को पाषाण बन जाने का शाप देना" नहीं है, किन्तु इन्होंने इसे अध्यात्म रामायण से गृहीत किया है। पंचवटी में शूर्पणखा के प्रवेश को अधिक स्वाभाविक बनाने के विचार से अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा के पुत्र "जंबुमाली के वृत्तान्त" को जोड़ कर कवि ने औचित्य का पोषण किया है। यह वृत्तान्त भास्कर रामायण में भी पाया जाता है। इसी भाँति युद्धकाण्ड में "कालनेमी-वृत्तान्त" और "सुलोचना-वृत्तान्त" की कथा-वस्तु में भी कवि ने नवीनता लाने का प्रयास किया है और उसमें वे समर्थ हुए हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी कवि ने अपनी उदात्तता एवं विज्ञता का अच्छा परिचय दिया है। रावण एक दुष्ट खल नायक के रूप में नहीं, अपितु जगत् को त्रस्त बनाने वाली वीरता की प्रतिमूर्ति, दूसरों के उत्तम गुणों को ग्रहण करने वाले गुणग्राही उदार व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। यही नहीं, रावण को रामचन्द्र के भक्त और ज्ञानी के रूप में भी चित्रित किया गया है। वह जानता था कि श्रीरामचन्द्र विष्णु के अवतार हैं और उनके हाथों से मृत्यु प्राप्त करने से मुक्ति की सिद्धि होगी। खुद रावण कहता है—"यदि मैं श्रीरामचन्द्र के बाणों से विद्ध हो देह-त्याग करूँगा, तो स्वर्गवासी भी जिस वैकुण्ठ की कामना करते हैं, वह स्वयं मुझे प्राप्त हो जायगा,' इसलिए हे देवी मन्दोदरी, तुम और यह लंका मुझे इससे नहीं रोक सकती, क्योंकि मैं मुक्ति का उत्तम पथ प्राप्त करना चाहता हूँ।"

कुम्भकर्ण भी धर्मभीरु और पराक्रमी के रूप में हमारे सामने आता है। मन्दोदरी पतिव्रता है और वह इंद्रजित (मेघनाद) जैसे वीर की माता भी है,

अतः युद्ध में पराजित हो घर लौटे अपने पति को डांट बताकर उन्हें उत्साहित करके पुनः युद्ध में भेज कर वीरपत्नी के कर्त्तव्य का निर्वाह करती है। वनवास के समय लक्ष्मण अपने भाई को किसी विपत्ति में फँसे जानकर सीताजी को अकेले पंचवटी में छोड़ जब रामचन्द्रजी की खोज में जाने लगते हैं, तब द्वार के सामने सात लकीर खींचकर वे सीताजी को उसका अतिक्रमण न करने का आदेश दे जाते हैं, यह प्रसंग भी मूल में नहीं है। इसी प्रकार मंथरा के कैकेयी के कान भरने का कारण बताते हुए कवि लिखते हैं कि बचपन में रामचन्द्र ने उसका पैर तोड़ दिया था, जिसका बदला लेने का उसे अब अच्छा मौका हाथ लगा है।[१]

भास्कर रामायण

तेलुगु महाभारत की भाँति ही इस काव्य की भी रचना एक कवि के द्वारा न होकर चार कवियों द्वारा पूर्ण हुई। महाभारत के कवि तीन ही थे। बुद्दा रेड्डी ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद नहीं किया, बल्कि केवल राम-कथा को ग्रहण कर एक स्वतन्त्र काव्य की उन्होंने सृष्टि की थी। बताया जाता है कि मूल रामायण का अनुवाद सर्वप्रथम एर्राप्रेगड़ा ने किया था, किन्तु वह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। मूल रामायण का प्रथम उपलब्ध अनुवाद भास्कर रामायण है। प्रतीति है कि तिक्कना के दादा मंत्री भास्कर ने एक रामायण की रचना की थी, किन्तु आज वह भी अप्राप्य है। उपलब्ध भास्कर रामायण की रचना हुलक्कि भास्कर कवि, उनके पुत्र मल्लिकार्जुन भट्ट, भास्कर के शिष्य कुमार रुद्रदेव तथा भास्कर के मित्र अय्यलार्य ने की है। यह भी प्रवाद प्रचलित है कि मंत्री भास्कर ने जिस संक्षिप्त रामायण की रचना की थी, उसका विस्तार करके उपर्युक्त चारों कवियों ने इसे सुन्दर काव्य का रूप दिया है।

हुलक्कि भास्कर

हुलक्कि भास्कर कवि साहिणी मारना नामक एक छोटे राजा के दरबारी कवि थे। बताया जाता है कि भास्कर कवि काकतीय नरेशों के यहाँ अश्वाध्यक्ष

---

१. विस्तृत विवरण के लिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण 'गुप्त' अभिनंदन ग्रन्थ में लेखक का "तेलुगु-साहित्य में रामचरित" लेख देखें।

भी रहे। भास्कर कवि ने अपने पुत्र, मित्र और छात्र की सहायता से रामायण की रचना समाप्त करके अपने प्रभु साहिणी मारना को इसे समर्पित किया। कहा जाता है कि इनका वंश नाम मंगलंपल्लि था, किन्तु अनेक राजाओं को अपनी कविता द्वारा प्रसन्न करके उनसे तांबूल उपहार के रूप में ग्रहण कर इन्होंने "हुलक्कि" नामक उपाधि प्राप्ति की थी, क्योंकि कन्नड़ में "हुलक्कि" का अर्थ "ताम्बूल" होता है। भास्कर कवि ने रामायण के अरण्यकाण्ड और युद्धकाण्ड के ११३९ पद्य मात्र रचे थे। इनकी कविता प्रौढ़ और संस्कृत शब्द-बहुल है। इनकी धारा-प्रवाह कविता में अति गम्भीर भावाभिव्यक्ति हुई है। भास्कर कवि तथा साहिणी मारना प्रतापरुद्र द्वितीय के समय में हुए थे।

मल्लिकार्जुन भट्ट

भास्कर रामायण के अधिकांश भाग की रचना इन्होंने ही की। इसके बाल-काण्ड, सुन्दरकाण्ड और किष्किन्धा काण्ड मल्लिकार्जुन भट्ट द्वारा विरचित हैं। प्रबन्ध-काव्य की शैली में रचना करने में इन्हें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। अयोध्या नगर के वर्णन और रामचन्द्र के जन्म के वर्णन में इन्होंने नवीनता का परिचय दिया है। संस्कृत और तेलुगु में इन्हें असाधारण पाण्डित्य प्राप्त था। प्रतिभाजन्य युक्ति-वैचित्र्य, माधुर्य तथा ओज इत्यादि गुण इनकी कविता में पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हुए हैं।

कुमाररुद्र देव

ये भास्कर के शिष्य थे। इन्होंने भास्कर रामायण के अयोध्या काण्ड की रचना की। कथा-प्रसंगों में औचित्य की रक्षा के हेतु इन्होंने अनेक नयी उद्-भावनाएँ की हैं। उदाहरण के लिए, मूल में केवल यही बताया गया है कि मंथरा कैकेई के साथ आयी हुई ज्ञाती दासी थी, किन्तु कुमाररुद्र ने बताया है कि रामचन्द्र के चरण-ताड़न के अपमान का प्रतिकार करने के विचार से मंथरा ने कैकेयी के कान भरे। इसी प्रकार एक दूसरा नया प्रसंग इसमें और जोड़ा गया है कि वनवास में जाते समय गंगातट पर सीता और रामचन्द्र जब तृणशय्या पर विश्राम कर रहे थे, तब पहरा देनेवाले गुह और लक्ष्मण में वार्तालाप होता है, जिस

सन्दर्भ में लक्ष्मण प्रतिज्ञा करते हैं कि चौदह वर्ष तक मैं निद्रा त्याग, कन्धे पर धनुष बाण धारण किये, श्रीरामचन्द्रजी की सेवा करूँगा। इनकी कविता सभी काव्य-लक्षणों से समन्वित और अत्यन्त मधुर हुई है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का इन्होंने सुन्दर प्रयोग किया है और शब्दालंकारों के नियोजन में तो कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

अय्यलार्य

इन्होंने युद्धकाण्ड का शेष भाग १३५६ पद्यों में पूरा किया है। भास्कर कवि ने युद्धकाण्ड में ११४० पद्य ही रचे थे, शेष की पूर्ति दक्षता के साथ इन्होंने ही की और विशेषता यह कि पूर्व रचना से इनकी रचना में कहीं भी भिन्नता दृष्टि-गोचर नहीं होती। इन्होंने श्री रामचन्द्र को सिंहासनारूढ़ कराकर ही अपनी लेखिनी को विश्राम दिया। करुण रस के चित्रण में तो इन्होंने अद्‌भुत सफलता पायी है। शब्द-सौष्ठव, अर्थ-गाम्भीर्य, अलंकार-योजना, धारा-प्रवाह वर्णन, रस-निष्पत्ति, कथोपकथन की रीति आदि में भी अन्य कवियों से ये किसी प्रकार भी कम नहीं हैं।

मूल रामायण से भिन्नताएँ—इनके रामायण में मूल रामायण से जो भिन्नताएँ पायी जाती हैं, उनमें निम्नलिखित प्रसंग उल्लेखनीय हैं—

१. गौतम महर्षि का अहल्या को पाषाण बन जाने का शाप देना,
२. रामचन्द्रजी के पट्टाभिषेक में विघ्न पैदा करने के लिए मंथरा का कैकेयी के कान भरना,
३. लक्ष्मण का जंबुमाली का वध करना,
४. बाली की पत्नी तारा का रामचन्द्रजी को शाप देना,
५. संपाति का अपने पुत्र को सीतान्वेषण के लिए भेजना,
६. नागपाश से बद्ध रामचन्द्र के पास पहुँचकर नारद मुनि का उनकी स्तुति करके यह उपदेश देना कि यदि वे अपने वाहन गरुड़ का स्मरण करेंगे, तो वे उन्हें नागास्त्र बन्धन से मुक्त करेंगे,
७. संजीवनी लाने जाते समय वीर हनुमान् का मार्ग के मध्य में कालनेमि

के आश्रम में जाना और वहाँ धान्यमाली का वध करके उसका शाप-विमोचन करना,

८. विभीषण का रामचन्द्रजी को रावण की मृत्यु का रहस्य बताना और

९. शुक्राचार्य के उपदेशानुसार रावण का पाताल होम करना।

उक्त अनेक प्रसंग पुराणों, अन्य देश-भाषाओं में रचित रामायणों तथा प्रचलित लोक-कथाओं से ग्रहण कर काव्य में औचित्य और चमत्कार लाने का सफल प्रयत्न किया गया है। कथा-प्रसंगों में ही नहीं, अपितु वर्णनों में भी रामायण के कवियों ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। रस, अलंकार एवं छन्द की दृष्टि से भी यह काव्य छोटा होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ऋष्यश्रृंग का प्रसंग हास्यरस का उत्तम नमूना है। वैश्य-वनिताएँ जब वन में ऋष्यश्रृंग के समीप पहुँच जाती हैं, तब वे उन्हें तपस्वी जानकर जिस भोलेपन का परिचय देती हैं, उसे पढ़कर स्वाभाविक रूप से हँसी फूट पड़ती है। वेश्याओं को देख ऋष्यश्रृंग कहते हैं —"आप लोगों ने बड़ी कृपा कर यहाँ आने का कष्ट किया और मुझे धन्य बनाया। आप लोग विचित्र तपस्वी हैं और आप लोगों की पूजा करके मैं तर जाऊँगा।"—यह कहते वे बड़ी श्रद्धा-भक्ति एवं निष्ठा के साथ अर्घ्य, पाद्य, दर्भ इत्यादि अपने करों में लिये हुए खड़े रहे और उन्हें बहुत भक्ति-पूर्वक कंद-मूल और फल प्रदान किये। इसे देख वे हँस पड़ीं। ऐसे ही अनेक प्रसंग हैं, जो अपनी नवीनता और चमत्कार के लिए अत्यन्त विख्यात हैं।

नंडूरि केतना (ई० सन् १२८०)

इन्होंने "कुवलयाश्वचरित्र" की रचना की है। यद्यपि आज यह ग्रन्थ प्राप्य नहीं है, फिर भी परवर्ती कवियों ने इसका उल्लेख किया है। मंचना ने अपने "केयूरबाहु-चरित्र" की कृति "अवतारणिका" में बताया है कि उनके कृति-पति नंडूरिगुंडय मन्त्री के अग्रज केतना थे।

कमलनाभामात्य (ई० सन् १२९६ से १३२३ तक)

तेलुगु के कवि-सार्वभौम तथा श्रृंगार-नैषध के प्रणेता श्रीनाथ ने अपने काशीखण्ड, भीमखण्ड आदि काव्यों में यह वताया है कि उनके मातामह कमल-

नाभामात्य पद्मपुराण के संग्रहकर्ता थे, परन्तु आज तक पद्मपुराण-संग्रह अथवा उसके पद्य प्राप्त नहीं हुए हैं। श्रीनाथ ने "सरस-साहित्य-साम्राज्यचक्रवर्ती" कहकर इनकी प्रस्तुति की है।

चिम्मपूडि अमरेश्वर (ई० सन् १३५०)

ये विक्रमसेन के रचयिता थे। १५वीं शदी से असंख्य कवियों ने आदर के साथ इनका नामोल्लेख किया है। कूचिमंचि तिम्मकवि ने अपने "सर्वलक्षण-सार-संग्रह" नामक रीति-ग्रन्थ में "विक्रमसेन" के कुछ पद्यों को उद्धृत किया है और पेद्दपाटि जग्गना ने भी अपनी "प्रबन्ध-रत्नावली" में इनके कतिपय पद्यों को उद्धृत किया है, किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि वह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। "विक्रमसेन" काव्य में माल्व देश की राजधानी उज्जयिनी के अधिपति विक्रमसेन की कथा वर्णित है। यह एक उत्तम श्रृंगार-रसपूर्ण काव्य है। यह वर्णनात्मक काव्य प्रौढ़ होने के साथ-साथ तेलुगु कविता के सौष्ठव का एक सुन्दर नमूना भी था। ऐसे अनेक काव्य तथा अन्य लक्षण ग्रन्थ काल-गर्भ में विलीन हो गये हैं, जो सब प्राप्त होते, तो तेलुगु साहित्य का गगन-मण्डल इतोदिक प्रकाशमान होता।

एर्राप्रेग्गड़ा (ई० सन् १२८५ से १३५५ तक)

एर्राप्रेग्गड़ा के समय की राजनीतिक दशा—एर्राप्रेग्गड़ा का परिचय प्राप्त करने के लिए तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का पर्यावलोकन करना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों से एर्राप्रेग्गडा को प्रेरणा प्राप्त हुई थी। ई० सन् १३२३ में प्रतापरुद्र द्वितीय को मुसलमान विजेता बन्दी बनाकर दिल्ली ले गये और इस प्रकार काकतीय साम्राज्य-सूर्य का अस्त हो गया। इस साम्राज्य का पतन होते ही उसके सेनापतियों ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। उनमें रेड्डी राजा और वेलमा नायक राजाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रेड्डी राज्य की स्थापना प्रोलय वेमा रेड्डी ने की थी और इन्होंने (ई० सन् १३२४ से ५३ तक) तीस वर्ष तक अद्दंकी को अपनी राजधानी बना अविच्छिन्न रूप से राज्य किया था। इनके पिता प्रोलय

रेड्डी और पितामह वेमा रेड्डी थे। इन दोनों के नामों से सुशोभित प्रोलय-वेमा रेड्डी का छोटा भाई मल्ला रेड्डी अत्यन्त पराक्रमी और बड़ा भ्रातृ-प्रेमी था। इसने (ई० सन् १३४८ में बहमनी सुलतानों को युद्ध में पराजित कर अपने देश से भगा दिया और उसने मोटुपल्लि बन्दरगाह पर कब्जा करके व्यापार-वाणिज्य को बढ़ाया। इसके समय में रेड्डी राज्य पश्चिम में श्रीशैल से लेकर पूर्व में सागरतट तक तथा दक्षिण में नेल्लूर से लेकर उत्तर में कृष्णा नदी तक फैला हुआ था। इस वंश ने सौ-सवा-सौ वर्षों तक राज्य किया।

इसी प्रकार स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करनेवालों में वेलम नायक भी थे। ई० सन् १३२३ में रेचर्ल वंश के सिंगमनायक प्रथम ने रायकोंडा को राजधानी बना कर राज्य करना प्रारम्भ किया। इनके पुत्र अनपोत नायक ने ई० सन् १३६१ से ८४ तक सफलता एवं समर्थतापूर्वक राज्य करते हुए उसका विस्तार किया। वरंगल, भुवनगिरि, पानगल्लु, मेदक, गोल्कोंडा आदि दुर्ग इनके अधिकार में थे। अनपोत नायक के पश्चात् उनके पुत्र सिंगम नायक द्वितीय ने ई० सन् १३५४ से १३९९ तक राजकोंडा पर राज्य किया। ये स्वयं कवि और कवियों के आश्रय-दाता भी थे। "सर्वज्ञसिंह" इनकी उपाधि थी। अनपोत नायक द्वितीय के पुत्र सिंगम नायक तृतीय ने ई० सन् १४२५ से १४७५ तक राज्य किया। ये भी "सर्वज्ञ" की उपाधि से विभूषित थे।

तत्कालीन धार्मिक दशा—रेड्डी तथा नायक राजा पहले शैव थे, फिर क्रमशः वैष्णव-धर्म के प्रति अधिक आदर दिखाने लग गये थे, परन्तु धार्मिक सहिष्णुता इनका बहुत बड़ा गुण था। रेड्डी राजाओं ने पराशर भट्टर नामक वैष्णव पण्डित तथा नायक राजा वेदान्त देशिक के पुत्र वरदाचार्य नामक वैष्णव गुरु के शिष्य बनकर तप्त मुद्राएँ करवा ली थीं, परन्तु शैव और वैष्णव धर्मों के अनुयायियों को इन दोनों राज-वंशों ने समान रूप से अग्रहार, पुरस्कार, दान आदि प्रदान किये, अतः उस समय के कवियों में धार्मिक सहिष्णुता का भाव पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए, शंभुदास होते हुए भी एर्राप्रेगडा ने "नृसिंह-पुराण" की रचना की और उसे अहोबल तीर्थ में विराजमान नृसिंह स्वामी को समर्पित किया।

तत्कालीन साहित्यिक दशा—इस समय में काव्य-रचना धर्म-प्रचारार्थ न

होकर काव्य-कला की दृष्टि से और साहित्यिक स्पर्धा के भाव से होने लगी थी। पुराणों को प्रबन्ध-काव्य की शैली में लिखने का शुभारम्भ भी इसी समय हुआ। नृसिंह पुराण इसका उत्तम उदाहरण है।

एर्राप्रेग्गडा ने रामायण, हरिवंश, नृसिंह-पुराण और महाभारत के वनपर्व (अरण्य-पर्व) का शेष भाग लिखा है। ये शिव भक्त थे, इसलिए "शंभुदास" नाम से तथा प्रबन्ध-काव्य की सुनिश्चित नींव डालने के कारण "प्रबन्ध परमेश्वर" नाम से भी विख्यात हुए। इनका वास्तविक नाम एर्रना था। उन दिनों में प्रेग्गडा, मंत्री, अमात्य आदि शब्द—पद, उपाधि, वंश आदि के नाम के आधार पर नामों के साथ जोड़े जाया करते थे। आलोचकों के मतानुसार एर्राप्रेग्गडा के पितामह "करार्पात" (वेगिनाडु) में रहा करते थे और इनके पिता बाद में गुंटूर मंडल के "गड्लूर" में आकर और मल्ला रेड्डी का आदर पाकर "चदल-वाड़ा" में बस गये थे।

तेलुगु-साहित्य में एर्राप्रेग्गडा का नाम आदि कवि नन्नय भट्ट तथा महाकवि तिक्कना के बाद अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने महाभारत के वनपर्व का शेषांश रचकर महाभारत की रचना का कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण किया। इस प्रकार "कवित्रय" द्वारा महाभारत की रचना का कार्य सम्पन्न हुआ। यह महाकाव्य इतना लोकप्रिय हुआ कि आन्ध्र में एक कहावत ही चल पड़ी—"तिंटे गारेलु तिनालि, विंटे महाभारतमु विनालि"—अर्थात् "खाना ही है तो बड़े खाइए और सुनना ही हो तो महाभारत सुनिए।"

वनपर्व में कुल २९०० गद्य और पद्य हैं, जिनमें १३०० की रचना नन्नय ने और १६०० की रचना एर्राप्रेग्गडा ने की है। वनपर्व के मध्य-भाग से रचना प्रारम्भ करने के कारण एर्राप्रेग्गडा ग्रन्थ की अवतरणिका में अपना परिचय नहीं दे पाये, अतः पर्व की समाप्ति पर आश्वासांत के पद्यों में भी इस कवि ने नन्नय का ही नाम लिया और उस शेष भाग को राजराज नरेन्द्र को ही समर्पित किया। यह महाकवि की उदारता ही कही जा सकती है। नन्नय की कविता "शारद रात्रुलंदु····" नामक पद्य से समाप्त हो जाती है, एर्राप्रेग्गडा ने "स्फुरदरुणांशु रागरुचि बोंपिरिवोयि, निरस्त नीरदा"—नामक पद्य से ऐसी कुशलता के साथ इसे आगे की रचना के लिए प्रारम्भ किया कि शैली में बिलकुल

भिन्नता नहीं दिखाई देती । क्रमशः तिक्कना की शैली की ओर इनकी कविता परिणत हुई है और दोनों कवियों की शैलियों का गंगा-यमुना सदृश संगम करने का संयोग और श्रेय एर्राप्रेग्गडा को ही है। इनकी कविता सरस्वती की भाँति अन्तरप्रवाहिनी हो इस संगम में ऐसी जा मिली है कि कहना पड़ता है कि यह कार्य किसी अति प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि के द्वारा ही सम्भव था। नन्नय और तिकक्ना की कविता-भूमियों को मिलाने वाले सेतु अथवा वारधि का निर्माण किया एर्राप्रेग्गडा ने । इनके विरचित महाभारत के प्रसंगों में धर्म-व्याध का उपाख्यान, रामकथा, सावित्री और सत्यवान इत्यादि के प्रसंग अत्यन्त सुन्दर और मनोरम बन पड़े हैं।

प्रोलय वेमा रेड्डी के भ्राता मल्ला रेड्डी का आश्रय एर्राप्रेग्गडा को प्राप्त हुआ था, जिससे कवि को अपनी प्रतिभा का परिचय देने का स्वर्णिम अवसर मिला। मल्ला रेड्डी ने एर्राप्रेग्गडा को वेमा रेड्डी के दरबार में समुचित स्थान दिलाया। इस बात को कवि ने बड़ी ही कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया है और साथ ही उन्होंने अपने "हरिवंश" नामक काव्य में मल्ला रेड्डी की प्रशस्ति भी की है और बताया है कि मल्ला रेड्डी एक सबल और समर्थ सेनापति थे तथा सुदूर द्वीपों के साथ व्यापार करते हुए वहाँ से अमूल्य रत्न, स्वर्ण, मणियाँ, मोती, हाथी, अश्व इत्यादि लाया करते थे। निम्न पद्य से इस बात की पुष्टि होती है--

"बहुजलधि द्वीपांतर,
महीश्वर प्रहित कनक मणि मौक्तिक ह
स्ति हयाद्यर्पण सेवा,
बहुमत मल्लरंथिनीश भक्त प्रिया ।।"

यही नहीं, रामायण और हरिवंश की रचना समाप्त कर इन दोनों काव्य-ग्रन्थों को उन्होंने प्रोलयवेमा रेड्डी को ही समर्पित किया। वेमा रेड्डी के दरबार में एर्राप्रेग्गडा के साथ, प्रकाश भारती योगी आदि कवि भी थे। वेमा रेड्डी ने वेन्नेल के सूर्यनार्य को अग्रहार आदि प्रदान कर उनका सत्कार किया था। एर्राप्रेग्गडा का रामायण आज अप्राप्य है, परन्तु कूचिमंचि तिम्मकवि ने अपने "सर्वलक्षण-सार-संग्रह" नामक लक्षण-ग्रन्थ में एर्राप्रेग्गडाकृत रामायण

के पद्यों को उद्धृत किया है और कतिपय संकलन ग्रन्थों में भी उनके रामायण की कविता के नमूने दिये गये हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि वह संक्षिप्त और सरल शैली में रचा गया था।

हरिवंश एक प्रकार से महाभारत का परिशिष्ट ग्रन्थ है। महाभारत की भाँति कवि ने इस काव्य की रचना में स्वतन्त्रता का परिचय दिया है। मूल में स्थित हंसडिंभकोपाख्यान, वज्रनाभ-वध आदि प्रसंगों को उन्होंने हटा दिया है। उषापरिणय के प्रसंग में वधू-वरों का मुग्ध शृंगार-प्रणय, चित्र-रेखा का चरित्र, वालकृष्ण की शैशव क्रीड़ाएँ और यशोदा देवी का वात्सल्य अत्यन्त सहज और सुन्दर है। यह काव्य दस आश्वासों और २६०० पद्यों में लिखा गया है।

नृसिंह-पुराण की कथावस्तु एर्राप्रेग्गडा ने ब्रह्माण्ड-पुराण तथा विष्णु-पुराण से ग्रहण की है। इसकी कथा-वस्तु का बीज सनक-सनंदन आदि का शाप है और उसका कार्य हिरण्यकश्यप का वध है। हिरण्यकश्यप विष्णु-विद्वेषी के रूप में चित्रित है। शुक्राचार्य का प्रह्लाद को पिता की आज्ञा मानने की सलाह देना, हिरण्यकश्यप द्वारा प्रह्लाद को सताते देख जनता का विह्वल होना आदि प्रसंग अत्यन्त अद्भुत बन पड़े हैं। प्रह्लाद अपने पिता से कहता है—

शौरि पदांबुज स्मृति रसंबुनदेलेडु नाममंबु तं
ड्री! रुर्चियिप दन्यमु गांडदिग नी वोर्नारिचिनट्टि यि
द्दारुण वह्नियुन् विनुमु तामरसाकरमध्ये नाकु ब्र,
स्फारित वीचु लौ शिखलु चल्लनि तुप्पर लौ विस्फुलिंगमुल ॥

हरिवंश में एर्राप्रेग्गडा ने अनेक सुन्दर उद्भावनाएँ की हैं। वे सब प्रसंगानुसार ऐसी रोचक और मनोहर हैं कि उनकी भावना-शक्ति पर पाठक आश्चर्यचकित हो जाते हैं, जिन्हें विस्तार के भय से हम यहाँ नहीं दे रहे हैं। ढाई सौ वर्षों से अपूर्ण महाभारत को पूर्णता प्रदान कर तथा प्रबन्ध काव्य की रचना की सुदृढ़ नींव डालकर एर्राप्रेग्गडा सदा के लिए अमर हो गये।

नाचन सोमनाथ (ई० सन् १३१० से १३६० तक)

हिन्दू-धर्म की रक्षा के हेतु आन्ध्र में रेड्डी तथा नायक राजाओं ने बीड़ा उठाया और मुसलमानों को आन्ध्र से भगा दिया। इसी भाँति तुंगभद्रा के तट पर

हम्पी में विद्यारण्य की कृपा से ई० सन् १३३६ में हरिहर और बुक्कराय नामक दो भाइयों ने विजयनगर राज्य की नींव डाली। हरिहर और बुक्कराय आन्ध्र-वासी थे या कर्नाटकवासी, यह प्रश्न आज तक विवादास्पद है। आन्ध्र के इतिहास-कारों का कहना है कि ये काकतीय राजाओं के सेनापति और मन्त्री के पदों पर रहे। जो हो, दोनों भाई बड़े पराक्रमी थे। हरिहरराय ने ई० सन् १३३६ से ५० तक तथा बुक्कराय ने ई० सन् १३५० से ७७ तक राज्य किया। इसी समय वैदिक धर्म का पुनः उद्धार हुआ। माधव सायणाचार्य (विद्यारण्य) ने वेदों के भाष्य लिखे। शैवधर्म के प्रति उन्हें विद्वेष न था और वैदिक धर्म के साथ संस्कृत का भी समुचित सम्मान होता था। संस्कृत के साथ तेलुगु आदि देशी भाषाएँ भी सम्मान्य थीं। उस समय कवियों में स्पर्धा की भावना अधिक थी। ऐसी दशा में नाचन सोमनाथ का आविर्भाव हुआ।

सोमनाथ का वृत्तान्त पूर्ण-रूप से प्राप्त नहीं हुआ है। एक शिला-लेख द्वारा विदित हुआ है कि बुक्कराय ने सोमनाथ तथा पाँच अन्य ब्राह्मणों को कड़पा जिले के "पेंचुकल दिन्ने" तथा "बुक्करायपुर" नामक अग्रहार दान किया है। परवर्ती कवियों की प्रशंसा और स्तुतियों द्वारा भी इस बात की पुष्टि होती है। कहा जाता है कि सोमनाथ ने उत्तर हरिवंश और वसंतविलास नामक दो काव्य रचे थे, परन्तु आज तक वसन्तविलास अज्ञात ही रह गया है। उत्तर हरिवंश की भूमिका भी प्राप्त नहीं हुई है। विद्वानों का कहना है कि वह नष्ट हो गयी होगी। परन्तु, चदलवाड मल्लना ने अपने विप्रनारायण चरित्र में एर्राप्रेग्गडा को अपने वंश का पुरुष बताते हुए लिखा है—"प्रौढिमै हरिवंश भागमुल रेंडुनु, रचियिंचे सभलंदु प्राज्ञुलेन्न"—अर्थात् हरिवंश के दोनों भाग प्रौढ़ शैली में एर्राप्रेग्गडा ने लिखे। विद्वत्सभाओं में विद्वानों ने उनकी प्रशंसा की, लेकिन पूर्वहरिवंश आज उपलब्ध नहीं है।

उत्तर हरिवंश की रचना इतनी प्रौढ़ है कि परवस्तु चिन्नयसूरी ने कवित्रय (नन्नय भट्ट, तिक्कना और एर्राप्रेग्गडा) की कविता से भी इनकी कविता को श्रेष्ठ बताया है।

श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु ने अपने "आन्ध्र-कवुल-चरित्र" में लिखा है कि कविता-सौष्ठव की दृष्टि से सोमनाथ की कविता कवित्रय की कविता से उत्तम श्रेणी

की है और इसी कारण उन्हें "सर्वज्ञ" की उपाधि प्राप्त हुई है, जिसके वे सर्वथा योग्य हैं। सोमनाथ ने भी अपने काव्य के आश्वासांत के पद्यों में अपने को "सकल भाषा-भूषण, साहित्य-रसपोषण-संविधान-चक्रवर्ती-सम्पूर्ण कीर्ति नवीन गुण सनाथ" बताया है। श्री राल्लपल्लि अनन्त कृष्ण शर्मा इनकी कविता को इतनी उत्तम श्रेणी का नहीं मानते।

सोमनाथ की दृष्टि में हरिवंश महाभारत का परिशिष्ट ग्रन्थ है और उसे पूर्ण करने के विचार से ही इस काव्य की रचना की गयी है, जिसे काव्यकार ने हरिहरनाथ को समर्पित किया है। मानव मात्र को ये कृतिपति नहीं बनाना चाहते थे। सोमनाथ के हरिवंश में छः आश्वास और १५०० पद्य हैं। इनका काव्य शब्दार्थ की विचित्र रीतियों से पूर्ण है। इस में भावपक्ष की अपेक्षा, कला-पक्ष की प्रधानता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष के विचार से इन्होंने कहीं-कहीं संस्कृत के दीर्घ व जटिल समासों का प्रयोग किया है तो कहीं-कहीं मधुर, सुन्दर और सरल तेलुगु का। दीर्घ समासों वाली शैली का एक उदाहरण लीजिए—

> **"गांडीवाश्व झंपाघटित भयदिवौकः पुरांतः पुरंध्री**
> **गंडाभोगश्रमांभः कण कलुषित गंगा तरंगभिषंगा**
> **खंडास्मत्कांड पालीक बलित सकला काश सीमानिशांतो**
> **द्दंडातिक्रांत गर्भांतक यमभट संतानमु गानतैतिने ॥"**

इसमें वीर, शृंगार, करुण और भयानक रसों का पोषण हुआ है। चमत्कार और श्लेष इनकी कविता की अन्य विशेषताएँ हैं। विविध देशों की नामावली को इन्होंने दीर्घ समासों में अनुप्रास सहित व्यक्त कर, पाठकों में विस्मय पैदा किया है।

इसी प्रकार का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

> **"पांचल पांडय बर्बर किराताभीर, कुरुविदेह विदर्भ कुकुर गोल**
> **गांधार मगध कोंकण कलिंद बुलिंद, सिन्धु-सौवीरांध्र चेदि चोल**
> **सामुद्र सालव कोसल कलिंग, वत्स सौराष्टांग वंग मत्स्य**
> **शूरसेन सुदेष्ण सुह्मा काश कुरुश, लाट कर्नाट मा ांव वराट**
> **पुंड्रि बाह्लिक द्रविड कांमोज हूण, केकय वसा ति काश्मीर केरलमुमु।"**

समीक्षकों का अभिप्राय है कि कवित्रय की कविता में सत्त्व, रजस् व तमोगुण समान मात्रा में हैं, किन्तु नाचन सोमनाथ की कविता में रजोगुण की अधिकता है। साथ ही प्रकृति सहज गुण की अपेक्षा कल्पना इनकी कविता में अधिक दिखाई देती है। इनके उत्तर हरिवंश में नरकासुर का वृत्तान्त, उषा और अनिरुद्ध का प्रणय-वृत्तान्त अत्यन्त मनोहर बन पड़े हैं।

विन्नकोट पेद्दना

ये चालुक्यवंशी नरेश विश्वेश्वर भूपति के दरबारी कवि और राजमहेन्द्र-वरम् के निवासी थे। इनका समय ई० सन् १३३० माना जाता है। इन्होंने "काव्यालंकार-चूड़ामणि" नामक एक रीति-ग्रन्थ लिखा, जिसमें रस, अलंकार, छन्द, भाषा और काव्य आदि के लक्षण उदाहरण-सहित बताये गये हैं। काव्य-रचना से सम्बन्धित समस्त लक्षणों का परिचय देनेवाला तेलुगु में यही प्रथम ग्रन्थ है। इसके लक्षणों के उदाहरण पद्य भी पेद्दना ने ही रचे हैं। तेलुगु भाषा को संस्कृतजन्य या संस्कृतमय बताने वाले प्रथम आचार्य यही हैं। इनकी भाषा सरल और शैली सुबोध है। पेद्दना ने अपने ग्रन्थ को अपने आश्रयदाता विश्वेश्वर भूपति को समर्पित कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

जक्कय कवि

इन्होंने "विक्रमार्क चरित्र" नाम से एक काव्य का प्रणयन किया और देवराय के मंत्री सिद्दना को उसे समर्पित किया। इनकी कविता निर्मल स्रोत-स्विनी की भाँति मधुर और मनोहर है और इनके इस काव्य की कथाएँ भी अद्भुत और चमत्कारपूर्ण हैं।

दोनयामात्य कवि

इन्होंने "सस्यानन्द" और "सर्वलोकाश्रय" नाम से दो काव्य रचे। "सस्यानंद" चार आश्वासों का एक छोटा-सा काव्य है, जिसमें केवल २२५ पद्य हैं। यह काव्य श्रीशैल में विराजमान मल्लिकार्जुन को समर्पित किया गया है। यह काव्य हमें ज्योतिष-शास्त्र का स्मरण दिलाता है। इसमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चन्द्र-योग और ग्रहण-योग आदि से सम्बद्ध बातें शास्त्रीय दृष्टिकोण से वर्णित

हैं। इसमें प्रयुक्त ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द कवि की प्रतिभा के परिचायक हैं। कृषि-सम्बन्धी उपयोगी बातें भी इसमें वर्णित हैं। इनका दूसरा ग्रन्थ अप्राप्य है।

यथावाक्कुल अन्नमय्या

इन्होंने "सर्वेश्वर शतक" का प्रणयन किया। ये वीर-शैवधर्म के अनुयायी व प्रचारक थे। १३वीं शताब्दी में विद्यमान थे। इनके इस शतक में १४२ वृत्त हैं।

गणपाराध्य (ई० सन् १३२३ से १३४५ तक)

इन्होंने सर्वप्रथम तेलुगु में संगीत-शास्त्र की रचना "स्वरशास्त्र" से नाम की। ये योग-शास्त्र के सुविख्यात विद्वान् थे, इसलिए योग-शास्त्र के अनुरूप स्वर-शास्त्र की इन्होंने सृष्टि की है। ये वरंगल के निवासी थे। इनके भाई रामराजु ई० सन् १३४५ के करीब मंत्री थे, अतः ये भी उसी समय के माने जाते हैं। इन्होंने स्वर-शास्त्र की रचना मंजरी द्विपद छन्दों में की है।

अप्पन मंत्री (ई० सन् १३५०)

संस्कृत में भोजराज कृत "चारुचर्या" नामक वैद्य-शास्त्र के ग्रन्थ का तेलुगु रूपांतर अप्पन मन्त्री ने "वैद्य-शास्त्र" नाम से किया। ये उभय कविता विशारद नामक उपाधिधारी थे। तेलुगु के विख्यात समीक्षक श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने "वैद्य-शास्त्र" की भूमिका में लिखा है कि भोजराज के नाम से उपलब्ध "चारुचर्या" ग्रन्थ दो रूपों में हैं, इनमें एक छोटा और दूसरा बड़ा ग्रन्थ है। इन दोनों को आधार बनाकर अप्पन मन्त्री ने ७५ पद्यों में संक्षेप में इस कृति की रचना की है।

इस युग की विशेषताएँ—

इस युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताओं को संक्षेप में निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है—

१. यद्यपि इस युग का नामकरण भाषांतरीकरण युग अथवा कवित्रय युग

नाम से किया गया है, फिर भी कोई भी काव्य पूर्ण रूप से अनुवाद रूप में नहीं आया। मूल-कथा को ग्रहण कर कवियों ने प्रसंगों के अनुसार और युग के लक्षणों के अनुरूप वस्तु, भाषा, शैली और उद्भावनाओं में परिवर्तन किये हैं।

२. प्राय: सभी मुख्य पुराणों का काव्य के रूप में स्वतन्त्र अनुवाद हुआ है।

३. इस युग के कवि प्राय: सभी वर्गों के थे। नन्नय पुरोहित थे, नन्नेचोड दण्डनाथ थे, वद्देना नर्मसचिव थे, गोनबुद्धा रेड्डी सेनापति थे, सोमनाथ धर्माचार्य थे।

४. इस युग में पुराण, विपुल काव्य, काव्य-प्रबन्ध, द्विपदा, शतक और गद्य-कविताओं का श्रीगणेश हुआ।

५. इस युग में रीति-ग्रन्थ (लक्षण-ग्रन्थ) भी कम नहीं रचे गये। अनेक छन्द:शास्त्रों और व्याकरणों की रचना हुई, जैसे—जयदेव-छन्द, वागीन्द्रचूडामणि, गोकर्ण-छन्द, रचनाकृत कवि-जनाश्रय, अथर्वण-छन्द, केतनाकृत-आन्ध्र-भाषा-भूषण, अथर्वणाचार्यकृत विकृत-विवेक अथवा अथर्वण-करिकावलि, त्रिलिंग शब्दानुशासन और कविराक्षस कृत कविराक्षसीय इत्यादि।

६. इस युग में विविध प्रकार के अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों की भी रचना हुई, जिनमें पावुलूरि मल्लना का गणित-शास्त्र, केतनाकृत विज्ञानेश्वरीय (धर्मशास्त्र), बद्देनृपालकृत नीति-शास्त्र, गणपाराध्यकृत स्वर-शास्त्र, अप्पन मंत्रीकृत वैद्य-शास्त्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

७. संस्कृत वृत्तों तथा देशी छन्दों में भी रचना हुई।

८. बौद्ध, जैन, वैदिक, वैष्णव और वीर-शैवधर्मों का प्रचार हुआ तथा उन धर्मों के प्रतिपादन में पुराण, शास्त्र, काव्य आदि रचे गये। इस युग में मुख्यत: वैदिक, वैष्णव और वीर-शैवधर्मों की प्रधानता थी और इस युग में वाङ्मय-सृष्टि के केन्द्र-पति मुख्यत: राजमहेन्द्रवरम्, नेल्लूर, वरंगल और अद्दंकि थे।

९. इस युग में पूर्वी चालुक्य वंशी नरेश, चोड वंशी राजा तथा काकतीय साम्राटों ने कवियों का पोषण किया।

१०. इसी युग में तेलुगु भाषा पर से संस्कृत का प्रभाव क्रमश: उठने लगा और उत्तरोत्तर तेलुगु समृद्ध होने लगी। देशी और मार्गी दोनों प्रकार की कविता

रची गयी। इस युग के कवियों ने काव्य के प्रारम्भ में संस्कृत के श्लोकों की रचना करना अपनी परिपाटी-सी बना ली थी।

११. इस युग में प्रध्याक्कर छन्द का विशेष प्रयोग हुआ।

१२. महाभारत और रामायणों की रचना इसी युग में हुई।

१३. नन्नय द्वारा प्रादुर्भूत कविता-कला इस युग में पूर्ण परिणति को प्राप्त हुई।

१४. कतिपय विद्वान् इस युग की कविता को ब्राह्मण-शैव-कविता, वीर-शैव-कविता, शास्त्र-कविता, काव्य-कविता, नीति-कविता नाम से विभाजित करते हैं।

संधियुग या श्रीनाथ युग

सामान्य परिचय (ई० सन् १३५१ से १५०० तक)

भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग ई० सन् १००१ से १३५० तक माना जाता है। इस युग में महाभारत, रामायण, हरिवंश इत्यादि उत्तम ग्रन्थों का स्वतन्त्र अनुवाद हुआ, साथ ही नन्नेचोड़ कवि ने "कुमार-संभव" नाम से एक मौलिक प्रबन्ध-काव्य भी लिखा। इस काव्य में कालिदास के कतिपय श्लोकों का अनुकरण अवश्य हुआ है, किन्तु वह रूपांतर नहीं, विशुद्ध मौलिक प्रबन्ध काव्य है। इनके अतिरिक्त शैववाङमय के पितामह माने जानेवाले पालकुरिकि सोमनाथ भी इसी युग में हुए। इन्होंने देशी इतिवृत्तों को ग्रहण कर देशी छन्दों में अनेक मौलिक काव्यों का सर्जन किया। इन्हीं कारणों से साहित्य के कुछ इतिहासकार कवित्रय युग को भाषांतरीकरण युग नामकरण करना पसन्द नहीं करते। वे उस युग के किसी प्रतिनिधि कवि के नाम पर ही युग का नामकरण करने के पक्षपाती हैं। सम्भवतः इसी विवेचन के आधार पर भाषांतरीकरण युग के बाद के युग का नामकरण महाकवि श्रीनाथ के नाम पर किया गया है। इस सम्बन्ध में साहित्य के प्रायः सभी इतिहासकार एकमत हैं।

भाषांतरीकरण युग में "कुमार-सम्भव" की रचना के द्वारा तेलुगु-साहित्य में प्रबन्ध-काव्य का श्रीगणेश हुआ था और १५०० शताब्दी के बाद समस्त लक्षणों से पूर्ण कतिपय प्रौढ़ महाप्रबन्ध-काव्यों की रचना हुई। इन दोनों युगों के बीच के युग में भी प्रबन्ध लिखे गये, किन्तु इस सन्धियुग की कृतियों में उक्त दोनों युगों की विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं, अतः यह युग श्रीनाथ-युग के साथ "सन्धियुग" भी कहा जाता है। प्रबन्ध-युग की पृष्ठ-भूमि श्रीनाथ-युग में तैयार हुई। इस युग में संस्कृत का अनुकरण भी होता

रहा और मौलिक काव्य-ग्रन्थों की सृष्टि भी हुई। इस प्रकार आनेवाले युग की पूर्व तैयारियाँ इस युग में होने के कारण यह पूर्व प्रबन्ध युग भी कहा जाता है।

तद्युगीन राजनीतिक दशा

काकतीय साम्राज्य के अस्त होते ही आन्ध्र प्रदेश चार राज्यों में विभक्त हो गया। तुंगभद्रा के तट पर हरिहर और बुक्कराय ने माधव विद्यारण्य की कृपा से कर्नाटक राज्य की नींव डाली और इन दोनों ने क्रमशः ई० सन् १३३६ से १३५५ और ई० सन् १३५५ से १३७७ तक राज्य किया। उत्कल प्रान्त में कटक को राजधानी बनाकर गजपति राजाओं ने राज्य करना प्रारम्भ किया। कृष्णा नदी के तटीय प्रदेश पर अद्दंकि को राजधानी बना रेड्डी राजाओं ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। पश्चिमोत्तर में ओरुगल्लु से लेकर श्री शैलम तक के भूभाग पर राजकोंडा को राजधानी बनाकर रेचर्ल सिंगमनायडु राज्य करने लगे। इसी समय दक्षिण भारत में मुसलमानों ने भी अपने राज्य की नींव दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया।

रेचर्ल वंशी सिंगमनायडु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र अनपोत नायुडु (ई० सन् १३४० से ८०) अपने भाई माधवराय (ई० सन् १४०० से ३०) की सहायता से राज्य करने लगे। ये "सर्वज्ञ" उपाधिधारी थे। माधवराय ने 'राघवीय' नाम से रामायण की व्याख्या लिखी है। इस वंश ने सौ वर्ष तक राज्य किया और बाद में इन्होंने गजपति राजाओं की अधीनता स्वीकार कर ली।

रेड्डी राजाओं ने प्रारम्भ में अद्दंकि और तदनंतर कोंडवीडु को अपनी राजधानी बनाकर सवा सौ वर्ष तक राज्य किया। प्रोलय वेमा रेड्डी के पुत्र अनपोता रेड्डी ने ई० सन् १३५० से ६२ तक, अनवेमा रेड्डी ने ई० सन् १३६२ से १३८३ तक और कुमारगिरि रेड्डी ने ई० सन् १३८३ से १४०० तक राज्य किया। इन्होंने संस्कृत में "वसंतराजीय" नामक एक नाट्य-शास्त्र लिखा। ये कवि-गोष्ठियों में विशेष रुचि लेते थे तथा वसंतोत्सव का भी आयोजन किया करते थे। इस व्यस्तता के कारण इनकी ओर से इनके बहनोई काटय वेमा रेड्डी इनका राज्य सँभालते थे। कुमारगिरि रेड्डी के अनंतर रेड्डी-राज्य दो भागों में विभक्त हो गया। एक भाग पर राजमहेन्द्रवरम् को राजधानी

बनाकर काटय वेमा रेड्डी (ई० सन् १४०० से २० तक) राज्य करने लगे और दूसरे भाग पर कोमटि वेमा रेड्डी। वे ही पेदकोमटि वेमा रेड्डी नाम से विख्यात थे। ये अत्यन्त पराक्रमी तथा पण्डित थे। इन्होंने संस्कृत में "श्रृंगार-दीपिका" और "अमरु" काव्य की व्याख्या लिखी। वामन भट्ट ने पेदकोमटि वेमा रेड्डी की जीवनी, संस्कृत में "वीरनारायण चरित्र" नाम से लिखी है। पेदकोमटि वेमा रेड्डी के पश्चात् उनके पुत्र राचवेमा रेड्डी ने (ई० सन् १४२० से २४ तक) तथा उनके बाद श्रीगिरि कोमटि रेड्डी ने राज्य किया और इसके पश्चात् यह राज्य विजयनगर-राज्य में विलीन हो गया।

राजमहेन्द्रवरम् को राजधानी बना काट्यवेमा रेड्डी ने ई० सन् १४१५ तक राज्य किया। इनके पश्चात् अल्लाड रेड्डी ने सन् १४२६ तक राज्य किया, जिसके अनन्तर वेमा रेड्डी, वीरभद्रा रेड्डी इत्यादि ने राज्य-भार सँभाला। श्रीनाथ महाकवि वीरभद्रा रेड्डी के दरबारी थे। रेड्डी राजाओं का साम्राज्य गोदावरी से लेकर महानदी तक फैला हुआ था। उत्कल के गजपति राजा रेड्डी राजाओं के प्रताप से त्रस्त थे। ई० सन् १४३५ में कटक में जो विप्लव हुआ, उसके कारण कलिंग गंगवंश का पतन हुआ। उक्त राज्य के मंत्री कपिलेन्द्र गजपति ने सन् १४४४ में रेड्डी राज्य पर आक्रमण किया, किन्तु कर्नाटक राजाओं की सहायता से रेड्डी राजाओं की विजय हुई। सन् १४४६ में कर्नाटक के राजा प्रताप देवराव का स्वर्गवास हो गया। इस बीच चोडवंशी अन्नदेव ने तुरुष्क सेनापति की मदद से रेड्डी राजाओं के भू-भाग में से थोड़े-से हिस्से पर अधिकार कर लिया। इस बार भी कर्नाटक राज्य के सामन्तों और रेचर्ल वंश के पद्मनायक राजाओं ने भी रेड्डी राजाओं की सहायता की, किन्तु उस युद्ध में रेड्डी राजा वीर-गति को प्राप्त हुए।

बुक्कराय के पश्चात् विजयनगर पर द्वितीय हरिहर राय ने सन् १३७७ से १४०४ तक राज्य किया। इसी समय गोवा नगर तुरुष्कों के हाथ में चला गया। ई० सन् १४०४ से १४२२ तक देवराय ने राज्य किया। इनके आश्रय में विविध कलाओं का अच्छा विकास हुआ। इनके पोते प्रौढ़ देवराय (प्रताप-देवराय) ने ई० सन् १४२३ से १४४७ तक राज्य किया। तदनंतर मल्लिकार्जुन राय ने सन् १४६५ तक और विरूपाक्ष राय ने सन् १४७८ तक राज्य किया।

विरूपाक्ष के पुत्र राजशेखर ने अपने पिता का वध कर डाला जिसके परिणामस्वरूप राज्य में अराजकता फैल गयी। इससे लाभ उठाकर सालुववंशी नरसिंह राजा ने राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार संगमवंश का अन्त हो गया।

काव्य-वस्तु की दृष्टि से विचार किया जाय, तो इस युग को अनेक भागों में विभाजित किया जा सकता है। मुख्यत: इसके छ: विभाग किये जाते हैं, जो क्रमश: विपुल-काव्य, काव्य-प्रबन्ध, मिश्र-काव्य, नीति-काव्य, शतक-काव्य, और द्विपद-काव्य हैं। इनके अतिरिक्त पुराण-काव्य, शुद्ध काव्य इत्यादि रूपों में भी अन्य विभाग हो सकते हैं। लक्षणों के आधार पर विपुल-काव्य की परिभाषा यों बतायी गयी है—नाना प्रकार की कथा-प्रधान कविता से पूर्ण काव्य-शिल्प का चित्रण करनेवाला काव्य, विपुल काव्य है। पुराण-कविता में विषय और वस्तु की प्रधानता मानी जाती है और विपुल-काव्य में रस की अपेक्षा अर्थपुष्टि और भाव-गांभीर्य की प्रधानता होती है। तेलुगु-साहित्य में पुराण-कविता महाकवि तिक्कना तथा विपुल-काव्य की रचना पोतना द्वारा चरम परिणति को प्राप्त हुई है। इस समय काव्य में संस्कृत-शब्द-बहुलता के कारण क्रमश: सरल-अर्थपुष्टि का अभाव होने लगा था और उसके स्थान पर अलंकारों का प्राचुर्य होने लगा था, परिणामस्वरूप प्रबन्ध-काव्यों का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार मध्यकाल में पुराण-काव्य, विपुल-काव्य तथा प्रबन्ध-कविता के मिश्र काव्यों का प्रणयन हुआ। केतना और त्रिपुरांतक मिश्र-काव्यों की रचना के जन्मदाता कहे जा सकते हैं।

राविपाटि तिप्पना या त्रिपुरांतक

तिप्पना का दूसरा नाम त्रिपुरांतक है। इन्होंने "त्रिपुरांतकोदाहरणमु", "मदन विजयमु", "चन्द्र तारावलि", "अंबिकाशतक", "रति-शारत्रमु" इत्यादि काव्यों के साथ संस्कृत में "प्रेमाभिराममु" नामक नाटक भी लिखा था। ये अपनी शैली के लिए विशेष विख्यात हैं। उदाहरण ग्रन्थों के प्रति उस समय पण्डित-समाज में अनादर था, फिर भी इन्होंने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण शैली में, त्रिपुरांतको-दाहरणमु प्रस्तुत किया। इस काव्य की विशेषता यह है कि इसमें आठ विभक्तियों

का प्रयोग तीन बार होता है। प्रथम बार आठ विभक्तियों के प्रयोग के साथ आठ छन्द प्रस्तुत किये जाते हैं। तदनन्तर क्रमश: आठ कलिकाएँ तथा आठ उत्कलिकाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। प्रत्येक छन्द में एक ही विभक्ति का प्रयोग होता है और अन्त में आठों विभक्तियों का प्रयोग एक ही छन्द में होता है। यह भक्ति-प्रधान काव्य है, इसमें त्रिपुरांतक (शंकर) भगवान् की स्तुति की गयी है।

तिप्पना की विद्वत्ता का परिचायक उनका संस्कृत भाषा में विरचित नाटक "प्रेमाभिरामम्" है, जिसका वल्लभामात्य ने "क्रीड़ाभिराम" नाम से तेलुगु में रूपान्तर किया है। क्रीड़ाभिराम की प्रस्तावना में उपर्युक्त कवि और उनके नाटक की प्रशस्ति की गयी है।

अंबिकाशतक का मुकुट "अंबिका" है। "मदन-विजयमु" में गुणवती और पतिव्रता के लक्षण बड़ी सरस भाषा में बताये गये हैं। "चन्द्रतारावलि" भी एक प्रौढ़ रचना है। ये कवि वरंगल के निवासी थे और प्रतापरुद्र द्वितीय के समकालीन थे।

गौरना मंत्री

गौरना ने द्विपद छन्द में "हरिश्चन्द्रोपाख्यान" तथा "नवनाथ-चरित्रमु" नाम से दो काव्य लिखे। इनके जीवन-काल के सम्बन्ध में मतभेद है। इनका "हरिश्चन्द्रोपाख्यान" तेलुगु में विशेष लोकप्रिय हुआ है। यों तो हरिश्चन्द्र की कथा वैदिक काल से ही उपलब्ध होती है। मार्कण्डेय पुराण में वर्णित हरिश्चन्द्र की कथा उत्तर और पश्चिम भारत में प्रचलित है और दक्षिण भारत में स्कंध पुराण की कथा विशेष प्रचार में है। मार्कण्डेय पुराण में हरिश्चन्द्र की पत्नी का नाम शैव्या बताया गया है और स्कंध पुराण में "चन्द्रमती"। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार अन्तिम समय में हरिश्चन्द्र जब अपनी पत्नी सहित मृत पुत्र की चिता में कूदकर प्राण-त्याग करने को उद्यत हो जाते हैं, तब देवता उनकी रक्षा करते हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार जब हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी का वध करने को उद्यत होते हैं तब देवता प्रत्यक्ष होते हैं। गौरना ने अपने काव्य में नक्षत्रक पात्र की जो अपूर्व सृष्टि की, उसे आन्ध्रवासी सदा स्मरण रखेंगे। गौरना की रचना

से प्रभावित हो शंकरकवि, मल्ला रेड्डी तथा शरभ कवि ने वृत्त-शैली में इसी वस्तु को ग्रहण कर काव्यों का प्रणयन किया।

गौरना का दूसरा काव्य "नवनाथ चरित्रमु" है। यह एक शैव काव्य है। श्रीशैल में विराजित मल्लिकार्जुन को यह काव्य समर्पित है। इसमें नौ सिद्धों की कथाएँ वर्णित हैं, जिनके नाम क्रमशः ये हैं--(१) शिवनाथ, (२) मीन-नाथ, (३) सारंगधर, (४) गोरक्षनाथ, (५) मेघनाद, (५) नागार्जुन, (७) सिद्धबुद्ध, (८) विरूपाक्ष और (९) कणिका।

इस काव्य के तृतीय आश्वास में एक ब्राह्मण द्वारा यौवनवती राजकुमारी को अपने कुतंत्रों के प्रभाव में राज्य से बाहर ले जाने और अपमानित होने का वृत्तान्त अत्यन्त सरस और सरल शैली में वर्णित है।

"लक्षण दीपिका" नाम से इन्होंने संस्कृत में एक रीति-ग्रन्थ की भी रचना की है।

पशुपति नागनाथ (ई० सन् १३६९)

वरंगल के दक्षिण में अय्यनवोलु के मन्दिर के एक स्तम्भ पर सिंगमनायनि अनपोत नायडु द्वारा खुदवाया एक शिलालेख है, जो संस्कृत और तेलुगु दोनों में इस प्रकार है--"यह श्री कौशिक ब्रह्मर्षिगोत्र जनना पशुपति पण्डित पुत्रेण नाग-नाथ कवि लिखितमिदं शासनं आश्वत प्रतिष्ठितमस्तु मंगल महाश्री"। शिलालेख सन् १३६९ का है, जिसके आधार पर यह माना जा सकता है कि ये उस काल में विद्यमान थे। इनके द्वारा लिखे गये दो ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है, एक तो संस्कृत में "मदन-विलास" नाम से ख्यात है, जिसे उन्होंने अनपोत नायडु को समर्पित किया था और इनका दूसरा काव्य "विष्णु-पुराण" है, परन्तु आज यह ग्रन्थ अप्राप्य है। इस काव्य का एक पद्य आन्ध्र-साहित्य-परिषद् के पुस्तकालय में उपलब्ध उदाहरण ग्रन्थ में उद्धृत है। कोरवि गोपराजु ने भी इस कवि की स्तुति की है।

श्रीगिरि कवि (ई० सन् १३७०)

इस कवि ने "नवनाथ-चरित्र", "श्रीगिरि-शतक" तथा "श्रीरंग-माहात्म्य" नाम से तीन ग्रन्थ लिखे। तीनों आज अप्राप्य हैं। अनवेमा रेड्डी ने गोदावरी

जिले में स्थित मोगल्ल नामक एक गाँव इन्हें दान में दिया था, अतः ये सन् १३७० के आसपास के माने जाते हैं। गौरना मन्त्री ने अपने द्विपद छन्द में विरचित "नवनाथ-चरित्र" में लिखा है कि श्रीगिरि कवि ने "नवनाथ-चरित्र" वृत्तों में लिखा है।

कोरवि सत्यनारना (ई० सन् १३८०)

कोरवि गोपराजु ने अपने "सिंहासन द्वात्रिंशिक" में लिखा है कि सत्यनारना ने रामायण की रचना की है, किन्तु आज वह ग्रन्थ अप्राप्य है। गोपराजु ने लिखा है कि सत्यनारना 'आन्ध्र-कविता-पितामह' नामक उपाधि से भी विभूषित थे।

मडिकि सिंगना (ई० सन् १३७५ से १४३५ तक)

ये पुराण, दर्शन और नीति-ग्रन्थों के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने "पद्म-पुराण" का उत्तर खण्ड, "ज्ञानवाशिष्ठ", "सकल नीति-सम्मत", और "भागवत" के 'दशम स्कन्ध' की रचना की। पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में राम और कृष्ण की अवतार-सम्बन्धी कथाएँ हैं।

सिंगना के पूर्व भागवत का रूपान्तर तेलुगु में नहीं हुआ था, फिर भी इन्होंने समग्र भागवत का तेलुगु में अनुवाद न करके केवल दशम स्कन्ध का अनुवाद मात्र किया। यह ग्रन्थ द्विपद छन्द में लिखा गया है।

ज्ञानवासिष्ठ में रामचन्द्र की कथा वर्णित है। इसमें दर्शन और वेदान्त की बातें बतायी गयी हैं। १४ वर्ष की किशोरावस्था में रामचन्द्र के मन में संसार के प्रति वैराग्य-भाव देख, उन्हें तत्त्वोपदेश देकर वैराग्य से विमुख बनाने के लिए विश्वामित्रजी मुनि वसिष्ठ को नियुक्त करते हैं। वशिष्ठ के तत्त्वोपदेश ही संस्कृत में "वासिष्ठ-रामायण" या "ज्ञानवाशिष्ठ" नाम से विख्यात हैं। उक्त बृहद् ग्रन्थ को संक्षिप्त करके सिंगना ने उसका पाँच आश्वासों में तेलुगु रूपांतर किया, जिसमें करीब १२०० पद्य हैं।

"सकल-नीति-सम्मत" सिंगना का मौलिक अथवा अनूदित ग्रन्थ नहीं है। यह पूर्व कविकृत ग्रन्थों तथा पद्मपुराण से संकलित नीति-सम्बन्धी छन्दों का संग्रह

मात्र है। इन्हें राजाश्रय प्राप्त था और ये मडिकि नामक गाँव के निवासी थे, जो राजमहेन्द्रवरम् के निकट हैं।

श्रीनाथ (ई० सन् १३८० से १४६० तक)

तेलुगु-साहित्य में महाकवि तिक्कना के पश्चात् उनकी समता कर सकने वाले पण्डित कवि श्रीनाथ ही हुए हैं। "कवि सार्वभौम" नामक उपाधि से विख्यात श्रीनाथ का साहित्यिक जीवन तेलुगु-साहित्य के इतिहास में अपना गौरवमय स्थान बनाये रखता है। डॉ० चिलकूरि वीरभद्रराव ने एक स्थान पर लिखा है कि "श्रीनाथ का जीवन-चरित्र प्रस्तुत करने का अभिप्राय १५वीं शदी के आन्ध्र-देश का इतिहास लिखना है।" श्रीनाथ के पूर्व एक वर्ग ने तेलुगु-साहित्य में शब्द-साधना को प्रधानता दी, तो दूसरे वर्ग ने अर्थ-गौरव को, किन्तु श्रीनाथ उपर्युक्त दोनों गुणों का समन्वय करके शब्द और अर्थ को समान प्रतिष्ठा दिलाने वाले शिल्पी हैं। श्रीनाथ का जीवन मुख्यतः रेड्डी राजाओं तथा कर्नाटक राजाओं के इतिहास से सम्बद्ध है और राज-दरबारों, कविता-कलापों तथा साहित्यिक गोष्ठियों में ही इनका अधिकांश जीवन व्यतीत हुआ है। अपने जीवन-काल में इस महाकवि ने जैसे ऐहिक भोग-विलासों का अनुभव किया, वैसा अन्य किसी कवि के लिए दुर्लभ था। इन्होंने जो सम्मान पाया, वह तेलुगु-साहित्य में सदा अविस्मृत रहेगा।

इस युग के प्रतिनिधि कवि श्रीनाथ तेलुगु के विख्यात कवि कमलनाभामात्य के पौत्र थे। पोतम्बा और मारयामात्य इनके माता-पिता थे। इनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कोई इन्हें जिला कृष्णा, मछली पट्टणम् के निकट स्थित "कलपटम" का निवासी मानते हैं, तो कोई नेल्लूर जिले का निवासी। इनका जन्म सन् १३८० में हुआ था। पण्डित परिवार में जन्म लेने के कारण बचपन में ही इन्होंने संस्कृत और तेलुगु भाषाओं का असाधारण परिचय प्राप्त कर लिया था और बाल-वय से कविता भी करने लगे थे। स्वयं कवि ने ही काशीखण्ड में इसका उल्लेख किया है—"मैंने अत्यन्त छोटी-सी अवस्था में "मरुत्तराट् चरित्र" की रचना की, किशोरावस्था में "शालिवाहन सप्तशती" प्रस्तुत की, भरी जवानी में श्रीहर्षकृत "नैषध" काव्य का तेलुगु रूपांतर किया,

प्रौढ़ावस्था में "भीमखण्ड" तथा वय के ढलने के पूर्व "काशी खण्ड" की रचना की। इनके अतिरिक्त "हरविलास", "वीथिनाटक", "पलनाटि वीर-चरित्रमु", "शिवरात्रि-माहात्म्य", "पण्डिताराध्य-चरित" आदि इनके काव्य-ग्रन्थ हैं। इनमें इस समय "शालिवाहन सप्तशती" और "मरुत्तराट् चरित्र" उपलब्ध नहीं है।

श्रीनाथ के काव्यों में शृंगार नैषध सबसे प्रौढ़ काव्य है। पण्डितों की यह उक्ति प्रसिद्ध है—"नैषधम् विद्वदौषधम्।" श्रीहर्षकृत "नैषध" काव्य का श्रीनाथ ने प्रौढ़ शैली में सन् १४०५ से १४१० के लगभग भाषांतरीकरण किया। उस समय श्रीनाथ की अवस्था २५-३० के बीच थी। यह काव्य उन्होंने मामिडि सिंगनामात्य को समर्पित किया। मामिडि सिंगनामात्य उन दिनों में कोंडवीडु के राजा पेद कोमटि वेमा रेड्डी के यहाँ मंत्री थे, जिनकी कृपा से ये रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि नियुक्त हुए थे। पेद कोमटि वेमा रेड्डी स्वयं कवि, पण्डित और पण्डितों के आश्रयदाता तो थे ही, बड़े ही धर्मात्मा और राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने ई० सन् १४०० से १४२० तक बीस वर्ष राज्य किया। श्रीनाथ इन्हीं वेमा रेड्डी के यहाँ शिक्षाधिकारी नियुक्त हुए। श्रीनाथ का रेड्डी राजाओं के यहाँ अच्छा मान था। वे कवि और पण्डितों की परीक्षा लेकर उनका सम्मान कराते थे और शिलालेखों की रचना करना भी उनका एक मुख्य कार्य था। श्रीनाथ ने स्वयं शिलालेखों के एक श्लोक में बताया है—

विद्याधिकारी श्रीनाथो वीरश्री वेमभूपतेः।
अकरोदाकरो वार्चा, निर्मलं धर्मशासनम्॥

पेदकोमटि वेमा रेड्डी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र राय वेमा रेड्डी ने चार वर्ष तक राज्य किया और उनके स्वर्गवास के साथ श्रीनाथ आश्रय-विहीन हो गये।

कोंडवीडु से निकलकर श्रीनाथ देशाटन करने लगे। इस भ्रमण में उन्होंने "हर-विलासमु" नामक काव्य की रचना की और अपने बचपन के साथी धनी अवचि तिप्पय श्रेष्ठी को इसे समर्पित किया। तिप्पय श्रेष्ठी कुमारगिरि रेड्डी के यहाँ सुगन्ध-भाण्डार के अध्यक्ष थे। "हरविलासमु" श्रीनाथकृत एक सर्वथा मौलिक काव्य है और उसमें परमेश्वर की लीलाएँ वर्णित हैं। इस काव्य का प्रणयन ई० सन् १४२५ के लगभग हुआ। यह सात आश्वासों का काव्य है।

भागवत के दशमस्कन्ध में जैसे कृष्ण की लीलाएँ वर्णित हैं, उसी भाँति हरविलासमु में शिवजी की लीलाएँ अत्यन्त मनोहर शैली में वर्णित हुई हैं ।

उन दिनों में विजयनगर साम्राज्य बहुत ही वैभवशाली था । प्रौढ़ देवराय अथवा द्वितीय देवराय नाम से विख्यात राजा ई० सन् १४२१ में विजयनगर की गद्दी पर बैठे और सन् १४४८ तक उन्होंने राज्य किया । वे कला-प्रेमी थे । कोंडवीडु राज्य के पतन के पश्चात् श्रीनाथ आश्रयदाता की खोज में निकले । इस बीच में वे देशाटन करते श्रीशैल में स्थित भगवान् मल्लिकार्जुन के दर्शन करने पहुँचे । वहाँ के मठाधिकारी शान्तय्या से महाकवि का परिचय हुआ । वहीं पर उन्होंने "शिवरात्रि-माहात्म्य" नामक काव्य की रचना करके उन्हें इसका कृतिपति बनाया । काव्य की भूमिका में कृतिपति की प्रशंसा वर्णित है । श्रीशैल की यात्रा समाप्त करके वे कोंडवीडु नहीं लौट सकते थे, क्योंकि राजमहेन्द्रवरम् में जो रेड्डी राजा राज्य करते थे, वे कोंडवीडु के रेड्डी राजाओं के प्रबल शत्रु थे, अतः इस भय से कि सम्भवतः वहाँ आश्रय प्राप्त न होगा, श्रीनाथ सीधे विजयनगर पहुँचे ।

विजयनगर में बहुत समय तक श्रीनाथ को राजा के दर्शन नहीं हुए । इसी बीच में उन्होंने अनेक यातनाएँ भोगीं । बताया जाता है कि अन्त में "क्रीड़ाभिराम" कर्ता विनुकोंड वल्लभराय से श्रीनाथ ने मैत्री की और उन्हें अपना "वल्लभाभ्युदयम्" समर्पित कर उनके द्वारा राजाश्रय प्राप्त किया । विजयनगर के सम्राट् प्रौढ़देव राय के राज्य-वैभव का वर्णन इटली के यात्री कामटी तथा फ़ारस के राजदूत अब्दुल रजाक ने भी किया है । रजाक ने लिखा है—"विजयनगर साम्राज्य दक्षिण में दूर तक फैला हुआ है और समुद्र के तट पर लगभग तीन सौ बन्दरगाह हैं । वहाँ की प्रजा, चक्रवर्ती तथा उत्सवों का उसने भव्य वर्णन किया है । उसने लिखा है कि गरीब लोग भी रत्नाभूषण धारण करते थे । सर्वत्र शान्ति और सम्पदा का साम्राज्य था । सुदूर देशों के साथ व्यापार और वाणिज्य होता था ।

इन्हीं देवराय के दरबार में श्रीनाथ का अपूर्व सम्मान हुआ । देवराय स्वयं कवि थे । वे "महानाटक सुधानिधि" ग्रन्थ के प्रणेता भी थे । कहा जाता है कि कवि श्रीनाथ ने उनके दरबारी कवि गौड़ डिंडिम भट्ट को शास्त्रार्थ में पराजित किया तथा उनके कांसे के ढक्के (ढोल) को फोड़वा दिया । गौड़ डिंडिम भट्ट ने

यह चुनौती दी थी कि कोई भी कवि जब तक उन्हें पराजित नहीं करेगा, तब तक में राजा के सभा-भवन में काँसे के ढोल के वादन के साथ ही प्रवेश करूँगा और पराजित होने पर उस ढोल को फोड़ ही नहीं दूँगा, अपितु उस विजेता कवि का शिष्यत्व ग्रहण करूँगा। श्रीनाथ कवि ने उन्हें पराजित कर "कवि सार्वभौम" की उपाधि पायी, तथा चक्रवर्ती ने अपनी मुत्यालशाला (मोती भवन) में कवि सम्राट् का कनकाभिषेक (स्वर्णाभिषेक) किया।

इसके पश्चात् श्रीनाथ वर्तमान तेलंगाने में स्थित राचकोंडा के राजा सर्वज्ञ-सिंगम के दरबार में गये। वहाँ पर भी महाकवि का अपार स्वागत-सत्कार हुआ। तदनन्तर वे मैलार रेड्डी, दंतलूरि मन्नभूपाल इत्यादि सामन्तों के यहाँ भी सम्मान प्राप्त कर रेड्डी राजाओं के द्वितीय राज्य राजमहेन्द्रवम् पहुँचे। राजमहेन्द्र-वरम् के राजा वीरभद्रा रेड्डी के मन्त्री "अन्नय मंत्री" थे, जो श्रीनाथ के रिश्तेदार भी थे। अन्नय मंत्री के प्रयत्न से श्रीनाथ रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि नियुक्त हुए। यहाँ रहते श्रीनाथ ने 'भीमखण्ड' काव्य की रचना की और अन्नय मंत्री को उसका कृतिपति बनाया। स्कन्ध-पुराण के गोदावरी खण्ड का तेलुगु रूपान्तर ही भीमखण्ड काव्य है और इसकी शैली बड़ी प्रौढ़ और गम्भीर है तथा इसमें सुन्दर लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी समावेश हुआ है।

श्रीनाथ का एक प्रसिद्ध काव्य "काशी खण्ड" है। इसमें काशी का माहात्म्य वर्णित है। यह काव्य श्रीनाथ ने वीरभद्रा रेड्डी को समर्पित किया और वीरभद्रा रेड्डी द्वारा राज-सम्मान पाया। 'पलनाटि वीर चरित्र" श्रीनाथ कृत द्विपद काव्य है। कवि ने इस काव्य में आन्ध्र की कथा को ग्रहण कर आन्ध्र के जातीय जीवन का सजीव चित्र खींचा है।

इसके अतिरिक्त श्रीनाथ ने समय-समय पर जो चाटूक्तियाँ कहीं हैं, उनकी संख्या भी कम नहीं है। उनसे हमें विदित होता है कि श्रीनाथ कवि अत्यन्त विनोदप्रिय तथा रसिक थे। श्रीनाथ ने तेलुगु-वाङ्मय की विविध शाखाओं का सर्जन किया, विविध रीतियों को जन्म दिया, राजा से लेकर प्रजा तक से सम्मान प्राप्त किया। वे भक्त भी थे और भोगी भी। भाषा, भाव, शैली, छन्द, अलंकार इत्यादि सभी दृष्टियों से उन्होंने तेलुगु-वाङ्मय को समृद्ध बनाया। परन्तु ऐसे कवि-सम्राट् को अपने अन्तिम काल में अपार कष्ट भोगना पड़ा था। सन्

१४८० के लगभग कटकपुरी के गजपति राजाओं ने राजमहेन्द्रवरम् पर अधिकार कर लिया, श्रीनाथ फिर से आश्रयहीन हो गये और अन्त में निराश हो, कृष्णा नदी के तट पर बोड्डुपल्ले नामक गाँव में जमीन कौल पर लेकर उन्होंने खेती प्रारम्भ की। श्रीनाथ ने जीवन की सम्पदा देखी, उसे भोगा, कष्ट झेला और जीवन की अनुभूत गहराइयों का स्वत: साक्षात्कार भी किया, क्योंकि उनके जीवन का चढ़ाव-उतार ही कुछ ऐसा था कि जिनका मूर्ध एक समय स्वर्णाभिषेक से सिक्त था, जिनकी कविता राज-दरबारों की शोभा बनी हुई थी, वे महाकवि अपनी अवसान दशा में जीर्ण देह को लिए हल चलाने लगे थे। श्रीनाथ का जीवन हमें हिन्दी के प्रसिद्ध सन्त कवि रहीम के जीवन का स्मरण दिलाता है। श्रीनाथ के साथ बीसों शिष्य रहा करते थे और सभी एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते थे। उन्होंने सैकड़ों शिष्यों का खर्च वहन किया था। रहीम भी तो ऐसे ही दानी थे, किन्तु अन्त में जब वे भी हर तरह विपन्न हो गये, तो उन्हें भी विह्वल होकर कहना पड़ा था—

रहिमन अब दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ दो, अब रहीम वे नाहिं॥

श्रीनाथ के समकालीनों में बम्मेर पोतना का नाम उल्लेखनीय है। वे श्रीनाथ के समधी और बहनोई भी थे। इन्हीं पोतना के सम्बन्ध में श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण ने एक स्थान पर लिखा है कि—"तेलुगु कवियों में तिक्कना सूर्य हैं, तो पोतना चन्द्रमा हैं।" पोतना से श्रीनाथ का जीवन अत्यन्त प्रभावित है और श्रीनाथ पोतना की कविता के बड़े प्रशंसक भी थे।

विनुकोंड वल्लभरायडु

कर्नाटक राजा हरिहर राय के रत्न-भाण्डार के अध्यक्ष त्रिपुरांतक के पुत्र ही वल्लभराय थे। ग्रन्थ की भूमिका में स्वयं कवि ने बताया है कि उनकी माता का नाम चन्द्रमांबा था। ये भी हरिहर राय के रत्न-भाण्डार के अध्यक्ष और विनुकोंडा दुर्ग के अधिपति थे। इन्होंने दशविध रूपकों में से "वीथी" रूपक की रचना "क्रीड़ाभिरामम्" नाम से की। कतिपय आलोचकों का मत है कि सम्भवत: तेलुगु का यही प्रथम दृश्य काव्य है। कवि ने भूमिका में स्वयं बताया है कि उन्होंने राविपाटि

तिप्पना द्वारा संस्कृत में विरचित "प्रेमाभिराममु" के अनुकरण पर उक्त दृश्य-काव्य की रचना की है। क्रीड़ाभिराममु के अधिकांश वर्णन काल्पनिक हैं। इसमें प्रतापरुद्र द्वितीय के राज्य-काल में वरंगल का वैभव और वहाँ के भोग-विलासों का सजीव चित्र अंकित है। इसमें करीब ३०० गद्य और पद्य हैं। यह शृंगार-रस-प्रधान है, हास्य का भी इसमें सुन्दर समावेश हुआ है। इसकी कविता मधुर और प्रौढ़ है, किन्तु कुछ स्थल अश्लील भी हैं, अतः साधारण जनता तथा नारियों के पढ़ने योग्य नहीं है। इसमें वेश्यागमन की भी प्रस्तुति हुई है।

इस वीथी रूपक में—वरंगल के बाह्यांतर प्रदेशों में विचरण करनेवाले वरंगल के निवासी गोविन्द शर्मा नामक ब्राह्मण तथा उनके सखा टिट्टिभसेट्टी नामक वेश्यागामी ने अपने देखे हुए विविध विनोदों का चित्रण वार्तालाप के रूप में किया है।

इस रूपक के कृतित्व के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसे श्रीनाथकृत मानते हैं, किन्तु यह तर्कसंगत नहीं है। यह ग्रन्थ सन् १४२० के आसपास रचा गया और करीब इसी काल में श्रीनाथ ने वल्लभाराय के दर्शन करके "वल्लभाभ्युदय" की रचना की और इसे उन्हें समर्पित किया।

निश्शंक कोम्मना (ई० सन् १४१० से १४७० तक)

ये राजमहेन्द्रवरम् के रेड्डी राजाओं के आश्रय में थे। इन्होंने वीर भद्रा रेड्डी के अनुज दोड्डा रेड्डी को अपने "शिवलीला-विलास" नामक काव्य का कृतिपति बनाया। इस काव्य की रचना सन् १४३५ के करीब हुई। इस काव्य के प्रथम दो आश्वास मात्र उपलब्ध हुए हैं।

इनका दूसरा काव्य "वीरमाहेश्वर" है। यह प्रबन्ध-काव्य की शैली में है। दोनों काव्य शिवजी के माहात्म्य का परिचय देनेवाले हैं।

कोम्मना की कविता अत्यन्त प्रांजल और धारा-प्रवाह-युक्त हुई है। नयी उद्भावनाओं से पूर्ण इनकी कविता पंडित समुदाय द्वारा भी प्रशंसित हुई है।

भैरव कवि (ई० सन् १४१० से ६० तक)

श्री भैरव कवि गौरना कवि के पुत्र थे। इनका रचना-काल ई० सन् १४१०

से ६० माना जाता है। इन्होंने "श्रीरंग-महात्म्यमु", "रत्न-शास्त्रमु" तथा "कविराज-गजांकुशमु" नाम से तीन ग्रन्थों की रचना की है। "श्रीरंग-महात्म्यमु" पाँच आश्वासों का काव्य है, इसमें तीर्थ के माहात्म्य वर्णित हैं। इस काव्य के कृतिभर्ता राघवामात्य हैं। "रत्न शास्त्रमु" में नवरत्नों के लक्षण आदि वर्णित हैं। तीसरी कृति पिंगल-शास्त्र सम्बन्धी है।

अनंतामात्य

ये कृष्णा जिले में स्थित श्रीकाकुलम् नामक छोटे-से गाँव के निवासी थे और तिक्कनामात्य तथा मल्लम्मा के पुत्र थे। ये श्रीनाथ के समकालीन माने जाते हैं। इनका रचना-काल सन् १४३४ के लगभग था। "भोजराजीयमु", "छन्दो-दर्पणमु" और "रसाभरणमु" इनकी कृतियाँ हैं। "भोजराजीयमु" अद्‌भुत कथाओं से पूर्ण सात आश्वासों वाला ग्रन्थ है। इसमें भोजराज के पूर्व जन्म-वृत्तान्त और उनके चमत्कारपूर्ण कार्यों की कहानियाँ हैं। अहोबल में विराजमान नृसिंह इसके कृतिपति हैं। यह ग्रन्थ विक्रमार्क चरित्र के अनुकरण पर रचित है। दूसरा ग्रन्थ "छन्दो-दर्पणमु" है, जो अनन्त छन्द नाम से विख्यात है। इसमें छन्दों के लक्षण बताये गये हैं। तीसरा ग्रन्थ "रसाभरणमु" है, जिसमें शृंगार आदि नवरसों के लक्षण दिये गये हैं और जो एक रीति-ग्रन्थ है।

इनकी कविता रमणीय वर्णनों से पूर्ण तथा रससिक्त है। भावनाओं की सरसता और हृदय-रंजकता के कारण इसे पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई है। ये कवि बय्यना के पोता माने जाते हैं।

ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु (ई० सन् १४२३ से १५०२ तक)

अन्नमाचार्युलु का जन्म कडपा जिला ताल्लपाक नामक गाँव में सन् १४२३ में हुआ था। घर पर ही इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई और ये अपनी १६ वर्ष की अवस्था में ही घर छोड़कर भगवान् बालाजी के चरणों में तिरुपति चले गये और अपने अन्तिम समय तक वहीं रहे। ये संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित थे और संगीत के तो आचार्य ही थे। इन्होंने तेलुगु और संस्कृत में कुल ३२,६०० कीर्तन-पद रचे। भक्त और कवि होने के कारण नित्य-प्रति कीर्तन रचकर अपने आराध्य

की उपासना में उन्हें गाया करते थे, अतः ये संकीर्तनाचार्य नाम से भी विख्यात हुए। इनके कीर्तन, शृंगार-संकीर्तन और आध्यात्म-संकीर्तन नामों से दो भागों में विभाजित किये गये हैं और संस्कृत में इन्होंने एक "संकीर्तन-लक्षण" ग्रन्थ भी लिखा है।

अन्नमाचार्युलु के अन्य ग्रन्थों में "द्विपद-रामायणमु", "वेंकटाचल-महात्म्ययु", "शृंगार-मंजरी" और "सर्वेश्वर-शतक" माने जाते हैं। इनके कीर्तनों में से केवल १३,००० कीर्तन ही उपलब्ध हुए हैं, जो ताम्रपत्रों पर अंकित हैं। इनके पद आज भी तिरुमलै के मन्दिर में भगवान् बालाजी की मूर्ति के सामने एक छोटे-से कक्ष में सुरक्षित हैं, जो संकीर्तन-भण्डार कहलाता है।

बताया जाता है कि विजयनगर के राजा सालुव नरसिंहराय ने उनका बड़ा आदर-सम्मान किया था। ये तेलुगु पद या गीत साहित्य के पितामह माने जाते हैं तथा प्रथम वाग्गेयकार (गीत या पद रचयिता) के नाम से विख्यात हैं। इनकी धर्मपत्नी तिम्मक्का ने भी "सुभद्रा-कल्याण" (सुभद्रा-विवाह) नाम से एक द्विपद काव्य की रचना की है।

इस वंश के अनेक लोगों ने भक्ति-प्रधान-गीत और पदों की रचना की, इनकी परम्परा तेलुगु-साहित्य में ताल्लपाक सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध है।

पिल्ललमर्रि पिनवीरना (ई० सन् १४२५ से ९० तक)

पिन वीरना का दूसरा नाम पिनवीर भद्र था। ये गादयामात्य और नागांबा के पुत्र थे। इनका निवास-स्थान तेलंगाने में स्थित पिल्ललमर्रि गाँव था। ये कुछ समय तक नेल्लूर जिले में बिट्रगुंटा के समीप स्थित सोमराजुपल्ले में तथा तदनन्तर विजयनगर के राजा सालुव नरसिंहराय की सभा में रहे। इनका रचना-काल ई० सन् १४६० से १५०० के बीच का समय माना जाता है। इनकी कृतियों में "अवतार-दर्पणमु", "नारदीयमु", "मानसोल्लासमु", "माघमाहात्म्यमु", "शकुंतला-परिणयमु", तथा "जैमिनी-भारतमु" प्रसिद्ध हैं।

"शकुंतला-परिणयमु" चार आश्वासों का काव्य है। जिसमें शकुंतला और दुष्यन्त के परिणय की कथा मनोहर शैली में वर्णित है और सोमराजु पल्ले के निवासी चिल्लर वेन्नयामात्य इसके कृतिपति हैं। कवि ने कालिदासकृत अभिज्ञान

शाकुंतल और महाभारत की कथा का सुन्दर समन्वय कर नयी उद्भावनाओं के साथ इसे काव्य का रूप दिया है ।

संस्कृत में जैमिनी महर्षि कृत "भारत" का पिनवीरना ने तेलुगु में रूपान्तर किया है । इसमें अश्वमेध पर्व का विशद चित्रण हुआ है । यह काव्य विजयनगर के तत्कालीन राजा सालुव नरसिंहराय को समर्पित है । यह आठ आश्वासों वाला प्रबन्ध काव्य है । इस ग्रन्थ की रचना ई० सन् १४८५ से ९० के बीच हुई है । उन दिनों में पिनवीरना नरसिंहराय के दरबारी कवि थे और उनकी अवस्था करीब ६० वर्ष की थी ।

जैमिनी भारत के कृतित्व के सम्बन्ध में आन्ध्र में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं । एक कथा यों है--एक बार राजा सालुव नरसिंहराय ने अपने दरबारी कवियों को सम्बोधित कर कहा--"मैं संस्कृत के जैमिनी भारत का तेलुगु रूपान्तर पढ़ना चाहता हूँ । आपमें से कौन अधिक सुन्दर शैली में इसका अनुवाद प्रस्तुत कर सकते हैं ?" इस पर सभी कवियों ने एक स्वर में कहा था कि पिनवीरना ही इसके सर्वथा योग्य हैं । पिनवीरना से जब पूछा गया कि इस काव्य का भाषांतरीकरण कितने दिनों में कर सकोगे, तो उन्होंने इसके लिए केवल एक मास की अवधि माँगी । सब कवि चकित रह गये । कहा जाता है कि पिनवीरना २९ दिन तक मौज उड़ाते रहे, तीसवें दिन की रात्रि को अपने कमरे में पहुँचे, दीपक के मंद प्रकाश में पिनवीरना के भाई को लगा कि कई लोग ग्रन्थ की रचना कर रहे हैं और उन्होंने ज्यों ही किवाड़ के दरारों से झांक कर देखा त्यों ही काव्य रचना करनेवाली वह नारी अदृश्य हो गयी । राजदरबार में दूसरे दिन जैमिनीकृत "भारत" के रूपान्तर को समाप्त हुआ देख सभी चकित हुए । इसका मर्म जानने की जब अन्य कवियों ने इच्छा प्रकट की, तब पिनवीरना उत्तर दिया--"वाणी मेरी रानी है । फिर सम्भव क्यों न होगा ?" इस पर सबने जब उनकी इस उक्ति के प्रति आक्षेप प्रकट किया, तो जनश्रुति है कि स्वयं सरस्वती ने नवरत्न-खचित अपने कंकणों की ध्वनि करते हुए हाथ हिलाकर संकेत किया कि कवि का कहना सत्य है ।

उपर्युक्त कथा से हमें यही भाव ग्रहण करना है कि पिनवीरना आशुकवि थे

और धारा-प्रवाह कविता करने में निपुण थे तथा वाणी उनकी वशवर्तिनी थी। सम्भवतः यही बताने के लिए उपर्युक्त कथा कल्पित की गयी होगी।

जैमिनी भारत के प्रारम्भ में कवि ने स्वयं लिखा है कि "भारतीतीर्थ" नामक गुरु की कृपा से उन्हें कविता करने की शक्ति प्राप्त हुई है। महाभारत से भिन्न कतिपय नयी कथाएँ भी इसमें वर्णित हैं। हंस-ध्वज आदि राजाओं को अर्जुन द्वारा पराजित करना, ताम्रध्वज आदि को श्रीकृष्ण की सहायता से वशीभूत करना और श्रीरामचन्द्र के अश्वमेध-यज्ञ की कथा इसके मुख्य भाग है। आन्ध्र-साहित्य-परिषद् के पुस्तकालय में प्राप्त उदाहरण-ग्रन्थ से यह विदित होता है कि पिनवीरना ने "पुरुषार्थ-सुधानिधि" नामक एक और ग्रन्थ की रचना की है, किन्तु आज तो 'शाकुंतल-परिणयमु' और 'जैमिनी-भारत' ये दो ही ग्रन्थ समग्र रूप से उपलब्ध हैं। इनकी शैली परवर्ती प्रबन्ध-शैली के आविर्भाव का कारण बनी।

पिडुपर्ति सोमना

ये तेलंगाने में स्थित पिडुपर्ति के निवासी थे। वीर-शैव-धर्मावलम्बी थे। इन्होंने पालकुरिकि सोमनाथकृत द्विपद बसव-पुराण को चंपू काव्य का रूप दिया। यह काव्य सात आश्वासों में समाप्त हुआ है। इस काव्य को उन्होंने अत्यन्त भक्ति-भाव से पालकुरिकि सोमनाथ को ही समर्पित किया है। इनका दूसरा काव्य "प्रभुलिंग-लीलमु" है। यह द्विपद छन्द में रचा गया है। इसके कृतिपति सिद्ध वीरेश देशिक हैं। इसकी शैली में संस्कृत और तेलुगु शब्दों का गंगा-जमुनी संगम हुआ है। दोनों काव्यों में भक्ति की प्रधानता है।

दूबगुंट नारायण कवि

ये १४वीं शदी के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। नागमांबा और ब्रह्मनामात्य इनके माता-पिता थे। संस्कृत में विष्णुशर्मा-कृत "पंचतंत्र" का रूपान्तर इन्होंने पद्य-काव्य के रूप में किया और उदयगिरि (जिला नेलूर) के अधिपति तम्म-भूपाल के पुत्र बसवराजु को इसका कृतिपति बनाया। उदयगिरि के निकट स्थित दूबगुंट के ये निवासी थे। पंचतन्त्र का सरस काव्यानुवाद करके नारायण कवि ने एक महान् कार्य किया है।

इस काव्य के पाँच तन्त्र या खण्ड हैं, जो क्रमशः (१) मित्र-भेद, (२) मुहुल्लाभमु, (३) सिंधि-विग्रह, (४) लब्धनाश और (५) असंप्रेक्षकारित्व कहे जाते हैं। इनकी शैली तथा कथा को प्रस्तुत करने की रीति अत्यन्त मनमोहक है। सुन्दर लोकोक्तियों का प्रयोग करने में ये सिद्धहस्त हैं। नारायण कवि दूबगुंट के पटवारी भी थे।

दग्गुपल्लि दुग्गय्या (ई० सन् १४१० से ९० तक)

ये तिप्पनार्य तथा एल्लम्मा के पुत्र थे। पोतना और एर्रना इनके बड़े भाई थे। ये कविसार्वभौम श्रीनाथ के साले व शिष्य भी थे। इन्होंने सन् १४५० के करीब "कांचीपुर-माहात्म्य" काव्य लिखकर चेंदुलूरि गंगय मन्त्री के पुत्र देवयामात्य को तथा उसके बाद "नासिकेतोपाख्यान" काव्य लिखकर चेंदुलूरि अनन्तामात्य के पुत्र गंगयामात्य को क्रमशः इनका कृतिपति बनाया। दोनों कृतिपति चचेरे भाई थे।

इनका "कांचीपुर-माहात्म्य" आज उपलब्ध नहीं है। "नासिकेतोपाख्यान" के भी केवल प्रथम तीन आश्वास प्राप्त हुए हैं और समग्र काव्य की प्रति आज तक कहीं भी प्राप्त नहीं हुई है। "नासिकेतोपाख्यान' में उद्दालक और चन्द्रवती का वृत्तांत सरस शैली में वर्णिव है। वेदांत और स्वर्ग संबंधी बातें इसमें अत्यंत मनोहर बन पड़ी हैं।

यों तो "नासिकेतोपाख्यान", कठोपनिषद् और महाभारत के अनुशासनिक पर्व में वर्णित हैं, जिनमें तपस्वी एवं ब्रह्मचारी उद्दालक का विवाह ब्रह्मा के आदेशानुसार सूर्यवंशी नरेश रघु की पुत्री चन्द्रवती के साथ होता है और चन्द्रवती की नासिका से जन्मधारण करने के कारण उस शिशु का नामकरण "नासिकेत" किया जाता है। योग-ध्यान में निमग्न नासिकेत को अपने पिता के आदेश का पालन न कर सकने के कारण यह शाप मिलता है कि वह यमलोक का निवासी बन जाय। यमलोक में वह यमराज से नासिकेत धर्मसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करता है। संक्षेप में यही उक्त कथा का मूल सार है। यह काव्य शान्त-रस प्रधान है।

नंदि मल्लय्या और घंट सिंगय्या

इस कविद्वय ने संस्कृत में श्रीकृष्णमिश्र पण्डित द्वारा विरचित प्रबोध-चन्द्रोदय

नाटक का प्रबन्ध-काव्य में अनुवाद किया। यह काव्य पाँच आश्वासों में समाप्त हुआ है और गंगयामात्य को समर्पित है। यह एक आध्यात्मिक काव्य है। अद्वैत-मत-सम्बन्धी विषय को साधारण जनता की समझ में आने योग्य सरल विधि में इसकी रचना की गयी है। महाभारत की कथा-प्रणाली पर यह काव्य रचा गया है। इसके पात्रों का महाभारत के पात्रों के साथ अन्वय किया गया है, जिसमें चंचल और मोहादि कौरव हैं और विवेक आदि पाण्डव हैं। महामोह (दुर्योधन) के मन्त्री हैं काम, क्रोध आदि और विवेक (युधिष्ठिर) के मन्त्री हैं। यम, नियम इत्यादि आत्मा पर आधिपत्य पाने के लिए इन प्रतीक मनोभावों का पाण्डवों और कौरवों के रूप में संघर्ष होता है और अन्त में विवेकादि के प्रतीक पाण्डवों की विजय होती है और विवेक के संयोग के द्वारा उपनिषद् देवी के गर्भ से प्रबोध चन्द्रोदय होता है। मूल कथा में विशेष परिवर्तन तो इस कविद्वय ने नहीं किया, किन्तु प्रबन्ध काव्य के लिए आवश्यक कतिपय वर्णनों की उन्होंने उद्भावना अवश्य की। उनमें चिदानन्द नगर का वर्णन तथा युद्ध-प्रसंग में सूर्यास्त इत्यादि के वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। यह काव्य शान्त-रस प्रधान है। इसका रचना-काल सन् १४८० के करीब माना जाता है।

संवाद-नाटक को वर्णनात्मक तथा कथनात्मक प्रबन्ध काव्य के रूप में परिणत करना दुर्घट कार्य था। इस कार्य में उपर्युक्त कवियों ने सफलता प्राप्त कर जिस प्रतिभा का परिचय दिया, वह निश्चित रूप से सराहनीय है। उन दिनों संस्कृत के नाटकों को नाटक के रूप में अनूदित न करके, उन्हें प्रबन्ध काव्यों का रूप देने का एक कारण यह भी हो सकता है कि नाटक के प्रदर्शन के लिए शास्त्रीय पद्धतियों पर रंगमंच का उस समय अभाव था, यों देशी रूपकों के अभिनय के लिए साधारण मंच पर्याप्त समझा जाता था। तेलुगु के प्रबन्ध काव्य साधारणतः चंपू काव्य तथा गद्य-पद्यात्मक कथा-संवाद होने के कारण नाटकों के अभाव की पूर्ति करने में समर्थ थे।

नंदि मल्लय्या और घंट सिंगय्या का दूसरा काव्य "वराह-पुराण" था। यह बारह आश्वासों का काव्य है। मूल ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में स्थल-माहात्म्य वर्णित है, किन्तु इस कविद्वय ने उस अंश का रूपान्तर नहीं किया। यह काव्य विजयनगर के विख्यात सम्राट् श्रीकृष्णदेवराय के पिता तुलुव नरसिंह राय को समर्पित है।

इसका रचना-काल ई० सन् १४८५ से ९० के लगभग है। नंदि मल्लय्या की अपेक्षा घंट सिंगय्या अधिक समर्थ थे और ये "मलय-मारुत-कवि" नाम से भी विख्यात थे।

वेमना (ई० सन् १४१२ से १४८० तक)

वेमना का जन्म रेड्डी वंश में हुआ था। इनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, किन्तु वेमना की रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि ये मूग चितलपल्ले के निवासी थे और इनका देहान्त कटारुपल्ले में हुआ था। इनकी समाधि वहीं पर है। ये १५वीं शती में वर्तमान थे।

आन्ध्र प्रदेश के सन्तों में वेमना विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। आन्ध्र-भर में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले, जिसे वेमना के कुछ छन्द न याद हों। सरल व मधुर लोक-भाषा में वेमना ने जो उद्गार व्यक्त किये हैं, वे ज्ञान, भक्ति, सदाचार और नीति से ओत-प्रोत हैं।

वेमना के पद्यों से हमें भली-भाँति विदित होता है कि इनका जन्म एक संपन्न परिवार में हुआ था। यौवनावस्था में ये भोग-विलासों में फँसे रहे, तदुपरान्त ज्ञानोदय होने पर घर-बार छोड़कर वैरागी बने और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के हेतु लम्बिका शिवयोगी से इन्होंने दीक्षा ली। प्रारम्भ में इन्होंने हठयोग की साधना की, पर क्रमशः इनके विचार परिष्कृत होते गये और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् इन्होंने आन्ध्रभर में भ्रमण किया और अपने सिद्धान्तों का प्रचार भी किया।

वेमना ने अपने अनुभवजन्य ज्ञान को तेलुगु के सरल छन्द "कन्द", "आट-वेलदी" और "तेट-गीता" में अभिव्यक्त किया है। वे आशुकवि थे। आत्म-सम्बोधन इनकी कविता की विशेषता है। इन्होंने अपने विचारों को निर्भीकता के साथ व्यक्त किया है। इन्होंने सामाजिक अंध-रूढ़ियों का खण्डन किया और जाति-पाँति के भेदभाव के ये कट्टर विरोधी थे। मूर्तिपूजा, जप, तप, उपवास आदि वाह्याडंबरों की भी वेमना ने कटु आलोचना की है।

वेमना अपनी स्पष्टवादिता के लिए विशेष विख्यात हैं। इनकी सूक्तियाँ, लोकोक्तियों की भाँति ऐसी मनोहर होती हैं कि सर्वसाधारण में विशेष लोक-प्रिय बन चुकी हैं। ये निर्गुणोपासक थे और इनकी सामाजिक भावना विद्रोहात्मक

थी। वेमना की शिक्षा का सार है—सदाचरण, आत्मतृप्ति और अहिंसा का पालन।

वेमना पूरे शिक्षित तो नहीं थे, किन्तु अर्द्धशिक्षित अवश्य थे। इन्होंने कबीर-दास की भाँति कभी हाथ में कलम ग्रहण नहीं की थी और मसि नहीं छूई थी। समय-समय पर वेमना जो कुछ कहते गये, उसका संग्रह उनके शिष्यों ने किया। इनके पद्यों की संख्या पाँच हजार बतायी जाती है, किन्तु चार हज़ार से अधिक पद्य उपलब्ध नहीं हुए हैं, उनमें भी कुछ प्रक्षिप्त हैं। कुछ पद्यों में पुनरुक्ति भी दिखाई देती है। इनमें सामाजिक अंध-रूढ़ियों की कटु आलोचना, धार्मिक अंध-विश्वासों का खण्डन और नीति-उपदेश का दर्शन होता है। अपनी उक्तियों को वेमना ने लोगों के हृदयों में पैठाने के विचार से विनोद और चमत्कार की शैली में इन्हें अभिव्यक्त किया है। उनकी ये सूक्तियाँ पण्डित और पामर—सब प्रकार के लोगों में समादर प्राप्त कर चुकी हैं।

वेमना और हिन्दी कवि कबीर में अनेक बातों में समानता है। उसका विस्तृत परिचय देना यहाँ सम्भव नहीं है, अतः केवल वेमना की कविता का एक ही उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें वेमना चरित्र की पवित्रता पर जोर देते हुए कहते हैं—

"आत्मशुद्धि लेनि याचारमदियेल ?
भांड शुद्धि लेनि पाकमेल ?
चित्त शुद्धि लेनि शिवपूज लेलरा ?
विश्वदाभिराम विनुरवेमा।"

—आत्मशुद्धि के विना आचारों का महत्त्व ही क्या है ? अशुद्ध पात्र में भोजन रुचिकर नहीं लगता, बनाना ही व्यर्थ है। उसी प्रकार चित्त की पवित्रता के बिना शिवजी की पूजा करना व्यर्थ है। अतः अभिराम कहते हैं कि वेमना सुनो।

इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं, जो कबीर की उक्तियों का बरबस स्मरण दिलाते हैं, यथा—

—"दुर्जन व्यक्ति सदा गप्पें हाँका करता है, सज्जन तो हमेशा मीठी बातें करते हैं। सच ही तो है—काँसे की तरह कनक नहीं बज सकता।"

—"तेल से भरा हुआ दीपक शान्त रहता है। जब तेल समाप्त हो जाता है, तो दीपक बुझ जाता है। वैसे ही शरीर से आत्मा के छूटते ही हमारी कामनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं।"

—"शूकरी एक साथ दस-पन्द्रह बच्चे-बच्चियों को जन्म देती है, परन्तु हथिनी एक ही सन्तान उत्पन्न करती है। एक ही उत्तम पुरुष पर्याप्त है।"

—"जो व्यक्ति मुक्ति को अपने हृदय में न देख अन्यत्र ढूँढ़ता है, वह पागल और ऐसा है, जैसे भेड़ को बगल में दबाये ग्वाला उसे अन्यत्र ढूँढ़ता है।"

वेमना समन्वयवादी थे और एक पहुँचे हुए सन्त भी। अपने अन्तिम समय में उन्होंने वस्त्र-धारण करना भी त्याग दिया था। दिगम्बर हो, निरन्तर तपस्या में मग्न रहा करते थे। उनका विचार है कि मनुष्य जन्म-धारण के समय न वस्त्र पहन कर उत्पन्न होता और न मृत्यु के समय वस्त्र पहन कर जाता है, ऐसी स्थिति में इस मध्य-काल में वस्त्र-धारण की क्या आवश्यकता है ? इनका प्रभाव आन्ध्र प्रदेश में इतना अधिक है कि लोग उनके पद्यों को नीति के उपदेशों, सूक्तियों, लोकोक्तियों या कहावतों की भाँति अपने दैनिक जीवन में वार्तालाप के समय प्रयोग करते रहते हैं। एक प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् सी० पी० ब्राउन ने प्रथम इन्हीं वेमना के पद्यों का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। इससे हम भलीभाँति अनुमान कर सकते हैं कि उनकी कविता में कैसी अनूठी शक्ति थी।

कोरवि गोपराजु

ये वेमगल्लु के निवासी तथा बसवराजु और कामांबिका के पुत्र थे। इनका जीवन-काल सन् १४३० से ६० तक माना जाता है। इन्होंने "सिंहासन-द्वात्रिंशक" नाम से एक काव्य लिखा, जो बारह आश्वासों में समाप्त हुआ है। यह काव्य हरिहर को समर्पित हुआ है। इसमें एक साथ नीति, सामुद्रिक, ज्योतिष, छन्द, अलंकार आदि विभिन्न शास्त्रों की बातें वर्णित हैं, जिनमें नीति-सम्बन्धी कविताओं की संख्या सर्वाधिक है। उन्हें छाँट लें तो वह एक अलग काव्य-ग्रन्थ बन सकता है।

गोपराजु की कविता सरस और कोमलकांत पदावली से पूर्ण है। भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

बम्मेर पोतना

महाकवि के समय और निवास-स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका जन्म-स्थान कड़पा जिले का ओंटिमिट्टा मानते हैं, तो कतिपय विद्वान् तेलंगाने में ओरुगल्लु (वरंगल) के समीप स्थित बम्मेर मानते हैं। मतभेद का कारण यह भी हो सकता है कि पोतना ने एकशिला नगर का उल्लेख किया है। ओरुगल्लु और ओंटिमिट्टा दोनों का संस्कृतीकरण रूप एकशिला नगर होता है। इनके माता-पिता के विषय में कोई मत-भेद नहीं है। ये केसना और लक्कमांबा के पुत्र थे तथा ई० सन् १४२० से १५१० के बीच वर्तमान थे।

पोतना की कृतियों में "आन्ध्र महाभागवत" विशेष विख्यात है। इसके अतिरिक्त "वीरभद्र-विजयमु", "भोगिनी-दण्डकमु" और "नारायण शतकमु" इनकी अन्य कृतियाँ मानी जाती हैं। इनकी अन्तिम तीनों कृतियों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। पोतना की कीर्ति का केतु भागवत काव्य है। भागवत पुराण को काव्य का रूप देने में पोतना ने जिस प्रतिभा और चमत्कार का परिचय दिया है, वह अत्यन्त अद्‌भुत एवं अपूर्व है। काव्य में यत्र-तत्र सन्दर्भ के अनुसार महाकवि ने नई उद्‌भावनाएँ की हैं तथा औचित्य की रक्षा के लिए कहीं-कहीं काव्य को संक्षिप्त भी किया है और कहीं-कहीं एकाध प्रसंगों का व्यापक वर्णन भी किया है। अतः यह काव्य अनुवाद न होकर एक मौलिक काव्य का रूप धारण कर सका है।

तेलुगु-भागवत, भक्ति-प्रधान काव्य है, इसमें भक्ति और वेदान्त-सम्बन्धी अनेक आख्यान वर्णित हैं, जिनमें प्रह्लाद-चरित्र, वामन-चरित्र, गजेन्द्र-मोक्ष, नरकासुर-वध, कुचेलोपाख्यान, ध्रुवोपाख्यान, अंबरीषोपाख्यान और रुक्मिणी-परिणय प्रमुख हैं। ये आख्यान महाकाव्य की शृंखला की कड़ियाँ होते हुए भिन्न खण्ड काव्यों के रूप में भी बन पड़े हैं। पोतना की कविता प्रांजल, ललित एवं मधुर हैं। उनकी अभिव्यक्ति में नवीनता और भावों में मनोहरता है।

पोतना ने भागवत की रचना का उद्देश्य पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्ति पाना बताया है। रचना की प्रेरणा उन्हें स्वयं श्रीरामचन्द्रजी से प्राप्त हुई है, जिसे उन्होंने इस रूप में प्रस्तुत किया है—

पलिकेडिदि भागवतमट
पलिकिंचेडिवाडु रामभद्रुंडट
ने पलिकिन भवहरमनुनट
पलिकेद वेरोंडु गाथ पलुकगनेल ।।

अर्थात्—मैं भागवत कहता जाता हूँ और मुझसे रामचन्द्रजी इसे कहलाते जाते हैं। मुझे ज्ञात हुआ है कि यदि मैं भागवत की रचना करूँ, तो इस संसार-सागर को मैं तैर जाऊँगा, अर्थात् मुझे मुक्ति प्राप्त होगी। भला, ऐसी स्थिति में मैं दूसरी गाथा की रचना क्यों करूँ?

मूल भागवत में केवल २० हजार श्लोक हैं, किन्तु पोतना के काव्य में ३० हजार पद्य-गद्य हैं। कतिपय मार्मिक स्थलों का विशद चित्रण किया है पोतना ने। इस काव्य के कृतित्व एवं महत्त्व से सम्बन्धित अनेक ऐसी कथाएँ भी प्रचलित हैं, जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि या तो वे अतिरंजित हैं या अतिश्योक्तिपूर्ण हैं। ये प्राचीन हिन्दी-कवियों सूर, कबीर और तुलसी आदि के जीवन-चरित्रों में भी पायी जाती हैं। यहाँ ऐसी कथाओं में से केवल एक का परिचय देकर कवि के काव्य-सौन्दर्य का परिचय दिया जायगा।

कहा जाता है कि पूर्णिमा की एक शुभ्र ज्योत्स्नामयी सुहावनी रात्रि में निकट की सरिता में स्नान करके महाकवि पोतना भगवान् के ध्यान में निमग्न हुए। उस समय भगवान् रामचन्द्रजी ने दर्शन देकर उन्हें आदेश दिया कि भागवत की रचना करके मुझे समर्पित करो। अपने आराध्य के दर्शन कर पोतना पुलकित हो उठे और उसी समय उनके मधुर हृदय से सुधा-रस की भाँति कविता-स्रवंती बह चली। यही कारण है कि पोतना की कविता सहज होने के साथ इतनी लोक-प्रिय हुई कि इसकी समता करनेवाली कविताएँ तेलुगु में दुर्लभ और बहुत कम ही होंगी।

पोतना के काव्य में द्वादश स्कन्ध हैं। महाकाव्य के लक्षणों का निर्वाह करते हुए इन्होंने वस्तु के प्रतिपादन तथा मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में कवि-कर्म को भुला नहीं दिया है, जैसा हिन्दी के महाकवि महात्मा सूरदास ने प्रारम्भिक स्कन्धों का अति संक्षेप में वर्णन किया, किन्तु केवल दशम स्कन्ध का ही विस्तार-पूर्वक चित्रण किया, क्योंकि उनके समक्ष महाकाव्य के लक्षण बन्धन बन कर

उपस्थित नहीं हुए थे और मनोरम स्फुट पदों की रचना करना ही उनका प्रधान उद्देश्य था। फिर भी, पोतना और सूरदास की कविता में पर्याप्त समता पायी जाती है। भक्ति-भाव की दृष्टि से पोतना तुलसी की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि इन दोनों की भक्ति दास्य-भाव की है, किन्तु वस्तु-साम्यता की दृष्टि से विचार किया जाय तो ये सूर के समानधर्मी लगते हैं। यह अवश्य है कि 'सूर' और पोतना की काव्य-सामग्रियों, उनकी शैलियों और मान्यताओं में कुछ अन्तर भी दृष्टिगत होता है, जैसे पोतना के काव्य में समग्रता और सर्वांगीणता है, तो सूर की रचना एकांगी है; सूरदास बालकृष्ण के उपासक हैं, तो पोतना ईश्वर के दशों अवतारों के उपासक। साथ ही, पोतना राम-कृष्ण, शिव-केशव तथा अन्य देवताओं में कोई भिन्नता नहीं देखते, समस्त देवताओं में उन्होंने एक ही व्यापक सत्ता के दर्शन किये और अद्वैतवाद के पोषक थे। सूरदास कृष्ण के परम सौन्दर्य के आराधक थे, जब कि पोतना परम सत्ता के शील और शक्ति के।

चमत्कार-वैशिष्ट्य और उक्ति-वैचित्र्य पोतना के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। गोकुलवासियों को जब पता लगता है कि यशोदा के यहाँ एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ है तो सारा गोकुल प्रसन्न हो उठता है, नाचने-गाने लगता है और उत्सव मनाता है। उस समय सौभाग्यवती नारियाँ आपस में बातें कर रही हैं—

> **"एमि नोमु फलमो ? यिंत प्रोद्दोकवार्त**
> **विंटि बलललार ! बीनु ललर !**
> **मन यशोद, चिन्न मगवानि गनेन्ट—**
> **चूचिवत्तमम्म ! सुदतुलार !"**

अर्थात्—यह तो किसी जप, तप और व्रत का फल ही है। इतने वर्षों के पश्चात् आज हम कर्ण-मधुर वार्ता का प्रसन्नतापूर्वक मनोयोग से श्रवण कर रही हैं। ऐ सखियो ! सुनती हैं, हमारी यशोदा ने एक छोटे-से मर्द को जन्म दिया है, चलो, देखने चलो तो जल्दी !

इस कथन में पोतना ने यह नहीं कहा कि यशोदा ने एक शिशु को या पुत्र-रत्न को जन्म दिया है, किन्तु एक छोटे-से मर्द को जन्म दिया है। कहने में उक्ति-वैचित्र्य है, क्योंकि उस मर्द के साथ गोपिकाओं का सम्बन्ध भी है। वह गोपि-

काओं के लिए केवल बालक नहीं, उनका सखा, प्रियतम और उनका सर्वस्व है। इसी बात को सूरदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

> **है इक नई बात सुनि आई ।**
> **महरि जसौदा ढोटा जायो, घर घर होति बधाई ।।**
> **द्वारैं भरि गोप-गोपिन की, महिमा वरनि न जाई ।**
> **अति आनन्द होत गोकुल में, रतन भूमि सब छाई ।।**
> **नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-बीच मचाई ।**
> **सूरदास स्वामी सुख-सागर सुन्दर स्याम कन्हाई ।।**

पोतना की भक्ति का उत्तम उदाहरण, उनकी यह कविता है, वे सुदामा से कहलाते हैं—

> **"नीपाद कमल सेवयु,**
> **नीपादार्चकुलतोडि नेय्यमुनु**
> **नितांतापार भूतदययुनु**
> **दापसमंदार नाकु दयसेयगदे ।"**

अर्थात्—हे प्रभु ! हे तपस्वियों के मंदार ! अपने चरण-कमलों की सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्रदान कीजिए और अपने चरण-सेवियों से मैत्री तथा प्राणि-मात्र पर अपार दया का भाव मुझे प्रदान कीजिए ।

गोपिकाओं के चीर हरण के प्रसंग में पोतना ने अद्वैत का सुन्दर परिचय कराया है । गोपिकाएँ जब सरोवर से बाहर आने में लज्जा का अनुभव करती हैं, तब कृष्ण कहते हैं—"हे कमिनियों ! निर्वस्त्र होने पर लज्जा का अनुभव क्यों करती हो ? मैं तुम लोगों को बचपन से ही जानता हूँ । इतना ही नहीं, बल्कि मैं तुम्हीं लोगों में निवास करता हूँ । ऐसा मर्म या ऐसी गुप्त वस्तु कौन है, जो मुझ से छिपी हो । तुम लोग अभी कात्यायनी देवी के व्रत का आचरण कर रही हो, ऐसी स्थिति में बिना वस्त्र-धारण के कहीं जल में प्रवेश किया जा सकता है ? यदि तुम लोग व्रत का फल चाहती हो, तो ठीक से हाथ जोड़ कर मुझे प्रणाम करो और मेरे निकट पहुँच कर अपने-अपने वस्त्र लेती जाओ ।

सूर और पोतना की अपने आराध्य के प्रति अटल भक्ति थी । सूरदास

ने "मेरी तौ गतिपति तुम, अंतहि दुख पाऊँ"—पद में स्पष्ट रूप में अपने विश्वास का परिचय दिया है और लिखा है—

"मेरे मन अनत कहाँ सचु पावे।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पर आवै।।
कमल नैन कौ छाँडि महातम, और देव को धावै ?
परम-गंग को छोड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावे।।
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै ?
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावे।।

इसी भाव को पोतना ने अपने "मंदर मकरंद ..." नामक छन्द में बड़ी खूबी के साथ ध्वनित किया है, जिसका सारांश यों है—

मंदार पुष्पों के मकरंद के माधुर्य का सेवन करनेवाला भ्रमर क्या कभी नीम के वृक्षों की तरफ जायेगा, अर्थात् कदापि नहीं। निर्मल मंदाकिनी की तरंगों पर झूमनेवाला राजहंस कभी छोटी नदी में तैरने जायेगा ? ललित आम्र-पल्लव का सेवन कर मदमस्त रहनेवाली कोयल क्या कभी साधारण वृक्षों पर जा बैठेगी ? पूर्णिमा के समुज्ज्वल सुधाकर की शुभ्र एवं शीतल ज्योत्स्ना की किरणों का सेवन करनेवाला चकोर क्या कभी ओस की बूँदों पर आसक्त होगा ? कमलनाभ के दिव्य चरणारविन्दों के स्मरण एवं चिन्तनरूपी अमृत का आस्वादन कर अत्यन्त मस्त रहनेवाला हृदय अन्य विषयों पर क्या कभी आसक्त होगा ? अर्थात् कभी नहीं।

पोतनाकृत "वीरभद्र-विजयमु" चार आश्वासों का ग्रन्थ है। इस समय यह अनुपलब्ध है। इनका "भोगिनी-दण्डकमु" शृंगार-रस प्रधान है। यह राच-कोंडा के राजा सर्वज्ञ द्वितीय के आदेश से लिखा गया था। इसमें वेश्याओं का चित्रण हुआ है। तेलुगु के अधिकारी विद्वानों का विचार है कि पोतना जैसे भक्त कवि ने कभी ऐसी रचना न की होगी। दूसरा वर्ग यह मानता है कि यह पोतना की प्रथम कृति थी और यौवन-काल में रची गयी थी, जब जवानी में पोतना के विचार परिपक्व नहीं हुए थे। "नारायण शतक" सौ छन्दों की रचना है। यह संस्कृत का रूपांतर है, किन्तु इसमें भी पर्याप्त मौलिकता है।

पोतना की "भागवत" के कतिपय वर्णनों से यह विदित होता है कि इस काव्य का कुछ अंश अन्य कवियों द्वारा विरचित है। यह भी कहा जाता है कि पोतना ने सम्पूर्ण भागवत की रचना की थी, किन्तु उसका कुछ अंश जीर्ण हो गया था, जिसका अन्य कवियों ने जीर्णोद्धार किया होगा। कूचिमंचि तिम्म कवि ने लिखा है कि राजा सर्वज्ञ द्वितीय ने भागवत के कृतिपति होने की इच्छा प्रकट की थी, जिसे पोतना ने अस्वीकार कर दिया था। इस पर क्रुद्ध हो राजा ने पोतना के काव्य को पृथ्वी में गड़वा दिया। श्रीराम का स्वप्नादेश पाकर रानी ने जब राजा से इस ग्रन्थ को बाहर निकलवाने का अनुरोध किया तब ग्रन्थ निकाला गया, किन्तु उसका कुछ भाग जर्जर हो चुका था, जिसे दूसरों से पूरा कराया गया। इस कथन के समर्थन में एक और तर्क दिया जाता है। महाकवि पोतना काव्य-समाप्ति के पश्चात् एक पेटिका में उसे सुरक्षित रख कर प्रतिनित्य उसकी पूजा किया करते थे। इसे अपने अन्तिम समय में अपने पुत्र को सौंपते हुए उन्होंने इसे सुरक्षित रखने की आज्ञा दी, लेकिन कुछ समय बाद देखा गया कि वह ग्रन्थ जीर्ण हो चुका है। पोतना के शिष्यों ने उस जर्जर अंश की पूर्ति की। उनमें वेलिगंदल नारया मुख्य हैं। पोतना वंश से ब्राह्मण थे, किन्तु कर्म से कृषक थे। यदि वे चाहते तो अपने महाभागवत को किसी राजा को समर्पित कर वैभव और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते थे, लेकिन उन्होंने इसे ईश्वर के सिवाय अन्यों को समर्पित करने से इनकार कर दिया। परिणामस्वरूप जीवन-पर्यन्त कठिनाइयाँ झेलते रहे। उनकी कविता आन्ध्र प्रजा की कंठहार बनी हुई है। आन्ध्र के सामाजिक जीवन का चित्र पोतना ने अपने काव्य में ऐसा उतारा है, जो युग-युगों तक उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचय देते हुए स्मरण किया जायगा।

वेलिंगंदल नारया

ये पोतना के शिष्य थे। भागवत के जीर्ण अंश की इन्होंने रचना की। ये वेलिगंदल नामक गाँव के निवासी थे। इनकी कविता अति सरस हुई है और इनका रचना-काल ई० सन् १४९० से १५०० रहा है।

माडया

इनका रचना-काल ई० सन् १४८५ से १५०८ माना जाता है। इन्होंने

"मैरावण-चरित्र" नाम से तीन आश्वासों का एक काव्य लिखा है । यह अत्यन्त सरस काव्य है । इसकी संक्षिप्त कथा यों है—लंका का अधिपति रावण पाताल में स्थित मैरावण को बुलाकर यह आदेश देता है कि वह राम और लक्ष्मण को पाताल में ले जाकर उन्हें मार डाले । विभीषण उक्त समाचार हनुमान् को सुनाकर राम-लक्ष्मण की रक्षा का प्रबन्ध करने का निवेदन करता है । हनुमान् समुचित प्रबन्ध तो करते हैं, किन्तु मैरावण विभीषण के वेश में प्रवेश करके धोखा देकर राम-लक्ष्मण को पाताल ले जाता है । पुनः यह समाचार विभीषण द्वारा पाकर हनुमान् पाताल लोक में जाते हैं और मैरावण का वध करके राम-लक्ष्मण की रक्षा करते हैं ।

वेन्नेलकंटि सूरना

इनका रचना काल ई० सन् १४८० से ९० तक माना जाता है । ये रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि थे । इन्होंने "विष्णु-पुराण" का तेलुगु में काव्यानुवाद किया था । संस्कृत में विष्णु-पुराण दो भागों में उपलब्ध है । सूरना ने प्रथम भाग का ही रूपांतर किया है । इसमें भगवान् विष्णु की महिमा तथा श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है । यह काव्य श्री राघव रेड्डी को समर्पित है । श्री राघव रेड्डी अनवेमा रेड्डी के वंशज थे । विष्णु-पुराण के षष्ठम् आश्वास में कृतिपति राघव रेड्डी को निम्न प्रकार से सम्बोधित किया गया है—

चाटुतर प्रबन्ध कवि ! सन्नुत ! संगरपार्थ !
धीरता हाटक शैल ! नित्य विनय प्रतिभा विभवाढ्य ।
भूमिभृत्कूटगुहावहित्य नृपकुन्जर ! संगडि रक्षकर्णाट
नरेन्द्रदत्त समुदंचित शाश्वत राज्यवैभवा ।

सूरना अमर मंत्री के आत्मज थे । इनकी कविता मृदु और मधुर है । द्राक्षापाक शैली में लिखी गयी है ।

ईश्वर फणिभट्ट (ई० १४०० से सन् १५०० तक)

ये ईश्वर भट्ट तथा रामांबा के पुत्र थे । इन्होंने "परतत्त्व-रसायनमु" नाम से एक दार्शनिक काव्य की रचना की । इनके गुरु सदानंद यति थे । कवि ने

गुरु और गोविन्द में अभेद माना है। वेदान्त-जैसे नीरस विषय को भी इन्होंने सरस कविता शैली में प्रतिपादित किया है।

इस युग के अन्य कवियों में सर्वश्री पेदपाटि सोमया का नाम उल्लेखनीय है। ये सन् १५०० के करीब विद्यमान थे। इन्होंने "अरुणाचल-पुराण", "त्रिपुट-विजय", "केदार-खण्ड", "शिवज्ञान-दीपिका" इत्यादि ग्रन्थ रचे, किन्तु ये सब आज उपलब्ध नहीं हैं। "प्रबन्ध रत्नावली" में इनकी कविताएं उद्धृत हैं, जिनसे हमें कवि की शैली का पता चलता है। सोमया की कविता कुल मिलाकर सरस एवं मनोहर है।

अन्य कवियों में एरचूरि सिंगना, गंगनार्य, आडिदमु नीलाद्रि कवि, पिडुर्पति बसव कवि इत्यादि उल्लेखनीय है।

इस युग की विशेषताएँ

इस युग की विशेषताओं का संक्षेप में, निम्नलिखित रूप में विवेचन किया जा सकता है—

१. तेलुगु-ग्रन्थों के साथ इस युग में संस्कृत में भी उत्तम ग्रन्थों की रचना हुई। इस युग के राजा केवल उत्तम शासक ही नहीं थे, अपितु उच्च कोटि के विद्वान्, आश्रयदाता और कवि भी थे। काटय वेमा रेड्डी ने कालिदास के नाटकत्रय की व्याख्या लिखी। सर्वज्ञ सिंगम भूपति ने रसार्णव सुधाकर और माधव राय ने "राववीय" की व्याख्या लिखी तथा पेद्द कोमटि वेमा रेड्डी ने "साहित्य-चिंता-मणि" की रचना की।

२. इस युग की कविता मिश्र काव्य, विपुल काव्य और काव्य-प्रबन्ध नाम से तीन धाराओं में विभक्त है।

३. प्रबन्ध काव्य की समस्त रीतियाँ इस युग में प्रचार में आयीं।

४. नाटकों का तेलुगु अनुवाद इसी युग में प्रारम्भ हुआ।

५. वीर-काव्यों (वीर-गीत) की रचना हुई और साहित्य में पलनाटि-चरित्र-जैसे काव्यों को अत्युत्तम स्थान प्राप्त हुआ।

६. काव्य में लौकिक पक्ष के साथ आध्यात्मिक पक्ष भी कविता-वैभव के

साथ प्रस्फुटित हुआ। परिणामस्वरूप वेमना-जैसे सन्त और वेदांतियों का इस युग में आविर्भाव हुआ।

७. शतक कविता का विकास इसी युग में हुआ।

८. तीर्थों का माहात्म्य बताते हुए छोटे-छोटे काव्य रचे गये।

९. लक्षण (रीति) ग्रन्थों की विपुल मात्रा में सृष्टि हुई।

१०. अद्दंकि, कोंडवीडु, राजमहेन्द्रवरम्, विजयनगर और ओरुगल्लु कविता के केन्द्र रहे।

११. इस युग में विशुद्ध मौलिक काव्यों की भी रचना हुई, अनंतामात्यकृत "भोजराजीयमु" जिसका उत्तम उदाहरण है।

१२. अन्नमाचार्य ने पद-साहित्य को जन्म दिया। इस प्रकार वे पद-साहित्य के प्रवर्तक सिद्ध हुए। परवर्ती युगों पर अन्नमाचार्य का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा।

१३. श्रीनाथ-जैसे राजसी कवि तथा पोतना-जैसे भक्त कवि का प्रादुर्भाव इसी युग में हुआ और ये दोनों युग-प्रवर्तक कवियों के रूप में विख्यात हुए।

१४. सर्वसाधारण जनता पर वेमना का जो व्यापक प्रभाव पड़ा, वह हमें हिन्दी-कवि कबीर का स्मरण दिलाता है। जनता की भाषा में जनता के उपयोगार्थ वेमना ने कविता की। सामाजिक कुरीतियों की आपने कटु आलोचना की।

१५. संस्कृत के उत्तम नाटकों का काव्यानुवाद हुआ, जिनमें "शृंगार शाकुंतलम्" और "प्रबोध चन्द्रोदयम्" मुख्य हैं। एक शृंगार-रस प्रधान है और दूसरा शांत-रस प्रधान।

७

प्रबन्ध युग या रायल युग

(ई० सन् १५०१ से १७०० तक)

राजनीतिक दशा

सालुव वंश के विनाश के पश्चात् तुलुव वंश ने विजयनगर साम्राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया। तुलुव वंश के मूल पुरुष नरस राजु थे। इनकी तीन रानियाँ थीं—तिप्पांबा, नागलांबा और ओबांबा। तिप्पांबा के पुत्र वीर नरसिंह राय थे, नागलांबा के कृष्णदेव राय तथा ओबांबा के अच्युतदेव और सदाशिव राय। वीर नरसिंह राय ने सन् १५०९ तक शासन किया। सन् १५०९ में विजयनगर साम्राज्य के महामन्त्री सालुव तिम्मरुसु की मदद से कृष्णदेव राय गद्दी पर बैठे। इन्होंने सन् १५०९ से १५३० तक अविच्छिन्न रूप से राज्य किया। दक्षिण में दिग्विजय-यात्रा समाप्त कर वे पूर्व दिग्विजय यात्रा के लिए भी गये। समस्त दक्षिणापथ पर विजय प्राप्त करके राजनीतिक दृष्टि से उसे सुदृढ़ बनाया। सन् १५१५ से १५२० के बीच उन्होंने साहित्य और अन्य कलाओं के विकास में पूर्ण योगदान दिया। उनके समय में राज्य में पूर्ण शान्ति विराजमान थी। प्रजा सुखी और कला-प्रेमी थी।

साहित्यिक दशा

देश जब समृद्ध होता है और उसमें राजनीतिक स्थिरता रहती है, तो कलाओं का विकास होता है। कृष्णदेव राय स्वयं कवि थे ही, साथ ही उन्होंने अपने दरबार में तेलुगु, संस्कृत, तमिल और कन्नड़ भाषाओं के कवियों को ही आश्रय नहीं दिया था, अपितु संगीत, नृत्य तथा अन्यान्य ललित कलाओं में पारंगत विद्वानों को भी

आश्रय दिया था। उनके समय में साहित्य एवं अन्य कलाओं की गोष्ठियों का आयोजन "भुवन-विजय" नामक सभा-भवन में हुआ करता था। दिग्गज नाम से विख्यात आठ महाकवि उनके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। स्वयं कृष्णदेव राय "आन्ध्र-भोज" नाम से प्रसिद्ध थे। "भुवन-विजय" सभा-भवन में कलाकारों का आदर-सत्कार होता था, उन्हें पुरस्कार प्रदान किये जाते थे, अग्रहार आदि दान में दिये जाते थे और उपाधियाँ वितरित की जाती थीं। सुन्दर मंदिरों तथा भवनों का निर्माण कराया जाता था, जिनमें शिल्प और चित्र अंकित किये जाते थे, जो कला के उत्तम नमूने थे। "भुवन-विजय" सभा-भवन में सुन्दर शिल्प और चित्र अंकित थे। दरबारों में कवियों का सम्माननीय स्थान था। इस प्रकार इस युग में समस्त कलाओं की आशातीत उन्नति हुई। यही कारण है कि इस युग को तेलुगु-साहित्य का स्वर्ण-युग भी कहते हैं।

धार्मिक दशा

इस युग के पूर्व मुसलमानों का आक्रमण होता रहता था, जिसका मूल कारण हिन्दुओं का पारस्परिक धार्मिक वैषम्य था। तेलुगु-साहित्य के प्रथम युग में बौद्ध और जैन-धर्मों के विरुद्ध वैदिक धर्म का राजाश्रय में विकास हुआ। काकतीयों के राजत्व काल में वीर-शैवमत का विजृंभण हुआ। रेड्डी राजाओं के समय में शैव और वैष्णव दोनों का समान रूप में विकास हुआ, किन्तु अधिकांश रेड्डी राजा शैवमत के ही अनुयायी थे। विजयनगर साम्राज्य के काल में वैष्णव धर्म का विशेष प्रचार हुआ। इस धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त था। वैष्णव धर्म को प्रतिपादित करनेवाले असंख्य काव्यों की भी रचना हुई। स्वयं कृष्णदेव राय ने "विष्णु-चित्तीयमु" अथवा "आमुक्तमाल्यदा" नामक प्रबन्ध-काव्य वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के उद्देश्य से लिखा। फिर भी, अन्य संप्रदायों के प्रति सहिष्णुता बरती जाती थी।

प्रबन्ध काव्य

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने महाभारत और रामायण के अतिरिक्त मालती माधव आदि नाटकों को भी प्रबन्ध माना है। तेलुगु के प्राचीन महा-

कवियों ने प्रबन्ध शब्द का अर्थ संस्कृत के प्राचीन आलंकारिकों की परिभाषा से ही ग्रहण किया है, किन्तु तेलुगु के लक्षण-शास्त्रकारों ने "प्रबन्ध" को एक विशिष्ट काव्य-विशेष के रूप में मानकर उनके लक्षणों का निर्देश किया है। संस्कृत में दण्डी ने "सर्गबन्ध" नामक महाकाव्य के जो लक्षण बताये हैं, उन्हीं को तेलुगु के रीति-शास्त्रकारों ने "प्रबन्ध" के लक्षणों के रूप में स्वीकार किया है। तदनुसार प्रबन्ध के निम्नलिखित लक्षण निर्द्धारित किये गये हैं—

(१) प्रबन्ध काव्य में अष्टादश वर्णनों का समावेश हो—

"संध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वांत वासराः
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवनसागराः
संभोग विप्रलंभौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः
रण प्रयणोपयममंत्र पुत्रोदयादयः
वर्णनीया यथा योगं सांगोपांगा अमी इह ॥"

(२) प्रबन्ध की कथा-वस्तु सुप्रसिद्ध हो—

"इतिहासोद्भवं वृत्तं मन्यद्वासज्जनाश्रयम्
चत्वारस्त स्यवर्गास्युस्ते ष्वेकंचफलं भवेत् ॥"

(३) धीरोदात्तादि नायकों में से एक कथा नायक हो।

(४) शृंगार-रस प्रधान तथा अन्य रस गौण हो।

(५) प्रबन्ध-काव्य मौलिक हो, रूपान्तर न हो।

(६) लाक्षणिक एवं आलंकारिक शैली में इसकी रचना हो।

इनके अतिरिक्त प्रबन्ध-काव्य में इष्टदेवता की स्तुति, सुकवि-स्तुति, कृतिभर्ता के गुणों का वर्णन इत्यादि भी आवश्यक हैं। प्रायः तेलुगु के सभी प्रबन्ध-काव्य चंपू हैं, अतः गद्य-पद्य मिश्रित होने पर भी प्रबन्ध में प्रयुक्त गद्य, हिन्दी में गद्य-काव्य की भाषा में व्यवहृत परिभाषा के अन्तर्गत माना जा सकता है। हिन्दी में गद्य जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, तेलुगु में वह "वचनमु" कहलाता है। इसलिए तेलुगु के गद्य और वचनमु में अन्तर है। पद्य की भाँति श्रुतिमधुर व लय-प्रधान अविच्छिन्न शब्द-योजना से सुयोजित होनेवाली रचना गद्य है। उसमें शब्द और अर्थ के साथ कविता के लक्षण भी निहित होते हैं, अर्थात् छन्द इत्यादि नियमों से

मुक्त रचना गद्य है। इसे अंग्रेजी में "पोयटिक प्रोज" और हिन्दी में "गद्य-काव्य" कह सकते हैं। वचनमु के उपर्युक्त लक्षण नहीं होते। इस युग में प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त लक्षण-ग्रन्थ, द्विपद-काव्य, द्व्यर्थि तथा त्र्यर्थि-काव्य, ठेठ तेलुगु-काव्य और शतक इत्यादि भी रचे गये, किन्तु प्रबन्ध काव्यों की प्रधानता रही।

उपर्युक्त लक्षणों से सम्पन्न तेलुगु प्रबन्ध काव्य दृश्य, श्रव्य तथा मधुर-काव्य के तीनों गुणों से युक्त हो समग्र रूप को प्राप्त हुआ। इस युग में ऐसे प्रबन्ध काव्यों का विपुल संख्या में सर्जन हुआ, अतः इस काव्य-विशेष के नाम पर ही इस युग का नामकरण प्रबन्ध-युग किया गया है।

उपर्युक्त परिभाषा के अनुरूप प्रथम प्रबन्ध काव्य का प्रणयन कृष्णदेव राय के दरबारी कवि पेद्दना ने किया। कृष्णदेव राय संस्कृत, तेलुगु, कन्नड़ इत्यादि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान् और कवि थे। इन्होंने स्वयं काव्य-रचना की तथा कवियों को प्रोत्साहन देकर उनसे अनेक महत्त्वपूर्ण काव्य लिखाये। इन्होंने कवियों का बड़ा सत्कार एवं सम्मान किया। इस प्रकार सम्राट् कृष्णदेव राय ने साहित्यिक यज्ञ का प्रतिनिधित्व किया और इस युग के साहित्य-सर्जन के वे ही प्रेरणा-स्रोत थे। इन्हीं कारणों से यह प्रबन्ध-युग, "रायल-युग" नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।[१]

श्रीकृष्णदेव राय (ई० सन् १४८७ से १५३० तक)

संस्कृत में कालिदासकृत "रघुवंश" और "कुमार-संभव", भारवि द्वारा विरचित "किरातार्जुनीयम्", माघ कवि रचित "शिशुपाल-वध" तथा श्रीहर्ष-कृत "नैषध"—पंच महाकाव्य माने जाते हैं। इसी प्रकार तेलुगु भाषा में अल्लसानि पेद्दनाकृत "मनुचरित्र", कृष्णदेव रायकृत "आमुक्तमाल्यदा", रामराजभूषणकृत "वसुचरित्र", श्रीनाथकृत "शृंगार नैषध" और तेनाली रामकृष्णकृत "पांडुरंग माहात्म्य" पंच महाकाव्य माने जाते हैं। कतिपय विद्वान् पंच महाकाव्यों में "पांडुरंग-माहात्म्य" के स्थान पर पिंगलि सूरनाकृत "कलापूर्णोदय" को स्थान देते हैं और कुछ चेमकूर वेंकट कविकृत "विजय विलासमु" को।

---

१. विस्तृत परिचय प्राप्त करने के लिए इन्हीं पंक्तियों के लेखक द्वारा विरचित "आन्ध्र भारती" का अवलोकन करें।

कृष्णदेव राय के दरबार में अष्ट दिग्गज नाम से विख्यात तेलुगु के आठ महाकवि थे। उनमें अल्लसानि पेद्दना, नंदि तिम्मना, अय्यल राजु रामभद्रुडु, धूर्जटि और मादयगारि मल्लना उनके समकालीन थे। अन्य तीनों कवि—पिंगलि सूरना, रामराजभूषण और तेनालि रामकृष्ण कवि उनके बाद में हुए, किन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि तेनालि रामकृष्ण भी कृष्णदेव राय के समकालीन ही थे।

कृष्णदेव राय का सभा-भवन "भुवन-विजय" सदा पण्डित, कवि व आचार्यों से भरा रहता था। सदा शास्त्र-चर्चा, कविता-पाठ, समस्या-पूर्ति, अवधान, आशुकविता इत्यादि की गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। संक्षेप में कहना हो, तो यही कहना पड़ता है कि "आन्ध्र-भारती" या "तेलुगु-सरस्वती" की उस समय इसके प्रतिनित्य काव्यकारों और कविता-सुमनों द्वारा ऐसी उपासना होती थी कि स्वयं कवियों के साथ प्रेक्षकों का शरीर भी पुलकित हो उठता था। कृष्णदेव राय तेलुगु भाषा की मधुरिमा पर मुग्ध थे। उन्होंने स्वयं अपने काव्य "आमुक्त माल्यदा" की भूमिका में लिखा है—

"तेलुगुदेल यन्न देशंबु तेलुगेनु
तेलुगु वल्लभुंड तेलुगोकोंड
एल्ल भाषलंदु एरुगवे माटाडि
देश भाषलंदु तेलुगु लेस्स।"

अर्थात् – यदि कोई मुझसे पूछे कि आप तेलुगु की प्रशस्ति क्यों करते हैं, तो मेरा उत्तर है कि यह तेलुगु देश है और मैं तेलुगु प्रजा का राजा तथा एक तेलुगु भाषा-भाषी हूँ। मैं सभी भाषाएँ जानता हूँ, मैंने सबमें वार्तालाप करके देखा है, किन्तु मैंने पाया कि समस्त देशी भाषाओं में तेलुगु ही सर्वोत्तम है।

कृष्णदेव राय संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित व कवि थे। उन्होंने संस्कृत में "मदालसा-चरित्र", "सत्यवधू-परिणय", "सकल कथा-सार-संग्रहम्", "ज्ञान-चिंतामणि", "रस-मंजरी" तथा "जंबवती-परिणय" नामक काव्य और नाटक लिखे हैं। इन्होंने तेलुगु में सन् १५११ में "आमुक्त माल्यदा' (विष्णु चित्तीयमु) नामक एक प्रबन्ध काव्य की भी रचना की। यह काव्य सात आश्वासों में समाप्त

हुआ है। इसमें करीब नौ सौ पद्य हैं। परंपरा के विपरीत आपने आश्वासों के अन्त में गद्य के स्थान पर पद्य का प्रयोग किया है, जो एक विलक्षण प्रयोग माना जाता है। तत्कालीन आन्ध्र देश का जातीय जीवन इस काव्य में पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हुआ है। आन्ध्र-वाङमय के लिए यह काव्य एक अलंकारप्राय अमूल्य रत्न माना जाता है। इसमें एक वैष्णव-भक्त की कथा वर्णित है। विशिष्टाद्वैत को प्रतिपादित करने वाला यह काव्य साहित्यिक दृष्टि से भी अपना अनुपम स्थान रखता है। इसकी कथा-वस्तु का संक्षिप्त सारांश यों है—

"मदुरा नगरी पर मत्स्यध्वज नामक पांड्य नरेश राज्य करता था। वह वेश्यागामी था। एक दिन उस नगर के एक पुरोहित के चबूतरे पर एक ब्राह्मण अतिथि पढ़ रहा था कि रात्रि के लिए दिन में, वृद्धावस्था के निमित्त यौवन में, नये जगत् के लिए इस जगत् में आवश्यक सामग्रियों का संचय करना चाहिए। वेश्या गृहोन्मुख राजा ने जब यह सुना, तब उसमें इस संसार के प्रति वैराग्य भाव जागा। विप्र का समुचित रूप में सत्कार कर अपने महल को लौटा। प्रातःकाल होते ही पण्डितों की एक सभा बुलायी, जिसका विचारणीय विषय था कि कौन-सा धर्म उत्तम है। उसमें भाग लेकर अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ साबित करने के लिए अनेक प्रदेशों से धर्माचार्य पधारे। श्रीविल्लिपुत्तूर में विष्णुचित्त नामक एक वैष्णव भक्त रहता था। वह उस गाँव में विराजमान मन्नारदास स्वामी की पूजा-अर्चना किया करता था। श्री मन्नार कृष्ण ने अपने भक्त विष्णुचित्त को विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की श्रेष्ठता प्रमाणित करने की प्रेरणा दी, किन्तु विष्णुचित्त ने अपने आराध्य से निवेदन किया—

> **"गृह सम्मार्जनमो, जलाहरणमो, शृंगार पल्यंकिका**
> **वहनंबो, वन मालिका करणमो, वाललभ्यल शयध्वज**
> **ग्रहणंबो, व्यजनातपत्र-धृतियो, प्राउदीपिकारोपमो**
> **नृहरी, वादमुलेललेरे यितरुलु नीलोलकुं बात्रमुल् ।।"**

अर्थात् —भगवन्! घर की सफाई करना, जल लाना, शृंगार पालकी का वहन करना, पुष्पाहार तैयार करना, शयन का प्रबन्ध करना, व्यजन डुलाना और दीपक जलाना इत्यादि सेवा-कार्य ही मुझसे बन पड़ते हैं। भला मैं शास्त्रार्थ

करता क्या जानूं ? हे प्रभु, तुम्हारी लीलाओं का समग्र परिचय करा सकने वाला योग्य व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है।

परन्तु मल्लारदास स्वामी ने उसकी एक न सुनी। उनके आग्रह पर विष्णु-चित्त ने पांड्य नरेश के दरबार में प्रविष्ट हो, शास्त्रार्थ में सभी पण्डितों को पराजित कर विशिष्टाद्वैत की स्थापना की। तदुपरान्त उसने खांडिक्य और केशध्वज का संवाद सुनाकर अष्टाक्षरी मंत्र का उपदेश किया। इस वाद की सत्यता प्रमाणित करने के लिए ऊपर बँधी शुल्क ग्रंथि नीचे गिर पड़ी। राजा ने विष्णुचित्त का शिष्यत्व ग्रहण किया।

विष्णुचित्त अपने नगर को वापस आया। पूर्ववत् अपने आराध्य की सेवा में तत्पर रहा। एक दिन विष्णुचित्त को अपने उद्यान के सरोवर के निकट एक बालिका मिली। वह बड़ी होकर विष्णु पर मोहित हुई। वही कन्या आंडाल या गोदादेवी थी। वह प्रतिनित्य पुष्पमालाएँ गूँथती, अपने कंठ में पहनकर सरोवर के निर्मल जल में उसकी शोभा निहारती, तदुपरान्त उसे भगवान् को पहनाती। इसी सन्दर्भ मे उक्त काव्य का नाम "आमुक्त माल्यदा" पड़ा, जिसका भाव स्वयं धारण की हुई माला समर्पित करना होता है। गोदादेवी की इस माधुर्य भक्ति पर प्रसन्न हो विष्णुचित्त की आज्ञा से श्रीरंगेश ने विवाह किया। गोदा के आराध्य का नाम श्रीरंगेश है। इस काव्य में विष्णुचित्त की कथा वर्णित होने के कारण यह "विष्णुचित्तीयमु" नाम से भी व्यवहृत होता है।

इस काव्य में जनपदीय जीवन का सजीव चित्र खींचा गया है। पुष्पसंयुत जलकुंभ ले जाने वाली द्राविड़ नारियों का चित्रण, मछली पकड़ने वाले दृश्यों का वर्णन, शस्यश्यामल केदार और ग्रामीण कन्याओं का परिहास इत्यादि अत्यन्त अद्भुत बन पड़े हैं। तत्कालीन समाज की दशा तथा कृष्णदेव के गुण-विशेषों का परिचय प्राप्त करने के लिए यह काव्य दर्पण-जैसा है।

कृष्णदेव राय केवल कृतिकर्ता ही नहीं थे, अपितु वे कृतिभर्ता भी थे। पेद्दनाकृत "मनुचरित्र" तथा नंदि तिम्मनाकृत "पारिजातापहरणम्" काव्य इन्हीं को समर्पित हैं। अपने युग के प्रायः सभी कवियों तथा पण्डितों को इन्होंने किसी-न-किसी रूप में अवश्य सहायता पहुँचायी। इस युग में ऐसा कोई कलाकार नहीं मिलता, जो कृष्णदेव राय से प्रभावित न हो और उनका यश न गाता हो।

अल्लसानि पेद्दना (ई० सन् १४७० से १५३३ तक)

पेद्दना कड़पा जिले के पेद्दनपाडु के निवासी और चोक्कनामात्य के पुत्र थे। शठकोप स्वामी इनके गुरु थे। पेद्दना ने "मनु-चरित्र", "गुरु-स्तुति" तथा "हरि-कथा-सारमु" नामक तीन कृतियों की रचना की, किन्तु आज केवल "मनु-चरित्र" ही उपलब्ध है। पेद्दना की कीर्ति का केतु यही काव्य है।

प्रबन्ध काव्य की सृष्टि में पेद्दना ने एक नये अध्याय का शुभारम्भ किया है। 'रायल-युग' का प्रतिनिधित्व प्रमुख रूप से इसी महाकवि ने किया है। शृंगार और शान्त रसों का समन्वित रूप "मनु-चरित्र" में मिलता है। पेद्दना की सम्पूर्ण प्रतिभा इसमें अभिव्यक्त हुई है। मनु-चरित्र में महाकवि प्रवर तथा वरूधिनी जैसे अपूर्व पात्रों की सृष्टि करके तेलुगु साहित्य में अमर हो गये हैं। भारतीय साहित्य में प्रणय-कलाप के लिए रंभा तथा जितेन्द्रियता के लिए शुक महर्षि विख्यात हैं। तेलुगु में प्रवर और वरूधिनी उतने ही प्रख्यात हुए हैं। पात्रों के चित्रण में सजीवता, वार्तालाप में चतुरता, रस-निरूपण, भाव-विभावादि के पोषण का विधान, उपर्युक्त पात्रों के चरित्र-निर्माण में प्रदर्शित नाटकीयता, शिल्प-रचना की कुशलता, कल्पना की रमणीयता इत्यादि पेद्दना के काव्य की विशिष्टताएँ हैं, जो उसे महाकवि के गौरव से गौरवान्वित करती हैं।

पेद्दना की कविता पर मुग्ध हो राजा कृष्णदेव राय ने इन्हें आन्ध्र-कविता-पितामह" उपाधि से विभूषित किया था। दरबार में पेद्दना को अपार सम्मान एवं आदर प्राप्त था। वे संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित एवं कवि थे तथा दोनों भाषाओं में साधिकार कविता करने की क्षमता रखते थे। एक बार दरबार में कृष्णदेव राय ने अष्टदिग्गजों को सम्बोधित कर कहा कि जो कवि तेलुगु और संस्कृत में समान रूप से कविता करके हमको प्रसन्न करेंगे, उनका मैं स्वर्ण गंडपेंडेर (स्वर्ण घंटिका) द्वारा सम्मान करूँगा। सभी कवि मौन थे। पेद्दना ने एक लम्बी उत्पलमालिका आशु रूप में तेलुगु और संस्कृत में कह सुनायी। इस पर प्रसन्न हो राजा ने पेद्दना के वामपाद में स्वर्ण गंडपेंडेर पहना दिया।

पेद्दना ने जब अपना मनु-चरित्र काव्य समाप्त कर राजा को समर्पित किया, उस समय सम्पन्न उत्सव में राजा ने स्वयं पेद्दना की पालकी में कंधा दिया था।

ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो कृष्णदेव की उदारता और पेद्दना की प्रतिभा का परिचय कराते हैं।

पेद्दना ने मार्कंडेय-पुराण की एक छोटी-सी घटना को ग्रहण कर उसे महा-काव्य का रूप दिया है, जो मनु-चरित्र नाम से एक मनोहर काव्य के रूप में विख्यात है। संक्षिप्त कथा-सार यों है––

आर्यावर्त में वरुणा नदी के तट पर अरुणास्पद नामक नगर था, जहाँ प्रवर नामक एक विप्र रहता था। वह अतिथि-सत्कार के लिए सुविख्यात था। एक दिन उसके यहाँ एक तपस्वी आया। उसने हिमालय की शोभा और पुण्य तीर्थों की विशेषताएँ बतायीं। प्रवर ने उन स्थानों को देखने की इच्छा प्रकट की, तो उस तपस्वी ने प्रवर के पाँवों में एक प्रकार के रस का लेपन कर बताया कि अब वह अपने वांछित प्रदेश संकल्प मात्र से ही देख सकता है। प्रवर उस लेपन के प्रभाव से हिमालय में पहुँचा, हिम के कारण वह लेप धुल गया। हिमालय में भटकते प्रवर की एक गन्धर्व कन्या से भेंट हुई। प्रवर ने उससे अपने घर लौटने का उपाय पूछा। गन्धर्व कन्या वरूधिनी प्रवर पर मोहित हो गयी थी, उसने प्रवर के साथ आलिंगन करना चाहा, किन्तु प्रवर ने उसे ढकेल दिया और अग्निदेव के मंत्र-बल से अपने घर पहुँचा। वरुधिनी प्रवर के विरह से विदग्ध थी। मौका पाकर वरूधिनी द्वारा तिरस्कृत एक गन्धर्व युवक प्रवर के वेष में उसके पास पहुँचा। वे दोनों कुछ समय तक सुखपूर्वक रहे। वरूधिनी गर्भवती हुई। उससे उत्पन्न बालक ही स्वरोचि कहलाया। बड़े होने पर उसने राजोचित समस्त विद्याएँ सीखीं। उसके दो विवाह हुए थे, तीसरा विवाह वनदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। उसके गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ, वही "मनु" है। भगवान् विष्णु ने "मनु" को प्रजा का शासन सौंपा। मनुओं में यह भी एक है। वह स्वरोचि द्वारा उत्पन्न होने के कारण "स्वारोचिष मनु" कहलाया और पेद्दना का काव्य "मनु-चरित्र" अथवा "स्वारोचिष मनु-संभव" नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नंदि तिम्मना

अष्ट दिग्गजों में पेद्दना के बाद तिम्मना का नाम ही विशेष आदर के साथ लिया जाता है। दरबार में ही नहीं, अपितु अन्त:पुर में भी तिम्मना को प्रतिष्ठा

प्राप्त थी। ये तिम्मांबा और सिंगनामात्य के पुत्र थे। तिम्मना ने "पारिजाता-पहरणमु" नाम से शृंगार-रस प्रधान एक प्रबन्ध काव्य की सृष्टि की। यह काव्य पाँच आश्वासों में समाप्त हुआ है। अपनी इच्छा से ही तिम्मना ने यह काव्य रायलु को समर्पित किया है।

मधुर कविता करने में तिम्मना बेजोड़ थे। पद-लालित्य और अर्थ-वैचित्र्य का समन्वय इनकी कविता की विशेषता है। नारी-स्वभावगत मार्दवता का तिम्मना ने जिस खूबी के साथ चित्रण किया, वह अद्वितीय है। तिम्मनाकृत "पारिजातापहरणमु" को कृष्णदेव राय की साहित्यिक गोष्ठी रूपी वसंत की मधुरिमा और शोभा कहा जाता है। प्रथम आश्वास में वर्णित कथा अव्यक्त माधुर्य से पूर्ण है और दृश्य काव्य के लक्षणों से युक्त है। उसमें पात्र-चित्रण और अभिनय-वैचित्र्य पढ़ते ही बनता है।

तिम्मना ने "हरिवंश" से कथा-वस्तु ग्रहण कर "पारिजातापहरणमु" की सृष्टि की। इसमें अभिमानिनी सत्यभामा का मान बड़ी मनोहर शैली में चित्रित हुआ है। पेद्दना के "मनु-चरित्र" से यह काव्य आकार में छोटा है, किन्तु रचना-सौष्ठव की दृष्टि से उसकी समता कर सकता है। वरूथिनी की भांति सत्यभामा का चरित्र भी उतनी ही सजीवता के साथ चित्रित किया गया है। तिम्मना के काव्य का मूल सत्यभामा का प्रणय-कोप में आकर श्रीकृष्ण पर पाद-प्रहार करना है। इससे कृष्ण को तो दुःख नहीं होता है, उन्हें चिन्ता होती है कि कहीं पाद-प्रहार करने से सत्यभामा के कमल-जैसे कोमल चरण मुरझ न गये हों! कुछ समीक्षकों का विचार है कि उपर्युक्त काव्य की घटना राजा कृष्णदेव राय के रनिवास या अन्तःपुर की है, जिसे तिम्मना ने पौराणिक कथा-वस्तु के साथ प्रस्तुत करके उसको निखारने में अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

काव्य की नायिका सत्यभामा नायक पर गाढ़ानुरक्ता है। खण्डित नायिका अपमानित हो, क्रोधादि भावों के वशीभूत अपनी विवश स्थिति में जिस विक्षोभ का अनुभव करती है और उसमें उसके जो भावोद्‌गार प्रस्फुटित होते हैं, उन्हें नायिका की अन्तर्मूर्ति के साक्षात्कार में सत्यभामा के चरित्र के माध्यम से व्यक्त करने एवं दर्शाने में तिम्मना ने अपूर्व कौशल प्राप्त किया है और जिसमें रस-निष्पत्ति की अद्‌भुत पूर्णता है। यही कारण है कि परवर्ती कवियों ने भी अपने

शृंगार-प्रधान-प्रबन्धों की नायिका के भाव-चित्रण में तिम्मना का अनुकरण किया है ।

तिम्मना अपनी मधुरवाणी के लिए विख्यात है । इनकी कविता का पूरा वर्णवृत्त बिना विराम के नासिका द्वारा मीठी वाणी में पढ़े जाने योग्य होने के कारण "मुक्कु तिम्मनार्यु मुद्दु पल्कु" अर्थात् "नासिकायुत तिम्मना की मीठी बोली"— के रूप में प्रशंसित हुआ है । इसी कारण ये नंदि तिम्मना के साथ ही "मुक्कु (नासिका) तिम्मना" भी कहलाते हैं । तेलुगु-साहित्य में "सत्यभामा का चरित्र" तिम्मना की एक अपूर्व सृष्टि है ।

मादय्यगारि मल्लना (ई० सन् १४७० से १५३० तक)

कृष्णदेव राय के अष्ट दिग्गजों में से एक थे, मादय्या के पुत्र, जो कृष्णा जिले में स्थित अद्दंकी के निवासी थे । इनका जीवन-काल ई० सन् १४७० से १५३० तक माना जाता है । रायलु के दरबार में मल्लना का अच्छा मान था । इन्होंने "राजशेखर-चरित्र" नाम से तीन आश्वासों का एक प्रौढ़ प्रबन्ध-काव्य लिखा है । इसमें राजकुमारी कांतिमती तथा राजशेखर के प्रणय एवं परिणय का चित्रण हुआ है । कविता प्रौढ़ शैली में है और तेलुगु भाषा की सहज मधुरिमा इसमें पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है । इसमें मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग भी सन्दर्भ के अनुसार बहुत सुन्दर हुआ है ।

मल्लना ने नादिंड्ल अप्पयामात्य को अपने काव्य का कृतिपति बनाया है । अप्पयामात्य श्रीकृष्णदेव राय के महामात्य तिम्मरुसु (अप्पाजी) के जामाता थे । इससे हमको यह विदित होता है कि कृष्णदेव में पूरी सहिष्णुता एवं उदारता थी और उन्होंने अपने दरबारी कवि को इतनी स्वतन्त्रता दे रखी थी कि वह अपनी कृति को अपनी इच्छा से किसी को भी समर्पित कर सकता है । कृष्णदेव ने केवल पेद्दना से ही अपना काव्य उन्हें समर्पित करने की प्रार्थना की थी, तिम्मना ने अपने काव्य का समर्पण स्वयं अपनी ही इच्छा से किया था ।

धूर्जटी

धूर्जटी भी कृष्णदेव राय के अष्ट दिग्गजों में से एक थे । ये अत्यन्त स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे । सिंगम्मा और नारायणामात्य इनके माता-पिता थे ।

दरबार में धूर्जटी अपनी मधुरवाणी के लिए विख्यात थे। एक दिन सभा-भवन में कृष्णदेव राय ने अपने दरबारी कवियों को निम्नलिखित समस्या पूर्ति के लिए दी थी—

स्तुतमतियैन आंध्रकवि धूर्जटि पल्कुलकेल कल्गेनी
यतुलित माधुरी महिम..............."

अर्थात्—प्रशंसनीय प्रखर बुद्धि वाले आन्ध्र कवि धूर्जटि की वाणी को अतुलित माधुर्य की यह महिमा कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई।

इस समस्या की पूर्ति तत्काल कोई नहीं कर सका था। बताया जाता है कि दो दिन की अवधि लेकर रामकृष्ण कवि ने उसकी पूर्ति की है। इससे प्रमाणित होता है कि धूर्जटी की कविता अपनी मधुरिमा के लिए प्रसिद्ध थी।

धूर्जटी ने "कालहस्ति-माहात्म्यमु" नाम से चार आश्वासों का एक प्रबन्ध काव्य लिखा। यह काव्य कालहस्ती क्षेत्र (तीर्थ) के "कालहस्तीश्वर भगवान्" को समर्पित है। यह काव्य प्रबन्ध शैली में विरचित स्थल-माहात्म्य अथवा स्थल पुराण है। इसमें कई कथाएँ वर्णित हैं और इसकी प्रत्येक कथा एक छोटा प्रबन्ध प्रतीति होती है। इस काव्य की संक्षिप्त कथा-वस्तु यों है—

वर्तमान समय में जहाँ कालहस्तीश्वर का मन्दिर स्थित है, वहाँ प्राचीन समय में एक शिव-लिंग था। उसकी उपासना प्रति-दिन एक मकड़ी (श्री), एक साँप (काल नाग) और एक हाथी (हस्ती) किया करते थे। हाथी पत्र लाकर पूजा करता और साँप मणियों से। एक की पूजा-वस्तु हटाकर दूसरा अपनी पूजा की सामग्री लिंग पर रख देता। दूसरे दिन उनमें से हर एक आकर अपनी पूजा को हटाया देख दुखी होता और हटानेवाले का अन्त करने की सोचता। आखिर महाशिवरात्रि के दिन सबने अपने-अपने शत्रु को देखा। साँप हाथी की सूँड़ में घुस गया। हाथी ने पीड़ा से सर पटक-पटक कर अपना प्राण त्याग दिया। क्रमश: तीनों प्राणियों को मुक्ति प्राप्त हुई। इस काव्य में सुवर्णमुखी नदी का जन्म, मकड़ी, साँप और हाथी के वृत्तान्त, तिन्नेडु की कथा अत्यन्त रोचक शैली में वर्णित है। महर्षि वशिष्ठ ने कालहस्ती प्रदेश पर ही शिवजी की तपस्या की थी और उनसे वरदान प्राप्त किया था। ये कथाएँ धूर्जटी की भक्ति के उत्तम

मकड़ी, सर्प और हस्ती के वृत्तान्त वर्णित होने तथा उनके मुक्ति प्राप्त करने के कारण इस प्रदेश का नाम 'श्रीकालहस्ती' पड़ा। यह शैव-तीर्थ है, जो तिरुपति के समीप है। इसे लोग दक्षिण कैलाश भी मानते हैं। धूर्जटी शैव मतावलम्बी थे। इन्होंने अपने काव्य को अपने आराध्य देव श्री कालहस्तीश्वर को समर्पित किया। कवियों की इस प्रकार की स्वतन्त्रता रायलु की सहृदयता, धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है।

कुछ लोगों का विचार है कि धूर्जटी युवावस्था में वेश्यागामी थे, उनकी वह आसक्ति भक्ति में परिणत हो गयी। उनकी कविता में भक्ति, वैराग्य तथा नीति का मणि-कांचन संयोग हुआ है। उनका दूसरा ग्रन्थ "कालहस्तीश्वर-शतक" है। यह तेलुगु वाङ्मय का एक अमूल्य रत्न माना जाता है।

अय्यलराजु रामभद्रुडु (ई० सन् १५३० से ८० तक)

ये कड़पा जिला ओंटिमिट्टा के निवासी और अक्कलार्य के पुत्र थे। आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त दरिद्र थे। बड़ी कठिनाई से इनका जीवन-निर्वाह होता था। जीवन के संघर्ष में पराजित हो प्राण-त्याग करने का भी इन्होंने निश्चय कर लिया था। एक मित्र की प्रेरणा से ये अपना गाँव छोड़ विजयनगर पहुँचे। जन्म जात प्रतिभा ने आखिर इनको कृष्णदेव राय के दरबार में स्थान दिलाया। ये कृष्णदेव राय के दरबार के अष्ट दिग्गजों में से एक थे। कृष्णदेव राय की वृद्धा-वस्था में ये नवयुवक थे और उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने "सकल कथा-सार-संग्रह" नामक काव्य के प्रणयन का शुभारम्भ किया, किन्तु इसके समाप्त होने के पूर्व ही रायलु का देहान्त हो गया था। यह नौ आश्वासों का ग्रन्थ है।

रामभद्रुडु या रामभद्र कवि का दूसरा काव्य "रामाभ्युदय" है। इस प्रबन्ध काव्य के कवि को अपार यश प्राप्त हुआ। रामायण की कथा को प्रबन्ध काव्य के रूप में प्रस्तुत करने में कवि ने अपने कौशल का पूरा परिचय दिया है। प्रबन्ध की शैली तत्कालीन महाकवियों द्वारा अत्यन्त प्रशंसित हुई, साथ ही इसका प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पड़ा, परिणामस्वरूप उनके अनुकरण में अनेक काव्य रचे गये। यह काव्य कृष्णदेव राय के जामाता रामराज के भतीजा नरसराजु को समर्पित है।

तेनालि रामकृष्ण कवि

ये तेनालि के निवासी रामय्या और लक्ष्मम्मा के पुत्र थे। रामकृष्ण आन्ध्र में रामलिंग राम से भी विख्यात हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार रामकृष्ण और रामलिंग दोनों एक नहीं, भिन्न हैं। कतिपय आलोचकों का विचार है कि रामलिंग पहले शैव थे और बड़े विनोदी स्वभाव के थे, किन्तु बाद में वे वैष्णव हो गये। रामलिंग कवि "विकटकवि" नाम से हास्य के लिए विशेष विख्यात थे, इनकी कथाएँ हमें बीरबल की कथाओं का स्मरण दिलाती हैं। इनकी विनोदप्रिय प्रकृति के सम्बन्ध में अनेक दन्त-कथाएँ आन्ध्र, तमिलनाडु और कर्नाटक में प्रसिद्ध हैं, पर उन पर सहसा विश्वास करना सम्भव प्रतीत नहीं होता।

रामकृष्ण कवि एक उद्भट विद्वान्, प्रकाण्ड पण्डित और महाकवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। आज अधिकांश विद्वान् रामलिंग और रामकृष्ण दोनों के एक होने पर अधिक विश्वास करते हैं। इस कवि के सम्बन्ध में आज भी यह विवाद है कि रामकृष्ण कृष्णदेव राय के दरबार में थे अथवा नहीं। कुछ लोग रामलिंग की हास्य-कथाओं के आधार पर इस कवि को कृष्णदेव राय का समकालीन बताते हैं और उनके दरबार के अष्ट दिग्गजों में से एक कवि मानते हैं, परन्तु कतिपय समीक्षकों के मतानुसार ये १६ वीं शती के अन्तिम चरण के ठहरते हैं। कुछ विद्वान् इन्हें चन्द्रगिरि के राजा वेंकटपति राय (ई० सन् १५८५ से १६१४) के दरबारी कवि बताते हैं। विजयनगर साम्राज्य के पतन के पश्चात् वेंकटपति राय ने चन्द्रगिरि को अपनी राजधानी बनाकर शासन किया था।

रामकृष्ण कवि के ग्रन्थों में "पांडुरंग-माहात्म्य", "उद्भटाराध्य-चरित्र" एवं "घटिकाचल-माहात्म्य" इस समय उपलब्ध हैं। "पांडुरंग-माहात्म्य" अत्यन्त प्रौढ़ काव्य है, जो तेलुगु के पाँच महाकाव्यों में एक माना जाता है। पण्डितों का अभिप्राय है कि यह काव्य यद्यपि एक तीर्थ के माहात्म्य में लिखा गया है, किन्तु अपनी प्रौढ़ आलंकारिक शैली के कारण यह प्रबन्ध काव्यों की कोटि में गिना जा सकता है। इसमें वर्णित प्रत्येक कथा सजीव पात्रों, सुसंगठित कथा-अवयवों से परिपूर्ण हो परिमार्जित खण्ड-काव्य की भाँति आनन्ददायक है। रामकृष्ण के भाव अत्यन्त स्वतन्त्र, गम्भीर एवं रमणीक हैं। भावों को व्यक्त करने वाली पद-(शब्द) योजना भी पर्याप्त प्रौढ़ है।

पुराण सम्बन्धी कथा-वस्तु होने पर भी इसमें प्रबन्ध काव्य के अष्टादश वर्णन समग्र रूप में हुए हैं। छन्द एवं अलंकार योजना में ये किसी महाकवि की भी समता करने में समर्थ हैं। "पांडुरंग-माहात्म्य" में अगस्त्य का कार्तिकेय का दर्शन करना, पुंडरीक-चरित्र, तीर्थ-माहात्म्य, निगम-शर्मोपाख्यान, श्री राधाकृष्ण-चरित्र, सुशली नामक पतिव्रता का चरित्र, धर्मराज का पांडुरंग क्षेत्र की यात्रा करना, सुशर्मोपाख्यान, कौआ, हंस, तोता, साँप, मधुमक्खी, गाय इत्यादि की मुक्ति पानेवाली कथाएँ वर्णित हैं। चरित्र-चित्रण और व्यावहारिक ज्ञान का उत्तम उदाहरण निगमशर्मोपाख्यान है। निगमशर्मा नामक एक ब्राह्मण युवक अपने माता-पिता की छत्रछाया से मुक्त होते ही बुरी संगति में पड़कर अपनी सारी सम्पत्ति स्वाहा कर देता है। अपनी बहिन के समझाने पर सुधरने का तो प्रयत्न करता है, किन्तु पुनः वेश्यागमन आदि में लीन हो अन्त में राह का भिखारी बन जाता है और कंगाली में भटकता पंडरीक क्षेत्र में प्राण-त्यागकर उस तीर्थ के प्रभाव से वह मुक्ति पाता है। संक्षेप में काव्य की कथा-वस्तु यही है। यह काव्य सन् १५५० के करीब वेदाद्रि मंत्री को समर्पित किया गया है, जिससे पता चलता है कि रामकृष्ण कवि कृष्णदेव राय के समय (सन् १५३०) में यौवनावस्था में रहे होंगे।

"उद्भटाराध्य-चरित्र" तीन आश्वासों का काव्य है। इसमें उद्भट का चरित्र तथा शिवजी की महिमाएँ वर्णित हैं। यह ऊरदेच मन्त्री को समर्पित है। "घटिकाचल-माहात्म्य" तीन आश्वासों वाला काव्य है। इसमें घटिकाचल पुण्य तीर्थ की महिमा वर्णित है।

रामकृष्ण की अन्य कृतियों में "कंदर्पकेतु-विलासमु" और "हरिलीला-विलासमु" भी माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनकी अनेक चाटूक्तियाँ आज भी आन्ध्र-प्रदेश के जनपदों में प्रचलित हैं।

कवितरंगिनी के लेखक श्री चागंटि शेषय्या ने "रामकृष्ण" कवि का जीवन-काल ई० सन् १४९५ से १५६५ माना है। यदि यह सत्य है तो यह मानने में कोई सन्देह नहीं रह जायगा कि ये कृष्णदेव राय के दरबारी कवि थे। रामकृष्ण के सम्बन्ध में यह भी बताया जाता है कि पहले ये शैव थे, इनका नाम रामलिंग था और जब वे वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी हुए, तब इन्होंने अपना नाम बदलकर

"रामकृष्ण" रख लिया। यदि यह सत्य हो, तो फिर इस कवि को लेकर कोई मतभेद नहीं रह जायगा।

पिंगलि सूरना

आन्ध्र-वाङमय में महाकवि तिक्कना और पोतना के पश्चात् पिंगलि सूरना का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। सर्वतोमुखी प्रतिभा से सम्पन्न सूरना प्रौढ़ कविता एवं मौलिक उद्‌भावना करने में अद्वितीय थे। कृष्णा जिला पिंगलि ग्राम के ये निवासी थे तथा अमरना और अम्बम्मा के पुत्र थे।

सूरना ने "कलापूर्णोदयमु", "राघव-पांडवीयमु" तथा "प्रभावती-प्रद्युम्नमु" नाम से तीन प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन किया। इन काव्यों का रचना-काल एवं कृति-समर्पण के आधार पर सूरना के समय का निर्द्धारण किया जा सकता है। कुछ पण्डितों के मतानुसार सूरना कृष्णदेव राय के समकालीन तथा उनके दरबार के अष्ट-दिग्गजों में से एक थे, परन्तु यह कथन अब तक विवादास्पद ही है। कुछ पण्डितों की मान्यता है कि सूरना नंद्याल के राजा कृष्णराजु के दरबारी कवि थे और सदाशिव राय (ई० सन् १५४२ से ७०) के समकालीन थे। यही नहीं, सूरना ने अपना "कलापूर्णोदयमु" नामक प्रौढ़ काव्य नंद्याल के भूपति कृष्ण-राजु को समर्पित किया है। कृष्णराजु का राज्य-काल सन् १६५० के करीब माना जाता है।

सूरना ने "राघव-पांडवीयमु" नामक द्वयर्थि प्रबन्ध काव्य की रचना करके श्लेष कविता करने के इच्छुक कवियों को मार्ग-दर्शन कराया। इस काव्य की रचना के पूर्व जो फुटकल श्लेष कविता प्राप्त होती है, उसका परिणत रूप है "राघव पांडवीयमु"। इस काव्य में सूरना ने रामायण और महाभारत की कथाओं का निर्वहण किया और दोनों काव्यों के भावों को ध्वनित किया। यह एक श्लेष काव्य है। सरल एवं सुबोध शैली में पूर्ण श्लेष काव्य की रचना करना अनितर साध्य है। इस विचित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए अनुकरण करने योग्य लक्षण (रीति)-ग्रन्थ अथवा प्राचीन काव्य सूरना को उपलब्ध नहीं थे। संस्कृत कवि के लिए भले ही यह कार्य सरल हो, किन्तु तेलुगु में श्लेष घटित करते हुए सम्पूर्ण काव्य की रचना करना बड़ा दुर्घट एवं साहसपूर्ण कार्य

था। उन्होंने स्वयं इस काव्य की रचना के लिए लक्षणों की सृष्टि की तथा दो परस्पर भिन्न कथाओं को एक ही छन्द में ढालने का आश्चर्यजनक प्रयास किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं एक प्रश्न-चिह्न पण्डितों और पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है—

"दक्षुडेवंडिलु राम भारत कथल् जोडिंप भाषाकृतिन्"

अर्थात्—देशी भाषा के काव्यों में राम और महाभारत की कथाओं की एक ही ग्रन्थ में रचना करने की दक्षता रखनेवाले कौन हैं ?

सूरना के "कलापूर्णोदय" नामक काव्य के प्रादुर्भाव से मानों तेलुगु साहित्य-रूपी गगन-मण्डल में पूर्ण चन्द्रोदय ही हो गया। सूरना की सम्पूर्ण प्रतिभा इस काव्य में अभिव्यक्त हुई है। कल्पना का चरम उत्कर्ष इस काव्य में देखा जा सकता है। कथा-वस्तु की योजना में सूरना ने अपने व्यक्तितत्व एवं कृतित्व का परिचय तो दिया ही है, साथ ही अपनी भावना-शक्ति, कथा-संयोजना-वैचित्र्य, सन्दर्भ-शुद्धि और पात्रोचित स्वभाव का चित्रण भी अत्यन्त कुशलता के साथ सम्पन्न किया है। कलापूर्णोदय में शृंगार और अद्भुत रसों का सुन्दर समन्वय हुआ है। १६वीं शदी में ही सूरना ने औपन्यासिक शैली में काव्य का सर्जन कर अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है। संस्कृत में रचित "कादम्बरी" तथा अंग्रेजी भाषा के महाकवि शेक्सपियर द्वारा विरचित "कामेडी ऑफ एरर्स" से हम "कलापूर्णोदय" की तुलना कर सकते हैं। कवि ने कथा का इतना सुन्दर जाल बुना है कि पूरी कथा को अन्त तक पढ़ने की उत्सुकता बनी रहती है। इस काव्य में "संवाद-शैली" अपनायी गयी है, अतः इसमें नाटकीय तत्त्व भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

काव्य का संक्षिप्त सार—द्वारका नगरी की गणिका कलभाषिणी उद्यान में लताओं से निर्मित हिंडोले पर पेंगे ले रही है। उसी समय नभो-मार्ग में जाते हुए देवमुनि नारद गन्धर्वकवि मणिकंधर को कलभाषिणी के सौन्दर्य का परिचय कराते हैं। तभी बादलों की ओट में, आकाश मार्ग से एक दिव्य विमान पर जाते हुए रंभा और नलकूबर यह समाचार सुनते हैं। कलभाषिणी लतागुल्मों की आड़ में छिपकर रंभा-नलकूबर का वार्तालाप सुन लेती है। वह कुबेर-पुत्र नलकूबर पर मोहित हो जाती है। इसके पश्चात् मणिकंधर रंभा का स्पर्श-

सुख पाने के लिए नलकूबर का वेष धारण करता है और कलभाषिणी रंभा का रूप धारण करती है। असली और मायावी रूप न पहचाने जाने के कारण उन लोगों में झगड़ा होता है। मणिस्तम्भ नामक एक सिद्ध योगी द्वारा काव्य में दूसरा मोड़ आता है। इसके बाद इसमें सुगात्री और शालीन का वृत्तान्त, मणिस्तम्भ और सुमुखासत्ति का वृत्तान्त, कलापूर्ण का उदय (जन्म), कलापूर्ण का मधुरलालसा और अभिनव कौमुदी से परिणय, दिग्विजय और उनके राज्य की खुशहाली का आनन्दप्रद वर्णन आता है।

जिस समय राजा कलापूर्ण दिग्विजय समाप्त कर नगर-प्रवेश करने जा रहे हैं और जब उस नगर की प्रजा अपने प्रतापी एवं यशस्वी सम्राट् की स्तुति करते उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी है, उस समय के दृश्य का अभूतपूर्व वर्णन हुआ है—

क्षोणितलेंद्रु जूड़ नोक कोम्म वडिबरतेंचियुल्लस
द्वेणि भरंबुतो मोगपुतीगेवलग्नमु नदमरर्चि, यो
ड्ड़ाणमु तीगेगानिडि, मेड्नवलगोन्नदि चाल कड्डमै
पाणुल नुंड गौनु मरिबागुग गानुकवेट्टु कैवडिन् !!

अर्थात् — सम्राट् को देखने नर-नारी बेतहाशा दौड़े आये। एक बाला तो इस उल्लास में अपनी सुध-बुध भी इस तरह खो बैठी कि कंठ में धारण करने-वाली मालाओं को उसने कटि-प्रदेश में खोंस लिया, कमरबन्द को गले में डाल लिया और अपने सुकोमल करों को कटि-प्रदेश पर रख अपने सम्राट् को ऐसे निहारती रही, मानों वह स्वयं को उन्हें भेंट करने जा रही हो। उसके खड़े होने की मुद्रा ही ऐसी थी।

सूरना का एक और प्रौढ़ प्रबन्ध-काव्य "प्रभावती-प्रद्युम्नमु" है। यह पाँच आश्वासों में समाप्त हुआ है। इसमें वीर और शृंगार-रसों का अत्यद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। कथा-सार निम्न प्रकार है—

मेरु पर्वत के समीप "वज्रपुरी" नामक नगर का निर्माण करवाकर वज्रनाभ नामक एक राक्षस राज्य करता था। उसने अपने तपोबल से ब्रह्मा को प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त किया कि उसकी आज्ञा के बिना कोई भी उस नगर में प्रवेश नहीं कर सकता। भद्रनामक एक नट ने वसुदेव के यज्ञोत्सव में अपने अभिनय

द्वारा उन्हें प्रसन्न कर यह वर प्राप्त किया कि वह अलंघ्य दुर्ग में प्रवेश कर सके । इन्द्र के सरोवर की "शुचिमुखी" नामक एक हंसिनी ने वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती के निकट पहुँचकर यह जान लिया कि वह श्रीकृष्ण के पुत्र "प्रद्युम्न" पर आसक्त है । प्रद्युम्न "भद्र" के साथ "वज्रपुरी" के दुर्ग में प्रवेश कर प्रभावती के साथ प्रणय-कलाप करते हैं । अन्त में देवता-दैत्यों के बीच युद्ध होता है, उसमें प्रद्युम्न वज्रनाभ का वध करते हैं । वज्रनाभ के राज्य को चार भागों में विभक्त कर प्रभावन्त, चन्द्रप्रभु, गुणवन्त और कीर्तिवन्त नामक उसके पुत्रों को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करते हैं । प्रद्युम्न प्रभावती के साथ विवाह करके आराम से रहने लगते हैं ।

इस काव्य में "शुचिमुखी" नामक हंसिनी का दूत-कार्य बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है । उसकी वाक्-चातुरी और कार्य-साधना ने काव्य के सौन्दर्य में चार-चाँद लगा दिये हैं । गरुड़-पुराण इनकी प्रारम्भिक रचना मानी जाती है ।

रामराज भूषण

इनका असली नाम भट्टुमूर्ति था । ये चारणवंश के थे । वेंकट राय भूषण के पुत्र तथा कड़पा जिले में स्थित "बट्टपल्ले" के निवासी थे । इनका उपनाम या उपाधि "रामराज भूषण" था । इनका रचना-काल ई० सन् १५५० से १६०० तक माना जाता है । ये कृष्णदेव राय के जामाता अलिय रामराजु (ई० सन् १५४१ से ६५) के आस्थान (दरबारी) कवि थे । अलिय रामराजु इतिहास प्रसिद्ध तालिकोटा के युद्ध (सन् १५६५) में वीरगति को प्राप्त हुए ।

रामराज भूषण ने "वसुचरित्र", "नरस-भूपालीयमु" (काव्यालंकार-संग्रह) तथा "हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान" का प्रणयन किया है । ये तीनों ग्रन्थ अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं । ये काव्य-ग्रंथ उन्हें एक साथ कवि, पण्डित एवं आचार्य के स्थानों पर प्रतिष्ठित कराने में समर्थ हैं । ये अपनी प्रतिभा को सफलता के साथ अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं । उनकी वाणी से तेलुगु साहित्य समृद्ध एवं गौरवान्वित हुआ है ।

"वसु-चरित्र" कवि का प्रौढ़ काव्य है । इसमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष का बड़ी कुशलता के साथ पोषण हुआ है । ये संगीत के भी पारंगत थे, अतः इस

काव्य में साहित्य और संगीत का मणि-कांचन योग हुआ है। शब्द-चयन और उनके प्रतिपादन में कवि ने जिस कौशल का परिचय दिया है, वह बड़ा ही मार्मिक है। शब्द-योजना, अलंकार-योजना, रस-निरूपण आदि की दृष्टि से यह काव्य अनुपम है। इसकी रचना-शैली का प्रभाव परवर्ती कवियों पर ऐसा पड़ा कि इसके अनुकरण में अनेक "पिल्ल-(छोटे) वसुचरित्र" निकले। यहाँ तक कि संस्कृत और तमिल में भी इसका रूपान्तर हुआ है। काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् आज भी इसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। तेलुगु के विख्यात विद्वान् एवं कवि श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु का कहना है कि साहित्य, संगीत और नृत्य की विशेषताओं के परिचय के बिना "वसु-चरित्र" को पूर्ण रूप से समझना कठिन है। यह छः आश्वासों वाला काव्य है।

महाभारत में वर्णित उपरिचर वसु का छोटा-सा वृत्तान्त "वसुचरित्र" का इतिवृत्त है। यह काव्य तेलुगु के पंच महाकाव्यों में एक माना जाता है। रामराज भूषण कृष्णदेव राय के अष्ट दिग्गजों में से एक हैं। कुछ लोग इन्हें कृष्णदेव राय के समकालीन भी मानते हैं, किन्तु यह विवादास्पद है। "वसु-चरित्र" में राजा वसु और गिरिका का प्रणय वृत्तान्त और उनका विवाह वर्णित है। संक्षिप्त कथा-वस्तु यों है—

अधिष्ठानपुर के राजा वसु अपने मंत्री के साथ उद्यान में टहल रहे थे। वहाँ किन्नेर पक्षियों ने शुभ शकुनपूर्ण ध्वनियाँ कीं और कोलाहल पर्वत पर पहुँचे। राजा भी उत्सुकता के साथ वहाँ गये। कोलाहल पर्वत नवरत्नों से शोभायमान था। शुक-पिक, किन्नर एवं अप्सराओं के मधुर नादों के कोलाहल के कारण उस पर्वत का नाम "कोलाहल" पर्वत पड़ा था। वहाँ एक चन्द्रकान्ता शिलावेदी पर बैठी गिरिका नामक सुन्दरी वीणा-वादन कर रही थी, उसकी सखियाँ उसके चारों ओर परिवेष्टित थीं। इसमें मंत्री यह समाचार राजा को देकर मुनिवेष धारण कर दूत-कार्य सम्पन्न करता है। राजा और गिरिका में प्रणय, श्रृंगार एवं विरह का सजीव चित्र इस काव्य में उपस्थित है। विरह में भी गिरिका वीणा-वादन के साथ कांभोज राग में रोती है। अन्त में राजा वसु और गिरिका का विवाह सम्पन्न होता है। अन्तर्कथा के रूप में गिरिका के माता-

पिता, शुक्तिमती और कोलाहल का वृत्तान्त भी वर्णित है। काव्य कौतूहल-पूर्ण है।

"नरसभूपालीयमु" रामराज भूषण द्वारा रचित विख्यात रीति-ग्रन्थ है। यह "काव्यालंकार-संग्रह" नाम से भी ख्यात है। इसका कृतिपति अलिय रामराजु का भतीजा नरसराजु है। लक्ष्य के रूप में वर्णित पद्य नरसराजु को सम्बोधित हैं। विद्यानाथ कविकृत संस्कृत के "प्रतापरुद्र यशोभूषण" का यह तेलुगु रूपान्तर माना जाता है, किन्तु मूल में स्थित नाटक-प्रकरण इसमें नहीं है। इस ग्रन्थ में काव्य-भेद, नायक-भेद, रस, अलंकार आदि वर्णित हैं।

"हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान" कविकृत द्वयर्थी काव्य है। इसमें एक साथ राजा हरिश्चन्द्र और राजा नल की कथाएँ वर्णित हैं। तेलुगु-साहित्य में यह दूसरा द्वयर्थी काव्य माना जाता है। दो परस्पर भिन्न कथाओं का संयोजन करने में कवि ने जिस अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया है, वह अति प्रशंसनीय है। ऐसे काव्यों में रागात्मिका वृत्तियों का चित्रण कम और पाण्डित्य प्रकर्ष अधिक देखा जाता है। यह भगवान् रामचन्द्र को समर्पित है। कवि ने इसकी रचना अपनी वृद्धावस्था में की थी।

संकुसाल नृसिंह कवि

ये कृष्णदेव राय के समसामयिक तथा अल्लसानि पेद्दना के प्रतिस्पर्धी माने जाते हैं। इन्होंने "कवि-कर्ण-रसायन" नामक छः आश्वासों का शृंगार-रस-प्रधान एक प्रबन्ध काव्य लिखा है। इसमें वर्णित पुराण-प्रसिद्ध मांधाता-चरित्र तथा उनका चमत्कारिक कथा-वैचित्र्य अन्य प्रबन्ध काव्यों की समता में अद्वितीय ठहरता है। पात्रों के चित्रण में औचित्य का पोषण कर कवि ने तत्कालीन महाकवियों की प्रशंसा प्राप्त की और प्रबन्ध युग के अग्रश्रेणी के कवियों में अपना अनुपम स्थान बना सके। ये कड़पा जिले के निवासी थे।

कवि ने अपने काव्य के सम्बन्ध में यह दावा किया है कि इस काव्य के शृंगार-रस-सम्बन्धी वर्णनों के श्रवण मात्र से योगी भोगी हो जायगा तथा भोगी योगी हो जायगा। रसिक पाठक इस काव्य के अध्ययन के पश्चात् कवि की "हाँ-में-हाँ" मिलाकर उसकी इस युक्ति से सहमत होंगे।

इस काव्य के समर्पण के सम्बन्ध में एक दन्तकथा प्रचलित है कि कवि, कृष्ण-देव राय को इसका कृतिपति बनाना चाहते थे, किन्तु ईर्ष्यावश पेद्दना ने इसे सफल नहीं होने दिया, अतः कवि ने अपनी दरिद्रतावश अपने काव्य के पद्यों को बेचना प्रारम्भ किया। उनमें से एक पद्य कृष्णदेव राय की पुत्री मोहनांगी ने मोल लिया था। एक दिन शतरंज खेलते समय मोहनांगी ने जब अपने पिताजी को उक्त पद्य सुनाने के साथ इसका वृत्तान्त सुनाया, तो वे बहुत ही दुखी हुए, क्योंकि तब तक नृसिंह कवि अपने काव्य को श्रीरंगम् में स्थित श्रीरंगेश्वर को समर्पित कर चुके थे।

ताल्लपाक चिन्नन्ना (ई० सन् १४७८ से १५६१ तक)

ये तेलुगु के विख्यात वाग्गेयकार ताल्लपाक अन्नमाचार्य के पोते तथा राजा कृष्णदेव राय के समसामयिक थे। इनके अब तक चार काव्य उपलब्ध हुए हैं। ये हैं—"अष्टमहिषी कल्याणमु", "परम योगी-विलासमु", "उषापरिणयमु" और "अन्नमाचार्य-चरित्रमु"। ये चारों काव्य-ग्रन्थ द्विपद छन्द में रचे गये हैं। ये पेदतिरुमलाचार्य और तिरुमलांबा के पुत्र थे। इनका काव्य-रचना-काल ई० सन् १५३१ से ५० के बीच माना जाता है। इनका "अष्टमहिषी-कल्याणमु" पाँच आश्वासों का काव्य ग्रन्थ है, जिसमें श्रीकृष्ण का रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ पटरानियों के साथ विवाह की कथाएँ वर्णित हैं। यह ग्रन्थ बालाजी (श्री वेंकटेश्वर) की पत्नी अलमेलु मंगादेवी (पद्मावती देवी) को समर्पित है। इनका दूसरा ग्रन्थ "परमयोगी-विलासमु" है, जो आठ आश्वासों का काव्य है। इसमें तमिलनाडु के सुविख्यात वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवक्ता यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य इत्यादि बारह आलवारों के चरित्र वर्णित हैं। यह ग्रन्थ श्री बालाजी और पद्मावती को समर्पित हुआ है। "उषापरिणयमु", हरिवंश पुराण के इतिवृत्त के आधार पर रचा गया है। इसमें बाणासुर की पुत्री उषा तथा श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के परिणय की कथा वर्णित है। चौथे काव्य में तेलुगु के विख्यात वाग्गेयकार अन्नमाचार्य की जीवनी प्रस्तुत की गयी है।

नादिंडूल गोपमंत्री (ई० सन् १४८५ से १५३३ तक)

ये तिम्मया और कृष्णांबा के पुत्र थे। इन्होंने "कृष्णार्जुन-संवाद" नामक

तीन आश्वासों का काव्य द्विपद छन्द में लिखा है और उसे कोंडवीडु के राघवेश्वर को समर्पित किया है। इसकी शैली अत्यन्त प्रांजल एवं मनोमुग्धकारिणी है। इसके वार्तालाप अत्यन्त सहज एवं सुन्दर हैं। इन्होंने "प्रबोध-चन्द्रोदय" की व्याख्या भी लिखी है। कृष्णार्जुन संवाद की कथा-वस्तु संक्षेप में यों है--

श्रीकृष्ण सूर्य भगवान् को अर्घ्य देने के निमित्त अपने हाथों में जल लिये खड़े ही हुए थे कि आकाश-मार्ग से जानेवाले "गय" नामक गन्धर्व ऊपर से थूक देते हैं, जो श्रीकृष्ण जी के हाथों पर आ गिरता है। इस पर क्रुद्ध हो श्रीकृष्ण शपथ लेते हैं कि मैं उस दुष्ट का वध करके ही छोड़ूँगा। कृष्ण की शपथ सुनकर गय भयभीत हो जाते हैं और देवमुनि नारद की सलाह से अर्जुन की शरण माँगते हैं। अर्जुन के अभयदान देने के पश्चात् गय का अपराध उन्हें मालूम होता है, फिर भी वे अपने वचन के पालन में दृढ़ निश्चय रहते हैं। इससे कृष्ण और अर्जुन में युद्ध ठन जाता है। इसी कथा-वस्तु को ग्रहण कर अनेक परवर्ती कवि और लेखकों ने "गयोपाख्यान" नाम से काव्य एवं नाटकों का सर्जन किया है।

कुम्मर मोल्ला

ये मोल्लांबा नाम से भी ख्यात हैं। इनका जन्म एक कुम्भकार-परिवार में हुआ था और ये केसन सेट्टी (केसना) की पुत्री थीं। नेल्लूर जिले में स्थित "गोपवरम्" इनका निवास-स्थान था। इनके पिता केसना भी एक अच्छे कवि थे। मोल्ला ने सरल भाषा और सुबोध शैली में रामायण की रचना की और उसे श्री रामचन्द्रजी को समर्पित किया। इनकी कविता ओज तथा प्रसाद गुण से पूर्ण है। शब्दालंकारों का सुन्दर प्रयोग इनकी विशेषता है। धारा-प्रवाह शैली, भावुकता और सरसता के लिए यह काव्य विशेष प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् मोल्ला को तेलुगु भाषा की प्रथम कवयित्री बताते हैं, तो कतिपय पण्डित ताल्लपाक अन्नमाचार्य की पत्नी तिरुमलक्का को, किन्तु निस्संदेह रूप से यह कह सकते हैं कि मोल्लांबा का स्थान तेलुगु की कवयित्रियों में सर्वोत्तम है। ये कृष्णदेव राय की समकालीन थीं।

कुमार धूर्जटी

ये धूर्जटी कवि के पौत्र तथा कालियामात्य के पुत्र थे। इनका असली नाम

वेंकटार्य था। इनका रचना-काल ई० सन् १५५० से १५८० के मध्य माना जाता है। इन्होंने "कृष्णराय-विजयमु" नामक चार आश्वासों का काव्य-ग्रन्थ लिखा है और उसे श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित किया है। इसी ग्रन्थ से कुमार धूर्जटी को यश प्राप्त हुआ। इसका रचना-काल ई० सन् १५५० माना जाता है। एक किसी ऐतिहासिक महापुरुष के चरित्र को इतिवृत्त बनाकर काव्य-रचना इसके पूर्व कम ही हुई थी। इस दिशा में "पलनाटि-वीर-चरित्र" पहले से काफी लोकप्रिय हो चुका था, किन्तु इस काव्य के नायक आन्ध्र के साथ पूरे देश में विख्यात होने के कारण यह ग्रन्थ भी बहुत विख्यात हुआ। इतिहास में भी इनका समय स्वर्णयुग माना जाता है, अतः इस काव्य का सर्वत्र व्यापक प्रभाव पड़ा।

कुमार धूर्जटी के अन्य ग्रन्थों में "सावित्री-चरित्र" और "इन्दुमती-विवाह" भी उल्लेखनीय हैं।

पोन्नगंटि तेलगन्ना

ये भावनार्य के पुत्र थे और इनका रचना-काल ई० सन् १५७४ से ८१ के बीच माना जाता है। इन्होंने "ययाति-चरित्र" नाम से एक अच्च-तेलुगु (ठेठ तेलुगु) प्रबन्ध-काव्य लिखा। उन्होंने यह काव्य गोलकोंडा के नवाब इब्राहीम (इकराम) कुतुबशाह के सामन्त अमीरखान को समर्पित किया। ठेठ तेलुगु में रचित यही प्रथम काव्य-ग्रन्थ है, अतः नयी परम्परा चलाने का श्रेय भी इस कवि को ही प्राप्त हुआ। इनके काव्य में कहीं भी तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल तद्भव और देशी (देशज) शब्दों का ही प्रयोग करके इन्होंने "महाभारत" और "भागवत" में वर्णित "ययाति" के इतिवृत्त को ग्रहण कर इसे एक सुन्दर, सरस एवं मनोहर काव्य का रूप दिया है। तेलुगु-वाङमय में इस नवीन प्रक्रिया को, पूर्ववर्ती प्रबन्ध-काव्यों में किये गये जटिल और दुरूह वर्णनों की प्रतिक्रिया के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

वेलंकि तातम् भट्ट

ये पन्द्रहवीं शती के अन्तिम चरण तथा सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में हुए थे। ये अन्बय्या और एरमा के पुत्र थे। इन्होंने "कवि-चिन्तामणि" नामक एक लक्षण-ग्रन्थ लिखा है, जो "काव्यानुशासन" नाम से भी विख्यात

है। ये तर्क और व्याकरण-शास्त्रों के पारंगत थे। अपनी विद्वत्ता के कारण ये इतने प्रसिद्ध हुए कि तत्कालीन अनेक राजाओं के दरबारों में इन्होंने सम्मान प्राप्त किया। कुछ पण्डितों के मतानुसार ये कृष्णदेव राय के समकालीन ठहरते हैं।

मल्ला रेड्डी (ई० सन् १५५० से १६१० तक)

ये बिक्कवोलु के अधिपति रामराजु के पुत्र थे। ये रेड्डी वंशी थे और इब्राहीम कुतुब शाह के समकालीन थे। इन्होंने "षट्-चक्रवर्ति-चरित्रमु" नामक एक ही ग्रन्थ लिखा। इसमें पुराण प्रसिद्ध मांधाता और पाँच चक्रवर्ती राजाओं के चरित्र वर्णित हैं। राजाओं के गुण-विशेषों के चित्रण में कवि ने अपनी कुशलता का अद्‌भुत परिचय दिया है। ये कवि ही नहीं, अपितु एक उत्तम शासक भी थे। मानव-प्रकृति का गहन अध्ययन करने के कारण ये शासकों के स्वभावों का सहज चित्रण करने में सफल हुए हैं।

कंदुकूरु रुद्रकवि

ये कंसालि रुद्रय्या नाम से भी विख्यात थ। सुनार-वंश में जन्म धारण करने के कारण कंसालि इनका वंशगत नाम पड़ा। ये नेल्लूर जिले के कंदुकूरु ग्राम के निवासी थे, अतः बाद को ये अपने ग्राम के नाम से कंदुकूरि रुद्रकवि या रुद्रय्या कहलाये। इनके द्वारा विरचित "कंदुकूरि-जनार्दनाष्टकमु", "सुग्रीव-विजय" तथा "निरंकुशोपाख्यान" नामक तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं। प्रथम कृति "जनार्दनाष्टकमु" भाव-गीतों का संग्रह है। "सुग्रीव-विजय" एक यक्ष-गान है। संगीत-प्रधान देशी नृत्य नाटक को ही तेलुगु में यक्ष-गान कहा जाता है तथा तमिल और कन्नड़ में ऐसे यक्ष-गानों की पर्याप्त रचना हुई है, गोकि उपलब्ध साहित्य में यही तेलुगु का प्रथम यक्ष-गान है। प्राचीन-काल में सर्व-साधारण जनता के मनोरंजनार्थ इन देशी रूपकों का प्रदर्शन किया जाता था। आनन्द और उत्साह-वर्द्धन के साथ अशिक्षितों में ज्ञानवर्द्धन के लिए भी उन्हें विशेष सफल प्रयोग के रूप में माना गया है। ऐसे यक्ष-गानों की रचना से रुद्रकवि पर्याप्त लोकप्रिय हुए।

उनकी दूसरी रचना "निरंकुशोपाख्यान" एक प्रबन्ध-काव्य है। यह काव्य भगवान् सोमेश्वर को समर्पित है। इसमें वर्णित कथा तथा तेनालि रामकृष्ण विरचित "पांडुरंग माहात्म्य" के निगमशर्मा की कथा में सादृश्य है। "निरंकुश" औद्धत्य, दम्भ और वासनाओं का प्रतिनिधि है। वह स्वयं शिवजी से वरदान माँगता है कि वे उसे रंभा के साथ संभोग का वर प्रदान करें। इसमें निरंकुश का विच्छृंखल चरित्र वर्णित है। कवि ने भी काव्य के नायक की निरंकुशता की आड़ में स्वेच्छाचारिता का प्रदर्शन किया है। इस काव्य द्वारा हमें कोई उपदेशात्मक सन्देश नहीं मिलता, अतः यह लोक-प्रिय नहीं हो पाया है। इस कवि को इब्राहीम कुतुबशाह ने जो मल्किभराम नाम से विख्यात गोलकोंड़ा के नवाब थे, "चिंतलपालेम" नामक गाँव इनाम में दिया था।

चिंतलपूडि येल्लनार्य

ये "राधामाधव कवि" नाम से भी प्रख्यात हैं। इन्होंने राधामाधवमु नाम से एक श्रृंगार-रस-प्रधान काव्य की रचना की है। इसमें राधा-माधव (राधा-कृष्ण) के श्रृंगार का वर्णन है। श्रृंगार पोषण और चित्रण में कवि ने यद्यपि अन्य प्रबन्ध-कवियों के मार्ग का अनुसरण किया है, किन्तु राधा को इन्होंने परकीया नायिका के रूप में नहीं, अपितु स्वकीया के रूप में अभिवर्णित किया है। इसके पूर्व प्रायः सभी भारतीय साहित्यों में राधा परकीया के रूप में ही अवतरित हुई हैं। इस काव्य पर मुग्ध हो राजा कृष्णदेव ने अपनी प्रसन्नता मात्र ही व्यक्त नहीं की, अपितु येल्लनार्य का समुचित सम्मान किया और "राधा-माधव कवि" नामक उपाधि से भी उन्हें विभूषित किया। इससे स्पष्ट है कि ये कृष्ण-देव राय के समकालीन थे।

सारगु तम्मय्या

ये नृसिंह मंत्री तथा अक्कमांबा के पुत्र थे। इनके जीवन-काल के सम्बन्ध में पण्डितों में मतभेद है, कोई इन्हें ई० सन् १५०० के करीब का मानते हैं, तो कोई इन्हें गोलकोंडा के नवाब मुहम्मदशाह (ई० सन् १५८१ से १६११) के काल में गोलकोंडा के ग्रामाधिकारी बताते हैं।

इन्होंने "वैजयन्ती-विलासमु" नाम से चार आश्वासों का एक श्रृंगार-रस प्रधान प्रबन्ध-काव्य लिखा और श्री रामचन्द्रजी को उसे समर्पित किया। बारह आलवारों में तोंडरडिप्पोडि आलवार एक थे, जिनका दूसरा नाम विप्रनारायण था। अत: "वैजयन्ती-विलासमु" काव्य "विप्रनारायण-चरित्र" नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें विप्रनारायण की जीवनी वर्णित है।

विप्रनारायण एक वैष्णव ब्रह्मचारी थे। भिक्षाटन द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हुए कावेरी तट पर स्थित श्रीरंग-क्षेत्र में रहा करते थे। वे अपना शेष समय रंगनाथ की उपासना और सेवा में व्यतीत करते थे। वे प्रतिनित्य उद्यान से पुष्प-चयन करते और माला बनाकर अपने आराध्य को समर्पित करते और जप तथा ध्यान करते परम आनन्द का अनुभव करते। एक दिन उद्यान में मधुरवाणी और देवदेवी नामक दो वेश्या-वनिताएँ आयीं और उन्होंने विप्रनारायण को देखकर उन्हें प्रणाम किया, पर कोई प्रत्युत्तर न पाने से वे दोनों बहनें अपने ऐसे तिरस्कार पर अधिक कुपित हुईं। मधुरवाणी ने यह चुनौती दी कि यदि देवदेवी इस भक्त की निष्ठा भंग कर उसको अपने घर लायगी, तो वह वेश्यावृत्ति त्याग देगी। देवदेवी ने योगिन का वेष धारणकर आखिर उस भक्त को धोखा दिया और उन्हें अपना दास बना लिया, पर जब विप्रनारायण दरिद्र निकले, तो उसने उन्हें अपने घर से निकाल दिया। अपने भक्त के पतन पर द्रवीभूत हो श्रीरंगनाथ ने उसका उद्धार किया और मुक्ति दी। यह कथा अत्यन्त मनोहर शैली में वर्णित है। तेलुगु-साहित्य में इस प्रकार की कविता मोह-काव्य कविता (अश्लील कविता) नाम से जानी और मानी जाती है और सारंगु तम्मय्या इस कविताके पितामह माने जाते हैं।

चरिगोंड धम्मना

मन्दमा और तिम्मनामात्य इनके माता-पिता थे। इन्होंने "चित्र-भारतमु" नाम से आठ आश्वासों का काव्य लिखा। महाभारत का संक्षिप्त रूप ही यह काव्य है। यह काव्य पेद्दयामात्य को समर्पित है। कवि ने काव्य की आत्मा के प्रदर्शन की अपेक्षा कला के प्रदर्शन में अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय दिया है। इस काव्य का रचना-काल ई० १५०३ से १५१२ के बीच माना जाता है।

अलंकार-प्रधान काव्य होने के कारण इसे कतिपय पण्डितों की ही प्रशंसा प्राप्त हो सकी ।

अद्दङ्कि गंगाधर कवि

ये वीरनामात्य के पुत्र थे और "मल्किभराम" नाम से विख्यात गोलकोंडा के नवाब इब्राहीम कुतुबशाह के दरबारी कवि थे। इन्होंने "तपती-संवरणो-पाख्यानमु" नामक काव्य लिखकर अपने आश्रयदाता को इसका कृतिपति बनाया। मल्किभराम ने ई० १५५० से ८१ तक राज्य किया था। कवि का रचना-काल भी यही माना जाता है। यह काव्य "तपती-संवरण" भी कहलाता है, यह वसु-चरित्र की शैली पर रचा गया है। काव्य सरस, प्रौढ़ और मनोहर भावनाओं से पूर्ण है। मल्किभराम ने अपने दरबार में कई तेलुगु-कवियों को आश्रय दिया और तेलुगु-साहित्य के पोषण में सक्रिय सहयोग दिया। इनके अन्य दरबारी कवियों में पोन्नगंटि तेलगन्ना आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

यादवामात्य

ये जिला गुंटूर पेदचेरकूर गाँव के निवासी थे और बापनार्य के आत्मज थे। इन्होंने "चन्द्रहास-विलासमु", "विक्रमार्क-चरित्र" और "लक्षण-शिरोमणि" (यादवामात्य छन्द) नाम से तीन ग्रन्थ लिखे। ये ग्रन्थ अमुद्रित ही रह गये हैं। इन तीनों ग्रन्थों को कवि ने अपने आराध्य-देव भद्राचल में विराजमान श्री रामचन्द्रजी को समर्पित किया है। मधुर कविता के लिए ये अत्यन्त विख्यात हैं। "विक्रमार्क-चरित्र" इनका गद्य ग्रन्थ है।

मल्लन्ना

ये अम्मलांबा और पोतया के पुत्र थे। इन्होंने "एकादशी-माहात्म्य" नाम से "रुक्मांगद चरित्र" पाँच आश्वासों में प्रस्तुत किया है और द्राक्षाराम के भीमेश्वर को इसे समर्पित किया है। राजा रुक्मांगद ने मुनियों से एकादशी की महिमा सुनी तो व्रत का अनुष्ठान किया, जिसका इसमें चित्रण किया गया है। इसमें पुण्य और पाप तथा धर्म और अधर्म की सुन्दर व्याख्या की गयी है और धर्म और

पुण्य तथा अधर्म और पाप की परिभाषा और परिचय कराना ही इस काव्य की रचना का उद्देश्य प्रतीत होता है ।

हरिभट्ट

ये रामपंडित और तिम्मांबा के पुत्र थे । ये पुराणों के ज्ञाता और संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् थे । "वराह-पुराण", "मत्स्य-पुराण", "नरसिंह-पुराण" तथा "भागवत" के छठवें, ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धों पर इन्होंने ग्रन्थ-रचना की है ।

कूचिराजु एर्रना

ये कूचन मंत्री और मुत्तमांबा के पुत्र थे । इन्होंने 'कोक्कोक' नाम से रति-शास्त्र की रचना की और उसे मल्लयामात्य को समर्पित किया । "सकलनीति-कथा-निधान" इनका दूसरा ग्रन्थ है, जो बाला जी को समर्पित है । "सकल पुराण-सार" कविकृत तीसरा ग्रन्थ है । भैरवामात्य इसके कृतिपति हैं । एर्रना "नवघंट-सुरत्राण" नामक उपाधि से सुशोभित थे । ये अष्ट-भाषा-कविता-विशारद थे ।

शंकर कवि

ये गोदावरी जिले के निवासी तथा देचयामात्य के पुत्र थे । इन्होंने "हरिश्चन्द्रोपाख्यान" की रचना की है । इसके पद्य मणियों की भाँति अत्यन्त मूल्यवान् थे । सुन्दर लोकोक्तियों के साथ संवाद-शैली में यह काव्य रचा गया है । यत्र-तत्र कठिन समासों का प्रयोग होने पर भी भावों की उत्कृष्टता के कारण काव्य सरस बन पड़ा है ।

एलकूचि बाल सरस्वती

ये 'महामहोपाध्याय' नामक उपाधि से विभूषित थे और सत्रहवीं सदी के प्रथम चरण में वर्तमान थे । इन्होंने "रंग-कौमुदी" नामक नाटक, "चन्द्रिका-परिणय" नामक प्रबन्ध काव्य, "आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि" की व्याख्या, "भाषा-विवरण" नामक लक्षण ग्रन्थ, "मल्लभूपालीयमु" नाम से भर्तृहरि के सुभाषितों

का तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किया। इनकी कीर्ति का केतु इनका लिखा "राघव यादव-पांडवीयमु" नामक त्र्यर्थी काव्य है। इसमें एक साथ रामायण, भागवत और महाभारत की कथाएँ सन्निविष्ट हुई हैं। यह काव्य वाल सरस्वती की बौद्धिक प्रतिभा का परिचायक है। व्याकरण, लक्षण-ग्रन्थ और प्रबन्ध-काव्य प्रस्तुत कर ये दूसरे भट्टमूर्ति या रामराजभूषण कहलाये। चन्द्रिका-परिणय में काशी-नरेश की पुत्री चन्द्रिका तथा भीमसेन का विवाह वर्णित है।

लिंगमगुंट तिम्मन्ना

ये तिम्मांबा और लक्ष्मय्या के पुत्र तथा जिला नेल्लूर लिंगमगुंट ग्राम के निवासी थे। इन्होंने एक रीति-ग्रन्थ "सुलक्षण-सार" नाम से प्रस्तुत किया। अब तक के समस्त रीति-ग्रन्थों में यह सर्वश्रेष्ठ तथा प्रामाणिक माना जाता है। तेलुगु-भाषा के समस्त उत्तम लक्षणों का संग्रह और सार इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। ये तेनालि रामकृष्ण के समकालीन माने जाते हैं। इनका "सुलक्षण-सार" अपनी उत्तमता एवं प्रामाणिकता के कारण इतना लोकप्रिय हुआ है कि इसकी समता कर सकनेवाला दूसरा ग्रन्थ तेलुगु में नहीं है।

काकुनूरि अप्पकवि

इन्होंने "आन्ध्र-शब्द-चिंतामणि" नाम से एक लक्षण-ग्रन्थ लिखा। यह "अप्पकवीयमु" का तेलुगु अनुवाद है। यह "अप्पकवीयमु" नाम से भी प्रसिद्ध हुआ है। अप्पकवि महान् रीति-ग्रन्थकार के रूप में तेलुगु-साहित्य के कीर्तिकार कवि माने गये हैं। इसमें छन्द सम्बन्धी बातें अधिक और व्याकरण-सम्बन्धी विवरण कम हैं। मूल अप्पकवीयमु पाँच आश्वासों का ग्रन्थ है, किन्तु काकुनूरि अप्पकवि ने उसे पद्य काव्य के रूप में आठ आश्वासों में प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा की थी, पर दुर्भाग्यवश उसे पूरा करने के पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। इसका रचना-काल ई० सन् १६५६ से '६० के बीच माना जाता है।

तेनालि अन्नय्या

ये तेनालि के निवासी रामपण्डित के पुत्र थे। इन्होंने "सुदक्षिणा-परिणय" नामक एक प्रौढ़ काव्य का प्रणयन किया। पुलिजाल सोमनामात्य इस ग्रन्थ के

कृतिपति हैं। तेनालि के निवासी होने के कारण इनकी कविता में तेनालि रामकृष्ण का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनकी कविता सरस और श्रव्य है, जिसमें यत्र-तत्र दीर्घ समासों के प्रयोग कवि के पाण्डित्य का परिचय कराते हैं। विशुद्ध मधुर तेलुगु शब्दों का प्रयोग तथा अन्वय सुलभता के कारण इनकी कविता पवन चालित शाखाओं के पुष्प-रज के पतन की भाँति काव्य-तरु के सुन्दर वृत्तों पर सुशोभित है।

इनके कविता-सौष्ठव के दर्शन अनेक उदाहरणों में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यहाँ सरोवर का एक सरस वर्णन उनकी संस्कृतगर्भित समासों की शैली में उद्धृत है—

> "कमलामंद मरंद बिंदु कणिका कल्लोलडोलाविलो
> लमरालीग दंचलत्पचन बाल क्रीडन प्रोल्लसत्-
> कुमुदामोदि पराग वासित दिशा कुंभींद्र गंडस्थली
> समुदायं ...."

अनंत भूपाल

ये मल्किभराम के समकालीन थे और वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने "काकुत्स्थ-विजय" नाम से पाँच आश्वासों का काव्य लिखा। यह निर्दुष्ट शैली में लिखा गया सरस काव्य-ग्रन्थ है। ओज और प्रसाद गुण इस काव्य की अपनी विशेषताएँ हैं।

भास्कराचार्य

इन्होंने "वैश्यपुराण" का प्रणयन किया। यह "कन्यकापुराण" नाम से भी प्रसिद्ध हुआ है। इसमें वैश्यों की उत्पत्ति, वासवी-कन्या का चरित्र वर्णित है। यही वासवी "कन्यका-परमेश्वरी" नाम से ख्यात है और वैश्यों की आराध्या कन्या है। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ लोक-प्रिय नहीं हुआ, किन्तु सम्प्रदाय-सम्बन्धी होने के कारण वैश्य-जाति के लिए परम पूज्य बना हुआ है।

चित्रकवि पेद्दना

ये एक उत्तम कवि और रीति-शास्त्रकार थे। इन्होंने "लक्षण-सार-संग्रह"

नाम से एक रीति-ग्रन्थ लिखा। इनका परिवार कविवंश कहलाता है। इनके पुत्र और पौत्र भी उत्तम कवि थे। इस परिवार ने तेलुगु साहित्य की अनुपम सेवा की है। पेद्दना के पुत्र **अनंतकवि** ने "इन्दुमती-परिणय" नामक प्रबन्ध काव्य लिखा और साथ ही "हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान की व्याख्या" भी प्रस्तुत की। ये दोनों ग्रन्थ रचना-सौष्ठव की दृष्टि से प्रौढ़ और उत्तम बन पड़े हैं। पेद्दना के पौत्र तथा अनन्त कवि के पुत्र **रमणकवि** ने "सांबविलास" नामक प्रबन्ध-काव्य और "विद्वत्कविकर्ण रसायन" और "सकल वर्णनापूर्ण रामायण" भी प्रस्तुत किया। द्वितीय ग्रन्थ में लक्षणा (दुर्योधन की पुत्री) का परिणय और रामकथा वर्णित है। यह पुराण-शैली में लिखा गया है। रमणकवि के प्रति यह पाश्चात्य सिद्धान्त अक्षरशः सार्थक हुआ है कि "सदा अपने पोतों में ही बड़ों की कामनाओं की पूर्ति होती है, पुत्रों में कभी नहीं।"

इनके अतिरिक्त असंख्य प्रसिद्ध कवियों ने इस युग के साहित्य-यज्ञ में अपना सक्रिय योगदान दिया है। इन कवियों का भी तेलुगु-साहित्य में अपना स्थान है।

तिरुवेंगलनाथ (ई० सन् १५०० से १५६० तक)

इन्होंने "चोक्कनाथ-चरित्र" लिखा। यह संस्कृत के हालास्य माहात्म्य का तेलुगु रूपांतर है। चोक्कनाथ नामक देवता की लीलाएँ इसमें वर्णित हैं। ये पच्चकप्पूरपु तिरुवेंगल नाथ भी कहलाते हैं।

बैचराजु वेंकटनाथ

ये ई० सन् १५५० में वर्तमान थे। इन्होंने "पंचतंत्र" का तेलुगु अनुवाद किया। इनके पूर्व दूबगुंट नारायण कवि ने भी इसका अनुवाद किया था, किन्तु समीक्षकों का मत है कि यह अनुवाद पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सरस एवं पुष्ट बन सका है।

तरिगोप्पुल मल्लना

ये तिरुमल राय के पुत्र तथा वेंकट राय के दरबारी कवि थे। ये एक ही साथ कवि एवं आचार्य भी थे। इन्होंने "चन्द्रभानु-चरित्र" नाम से एक प्रबन्ध-काव्य

लिखा है। अलंकार-प्रधान तथा सुदीर्घ समासों से युक्त यह काव्य "वसु-चरित्र" के अनुकरण पर रचा गया है।

वेलगपूडि वेंगनार्य

ये ई० सन् १५३० के करीब के माने जाते हैं। इन्होंने संस्कृत में लीलाशुक द्वारा विरचित "श्रीकृष्ण-कर्णामृत" का तेलुगु में अनुवाद किया। इसमें कृष्ण की बाल-लीलाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है। इनकी कविता कर्ण-मधुर, परम शुद्ध और सरस है। शब्दालंकारों के साथ रस का समन्वय कर पाठकों में भावोद्रेक पैदा करने में कवि सफल हुए हैं। विद्वानों का विचार है कि पोतना की भक्ति का आवेश इस काव्य में पूर्ण रूप में उतारने में वेंगनार्य सफल हुए हैं। कविता-रचना में पोतना का अनुकरण किया गया है।

इस संदर्भ में उस युग के कतिपय और ख्याति प्राप्त कवियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनमें प्रमुखतः **अंदुगुल वेंकय्या** ने "रामराजीयमु" की रचना की और उसे तिरुमल राय के पोते कोदंडरामराजु को समर्पित किया। **कोट शिवरामय्या** ने "सानंदोपाख्यान" प्रस्तुत किया। **दोनूरु कोनेरुनाथ** कवि ने सरस और मनोहर शैली में "बाल-भागवत" की रचना की। **ताल्लपाक तिरु-वेंगलनाथ** ने "परमयोगी-विलास" नाम से आठ आश्वासों का एक वैष्णव-ग्रन्थ लिखा। इनके समकालीन **तिम्मराज** ने इसी काव्य को वृत्तों में प्रस्तुत किया। **रायसमु वेंकटपति** कृत "लक्ष्मी-विलास" पाँच आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है। **राजलिंग** कविकृत "कूर्मपुराण" भी सरस कविता के लिए विख्यात है। **दामेर वेंकटपति** ने "बहुलाश्व-चरित्र" बड़ी सरस शैली में प्रस्तुत किया और **चेन्नम राजु** ने "चारुचन्द्रोदय"। **कंचिवीरशरभ** कवि ने पूर्ववर्ती गौरनाकृत "हरिश्चन्द्रोपाख्यान" के आधार पर अपना "हरिश्चन्द्रोपाख्यान" लिखा। **सिंहाद्रि वेंकटाचार्य** ने "लक्षणा-विवाह" तथा "चमत्कार-मंजरी" नाम से दो ग्रन्थ रचे। इनकी कविता में प्रबन्ध-काव्य की प्रौढ़ता पायी जाती है। **रामराजु रंगप्पराजु** ई० सन् १५५० में विद्यमान थे। इनकी कविता निर्बाध धारा-प्रवाह के लिए विख्यात है। इन्होंने "सांबोपाख्यान" लिखा और उसे श्रीरंगनाथ के चरणों में समर्पित किया। **लिंगमगुंट रामकवि** रामकृष्ण के समसामयिक थे।

इनकी कृति "चतुर्वाटिका माहात्म्य" है। **पसरमु चिन नारायण नायक** "कुवल-याश्व चरित्र" के कृतिकर्ता हैं। **रेंटूरि रंगराजु** ने "भानुमती-परिणय" नामक काव्य लिखा। इसके कृतिपति वेंकटगिरि के राजा रायभूपाल हैं। **मुद्दराजु रामन्ना** ने "कवि-संजीवनी" नामक लक्षण-ग्रन्थ लिखा। **रायसम् गणपय्या** ने "सौगंधिका-हरणमु" और **चन्द्रमौली** ने "हरिश्चन्द्र कथा" प्रस्तुत की।

इस युग की अन्य कृतियों में मद्दिकायल मल्लयाकृत "रेवती-परिणयमु", घटसासि मल्लम भट्टु द्वारा विरचित "जलपालि-माहात्म्य", फणिधवु मादव कविकृत "प्रद्युम्न-विजय", नेल्लूर मुत्तराजुकृत "पद्मावती-कल्याण", पोतराजु भैरव कवि का लिखा "श्रीरंग-माहात्म्य", कंचिराजु सूरय्या रचित "कन्नप्प-चरित्र", अंगर नृसिंह कवि का लिखा "राजराजाभिषेक", पोलूरि गोविन्द कवि द्वारा अनूदित "भरत-शास्त्र" भी उल्लेखनीय हैं।

नूतन कवि सूरन्ना ने "सकल-जनाभिराम" का नामांतर कर "घनाभिराम" की रचना की। इसकी कथा-सामग्री कुबेर और मन्मथ से सम्बद्ध है। कुबेर और मन्मथ (कामदेव) में इस बात की होड़ लगी कि रूप और सौन्दर्य में कौन श्रेष्ठ है? आखिर दोनों इस निश्चय पर पहुँचे कि दोनों समान हैं। इसकी शैली मनोहर और वर्णन कुतूहलवर्द्धक है।

इसके पश्चात् तेलुगु-वाङमय का क्षेत्र तंजाऊर, मदुरा और पुदुक्कोटै के दरबारों तक फैल गया। वहाँ के राजाओं ने तेलुगु-साहित्य के विकास में जो योगदान दिया, उसका अपना अलग महत्त्व है। तेलुगु-साहित्य के कतिपय इतिहासकारों ने इस समय के साहित्य को "दक्षिणांध्र-वाङमय-युग" नाम से एक अलग युग ही मान लिया है, किन्तु हमने उस युग को भी "रायल युग' और अर्वाचीन या संक्रान्ति-युग के अन्तर्गत रखा है, क्योंकि उस समय दक्षिण देश में ही नहीं, अपितु आन्ध्र-प्रदेश में भी साहित्य-रचना होती रही, अतः उसे "दक्षिणांध्र-वाङमय-युग" नाम से सम्बोधित करना उचित नहीं प्रतीत होता। 'रायल-युग' की साहित्यिक-प्रक्रियाओं का प्रभाव सन् १७०० तक रहा, इसलिए 'रायल-युग' को हमने ई० सन् १५०० से १७०० तक माना है, यद्यपि अन्य इतिहासकारों ने इस युग को केवल सन् १६५० तक ही माना है। हाँ, दक्षिणांध्र-वाङमय के मुख्य अंश को हम इस युग की एक शाखा के रूप में मानते हुए उसका

संक्षिप्त विवरण यहाँ अलग से दे रहे हैं। शेष अंश की चर्चा आगामी युग के साहित्य में की जायगी।

दक्षिणांध्र-वाङ्मय

दक्षिणांध्र-वांङमय के विकास के मुख्य केन्द्र तंजाऊर, मदुरा, मैसूर तथा थे। ये चारों राज्य पहले विजयनगर साम्राज्य के अधीन थे, किन्तु ई० सन् १५५० में तंजाऊर और मदुरा स्वतन्त्र हुए और ई० १५६५ में तालिकोट के पतन के बाद मैसूर और पुदुक्कोटै भी स्वतन्त्र हो गये। मैसूर पर रायादि-वंशियों ने और पुदुक्कोटै पर तोंडमान-वंशियों ने राज्य किया। मदुरा और तंजाऊर पर नायक-वंशियों ने राज्य किया था। तंजाऊर पर नायक-वंशियों के पश्चात् ई० सन् १६७४ से महाराष्ट्र-वंशियों का आधिपत्य हो गया। यहाँ हमने ऐसे ही राजाओं का परिचय कराया है, जिन्होंने स्वयं या तो काव्य रचना की, या कवियों को आश्रय दिया। उनमें रघुनाथ नायक प्रथम आते हैं।

रघुनाथ नायक

ये रघुनाथ राय नाम से भी विख्यात हैं। इनका राज्य-काल ई० १६०० से १६३१ तक माना गया है। इनके दरबार में अनेक कवि, कवयित्रियाँ, संगीतज्ञ और नृत्याचार्य विद्यमान थे। इनका सभा-भवन "इंदिरा-मंदिर" नाम से विख्यात था। इस सभा के अन्य नाम 'लक्ष्मी-विजय' अथवा "विजय-विलास" भी थे। यह भी कृष्णदेव राय के "भुवन-विजय" की भाँति सदा साहित्यिक गोष्ठियों, काव्य-पाठों, संगीत और नृत्य की मधुर ध्वनियों से प्रतिध्वनित होता रहता था।

रघुनाथ नायक संगीत-शास्त्र के पारंगत थे। उनका रचित "संगीत-सुधा" नामक शास्त्र-ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करता है। इन्होंने "जयंतसेन" आदि रागों तथा "रामानंद" आदि तालों को जन्म दिया। इनकी सभा में नित्य "पदचाली", "पेरणी", "जक्किणी", "दुरुपद", "केलिक" इत्यादि नृत्य हुआ करते थे। गीत-नृत्य, जंत्रवाद्य-सम्मेलन और काव्य-गान वहाँ की अन्य विशेषताएँ थीं।

रघुनाथ नायक तेलुगु और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे। "पारि-

जातापहरण", आशुरूप में रचित इनका प्रबन्ध-काव्य है। यज्ञनारायण दीक्षित तथा राजचूडामणि दीक्षित ने लिखा है कि इस रचना पर मुग्ध हो रघुनाथ नायक के पिता अच्युतप्प नायक ने उनका कनकाभिषेक किया था। "गजेन्द्र-मोक्ष", "रुक्मिणी-विलास" और "जानकी-परिणय" रघुनाथ नायककृत यक्ष-गान हैं। "साहित्य-सुधा" और "रघुनाथकाभ्युदय" में इनका उल्लेख हुआ है। परन्तु, आज ये तीनों उपलब्ध नहीं हैं। इनके अतिरिक्त "अच्युताभ्युदय", "नलचरित्र", "रघुनाथ रामायण", "सावित्री-चरित्र" (शृंगार-सावित्री), "वाल्मीकि-चरित्र" इनकी अन्य कृतियाँ मानी जाती हैं, किन्तु आज इनकी कृतियों में केवल "रघुनाथ-रामायण", "शृंगार-सावित्री", "वाल्मीकि-चरित्र" और "नल-चरित्र" ही उपलब्ध हैं।

"रघुनाथ-रामायण" चंपू काव्य है। इसमें चार आश्वास तथा ४६७ गद्य-पद्य हैं। "नल-चरित्र" आठ आश्वासों का द्विपद छन्द में रचित प्रबन्ध-काव्य है। यह श्रीरामचन्द्र को समर्पित है। महाभारत के वन-पर्व की कथा का शृंगार-नैषध की कथा के साथ समन्वय कर रसपूर्ण शैली में इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। गोविन्द दीक्षित ने अपने ग्रन्थ "साहित्य-सुधा" में रघुनाथ नायक की कृतियों का उल्लेख किया है, यथा—

> **श्री पारिजातापहरण प्रबन्ध चित्रं च वाल्मीकि चरित्र काव्यम्**
> **तथाच्युतेंद्राभ्युदयं गजेन्द्रमोक्षं चरित्रं च नलस्य चित्रम् ।।**
> **निर्माय वाग्भिर्रिपुणार्थ भाग्भिः ।।**

द्विपद काव्यों में इनका अनुपम स्थान है। प्रथमाश्वास में नल की अश्व-कला-निपुणता, चतुर्थाश्वास में संगीत-शास्त्र का विवरण, षष्ठाश्वास में नल और दमयन्ती की कष्ट-सहिष्णुता के वर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं।

"वाल्मीकि-चरित्र" तीन आश्वासों का प्रबन्ध-काव्य है। इस काव्य का मूल संस्कृत का धर्म-खण्ड है, इसके आधार पर ही रघुनाथ नायक ने अपने काव्य की रचना की है। "अच्युताभ्युदय" द्विपद छन्द में रचित एक सुन्दर काव्य है। यह तेलुगु-साहित्य की एक नूतन प्रक्रिया का द्योतक है। इसमें तद्युगीन राजा कृतिकर्ता के पिता की दिनचर्या वर्णित है।

रघुनाथ नायक ने पौराणिक इतिवृत्तों को ग्रहण करने पर भी अपने समय के समाज, प्रदेश और प्रकृति का मनोहर चित्र खींचा है, जो उस युग के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का परिचय देते हैं। "वाल्मीकि-चरित्र" में तंजाऊर का वर्णन तथा वहाँ के मन्दिरों, गोपुरों, पुष्पोद्यानों, नारिकेलवनों, शालि-धान्यों और गन्ने के खेतों आदि का वर्णन वहाँ के सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। कवि ने कविता रचना का उद्देश्य इस प्रकार बताया है—

"चेप्पवले गप्पुरंबुलु
गुप्पलुगा बोसिनट्लु कुंकुमपैपै
गप्पिन क्रिय विरिपोट्लमु
विप्पिन गति धुम्मनन् गवित्वमु सभालन् ।।"

अर्थात् – कविता इस प्रकार की होनी चाहिए, जैसे पोटली में कुंकुम डालकर बन्द किया हुआ कर्पूर, जो पोटली खुलते ही ऊपर के कुंकुम के बिखरने के साथ सुगन्धि फैला देता है। कवि चाहता है कि इसी प्रकार कविता की भी गन्ध फैले।

रघुनाथ नायक के दरबार में तेलुगु के अनेक कवि और कवयित्रियाँ थीं। उनमें से कतिपय प्रमुख कवियों का ही परिचय दिया जा रहा है।

चेमकूर वेंकट कवि

ये लक्ष्मणामात्य के पुत्र थे और रघुनाथ नायक (ई० सन् १६१४ से '३३ तक) के दरबारी कवि थे। इन्होंने "विजय-विलासमु" और "सारंगधर-चरित्र" नाम से दो काव्य-ग्रन्थ लिखे। दोनों तीन-तीन आश्वासों में समाप्त हैं। इसके कृतिपति रघुनाथ नायक हैं।

रघुनाथ नायक ने राज्य-भार के ग्रहण करते ही पांड्य, तुंडीर, जाफ़ना आदि राज्यों पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त कर अपनी राजधानी लौटे। इस विजय के स्मृति-चिह्न के रूप में सन् १५१६ के करीब उन्होंने "विजय-विलास" नामक भवन का निर्माण कराया। "रघुनाथकाभ्युदय" तथा "विजय-विलास" काव्य में भी इसका उल्लेख हुआ है।

वेंकट कवि ने अपने काव्य का नामकरण "विजय-विलासमु" सम्भवतः इसलिए किया होगा कि इस काव्य में विजय (अर्जुन) के उलूपी, चित्रांगदा

तथा सुभद्रा के साथ विलास या विवाह का वर्णन है। रघुनाथ की विजय-प्राप्ति के पश्चात् ही कवि ने यह कृति उन्हें समर्पित की, अतः इन घटनाओं के स्मरण-स्वरूप ही सम्भवतः कवि ने इसका "विजय-विलास" नाम दिया होगा। 'विजय-विलास' में कुल ६७२ पद्य हैं। अलंकारों की दृष्टि से यह एक उज्वल काव्य-रत्न माना जाता है। कहावतों, लोकोक्तियों से पूर्ण यह श्लेष-काव्य तेलुगु के प्रौढ़ और श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। तेलुगु शब्दों का जिस स्वाभाविकता के साथ इस काव्य में प्रयोग हुआ है, वह उसके माधुर्य और सौन्दर्य को द्विगुणित बनाये हुए है।

वेंकट कवि का दूसरा काव्य "सारंगधर-चरित्र" है। यह भी तीन आश्वासों का काव्य है और इसमें ६८९ गद्य-पद्य हैं। आन्ध्र की लोकप्रिय रचनाओं में से यह भी एक है। इसकी कथा-वस्तु सन् १४८० में गौरना द्वारा विरचित "नवनाथ-चरित्र" में वर्णित "चौरंगी" नामक सिद्ध की कथा ही है। "चौरंगी" की कथा महाराष्ट्र में प्रचलित "नाथ-प्रथीय" सम्प्रदाय की है, जिसकी घटना मालव में घटित हुई थी। उसी इतिवृत्त को आन्ध्र के राजमहेन्द्रवरम् में आरोपित किया गया है। वहाँ के राजराज नरेन्द्र के पुत्र सारंगधर थे। सारंगधर की विमाता चित्रांगी उन पर आसक्त थीं। एक दिन विमाता के महल पर बैठे कपोत को पकड़ने के लिए सारंगधर वहाँ जाते हैं, तो विमाता उनके साथ बलात्कार करती हैं। इस पर सारंगधर उन्हें नीति-मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश देते हैं। अपने कामुक प्रेम का तिरस्कार होते देख चित्रांगी प्रतिकार भावना से प्रेरित हो राजा के सामने सारंगधर पर दोषारोपण करती हैं, परिणामस्वरूप सारंगधर के हाथ-पैर काट दिये जाते हैं। इस काव्य में श्रृंगार और करुण-रस का अद्भुत समन्वय हुआ है।

अशोक के पुत्र कुणाल की कथा और इसकी कथा में काफी समानता है। कर और चरण खण्डित सारंगधर की दशा का चित्रण करुणरस की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ है। उसके हृदय की व्यथा पाठकों के हृदयों को विदीर्ण करने वाली है। वधिकों से सारंगधर कहते हैं—"मैं इस व्यथा और अपमान से मृतप्राय होता जा रहा हूँ। शीघ्र ही मेरा वध कर डालो।" थोड़ी देर बाद ही वे हिंस्र-पशुओं और वन की दावाग्नि को सम्बोधित करते हुए विलाप कर

कहते हैं—'शीघ्र ही मेरा अन्त कर दो।' इसकी करुणा से द्रवीभूत हो पाठक हृदय थाम कर रह जाते हैं।

कृष्णाध्वरी

इन्होंने "नैषध-पारिजात" नामक द्व्यर्थी-काव्य लिखा है। इसके कृतिपति रघुनाथ नायक हैं। यों तो यह पाँच आश्वासों का काव्य है, किन्तु आज इसके चार ही आश्वास उपलब्ध हैं। नल की कथा महाभारत के वनपर्व से तथा तेलुगु और संस्कृत के नैषध-काव्य से एवं पारिजात की कथा भागवत से ग्रहण की गयी है। तेलुगु में द्व्यर्थी काव्य-शृंखला की यह भी एक कड़ी है।

रामभद्रांबा

ये रघुनाथ नायक की आस्थान कवयित्री थीं। इनके तेलुगु-ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु इनका "रघुनाथाभ्युदय" नामक एक संस्कृत-ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। यह ग्रन्थ न केवल साहित्यिक महत्त्व रखता है, अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त उपादेय है। इसमें १२ सर्ग और ६०० श्लोक हैं। इसमें चोल देश, तंजाऊर तथा रघुनाथ नायक का वर्णन हुआ है, जिस वर्णन में उनकी दिनचर्या, सभा-वर्णन, जीवनी, विजय, संगीत और साहित्य-सेवा का उल्लेख हुआ है। रघुनाथ की विद्या-गोष्ठी में रामभद्रांबा ने "किंते संतानपाद पायंते"—शीर्षक समस्या की पूर्ति संस्कृत में इस प्रकार की है—

> **कति कति नः क्षितिपतयः**
> **किं ते रघुनाथ ! नायकायन्ते,**
> **भुवि बहवः किल तरवः**
> **किं ते संतानपादपायन्ते ॥**

अर्थात् — रामभद्रांबा मधुरवाणी नामक एक और कवयित्री के साथ मिलकर दरबार में संस्कृत, प्राकृत और तेलुगु भाषा में समस्या-पूर्ति किया करती थीं। "रघुनाथाभ्युदय"—काव्य से यह बात भली-भाँति विदित होती है।

मधुरवाणी

ये संस्कृत, तेलुगु और प्राकृत-भाषाओं में असाधारण प्रतिभा रखती थीं

और तीनों भाषाओं में साधिकार कविता करती थीं। कवयित्रियों की ये शिरोमणि मानी जाती हैं। इन्होंने संस्कृत में "रामायण" की रचना की है, उसमें १४ सर्ग (सुन्दर काण्ड तक) आज भी उपलब्ध हैं। ये भी रघुनाथ नायक के दरबार की कवयित्री थीं। रघुनाथ नायक ने इनका स्वर्णाभिषेक भी किया था। इस सम्बन्ध में एक दन्तकथा प्रचलित है। दरबार में विदुषी नारियाँ रघुनाथ नायककृत "रामायण" का पठन कर रही थीं कि राजा ने उनसे प्रश्न किया कि आप में से कोई इस रामायण का संस्कृत में रूपान्तर कर सकती हैं। तत्काल उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। रात्रि में स्वप्न में दर्शन देकर श्रीरामचन्द्र जी ने राजा से स्वयं कहा था—

चतुर मधुरवाणीं सम्यगाकर्ण्य यस्याः
सरस मधुरवाणी नाम दत्तं त्वयैव।
सरसकृति विधायां साधुमेधा विशेष
स्वधिक पटुरमेषास्वंबुजाक्षेयधुसैषा॥

अर्थात्—तुम्हारे दरबार में "मधुरवाणी" उपाधिधारिणी मेधाविनी सरस कृति की रचना-निपुणता रखनेवाली कवयित्री है। उसके द्वारा यदि तुम्हारा ग्रन्थ अनुवाद कराया जाय तो सुन्दर बनेगा। इसके बाद ही राजा ने मधुरवाणी को उक्त अनुवाद पूर्ण करने का आदेश दिया था।

विजयराघव नायक

ये रघुनाथ नायक के पुत्र थे। इनका राज्य-काल ई० सन् १६३३ से '७३ तक है। ये कृतिकर्ता और कृतिभर्ता थे। इनका सभा भवन "विजय-राघव-विलास" नाम से विख्यात था। इनके पैर में "साहित्य-रायपेंडर" सुशोभित था, जिसमें वैडूर्य, पद्मराग, मुक्ता और नीलमणि जड़े हुए थे। विद्या-गोष्ठी के समय इनके समक्ष "शारदाध्वजा" शोभायमान रहती थी। इनके दरबार में तर्क, व्याकरण, मीमांसा, न्याय इत्यादि की चर्चाएँ होती थीं। नवीन साहित्यिक प्रक्रियाओं का प्रदर्शन होता था। लक्ष्य और लक्षण-ग्रन्थों के समन्वय का चातुर्य प्रदर्शित होता था तथा चमत्कारपूर्ण भाषा-गोष्ठियों के विनोद भी हुआ

करते थे। असंख्य राज-नर्तकियाँ शास्त्रोक्त रीतियों में द्यूत, पेरिणी, जक्किणी, शब्द-चूड़ामणि इत्यादि नाना प्रकार के नृत्यों का अभिनय कर अपनी नृत्य-कला की निपुणता का परिचय देती थीं। चेंगल्वर कालकविकृत "राजगोपाल-विलास" से पता चलता है कि विजयराघव नायक ने २३ नाटक, तीन द्विपद काव्य, दो-तीन चौपद और एकाध दण्डक भी रचे हैं, जिनकी नामावली भी दी गयी है, किन्तु आज तक उनके लिखे केवल (१) "रघुनाथकाभ्युदय" (द्विपद काव्य), (२) "रघुनाथाभ्युदय" (नाटक), (३) "कालिय-मर्दन", (४) "प्रह्लाद-चरित्र", (५) "पूतना-हरण" और "विप्रनारायण-चरित्र" ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए हैं।

"रघुनाथाभ्युदय" में विजयराघव नायक के पिता रघुनाथ नायक का जीवन वर्णित है। एक राजा की दिनचर्या को इतिवृत्त बनाकर इस काल तक काव्य नहीं रचे गये थे। इस श्रेणी में यह दूसरा ग्रन्थ है। इसमें राजा के प्रातःकाल के जागरण से लेकर शयन तक की दिनचर्या यथार्थ रूप में वर्णित है। इसके प्रथम और द्वितीय आश्वास पूर्ण तथा तृतीय आश्वास अपूर्ण है। इसमें कुल २०८१ पंक्तियाँ हैं। यह काव्य इतिहास के साथ साहित्यिक महत्त्व भी रखता है।

"कालीय-मर्दन", "प्रह्लाद-चरित्र" और "पूतना-हरण" पुस्तकों में भागवत से सम्बन्धित कथाएँ हैं। इसमें यत्र-तत्र कवि ने नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं तथा आंचलिक रीति-नीतियों का भी परिचय कराया है। ये तीनों यक्ष-गान हैं। ये एक प्रकार के देशी नृत्त-नाटक हैं। संगीत, साहित्य और अभिनय का सुन्दर सम्मिश्रण इनकी विशेषताएँ हैं। "रघुनाथाभ्युदय" इनका एक और यक्ष-गान है, किन्तु इसका इतिवृत्त वही है, जो इसी नाम के काव्य में वर्णित है। उसे केवल रूपक के ढाँचे में ढाल दिया गया है।

"विप्रनारायण-चरित्र" में बारह आल्वारों में से एक का चरित्र वर्णित है। इसके पूर्व इसी नाम से दो कवियों ने प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किये थे, किन्तु यह यक्ष-गान रूप में है। भाषा, शैली तथा अन्यान्य दृष्टियों से यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

चेंगल्वकालय कवि

ये विजयराघव नायक के दरबारी कवि थे। इन्होंने "राजगोपाल-विलास" नाम से पाँच आश्वासों का एक उत्तम प्रबन्ध-काव्य लिखा है। इसमें दक्षिण द्वारका नाम से विख्यात "मन्नारगुडि" में विराजमान राजगोपाल स्वामी का चरित्र है। इस काव्य में बताया गया है कि इस स्थल-माहात्म्य का मूल "अग्नि-कल्प" है। इसका इतिवृत्त शौनक मुनि द्वारा सूत मुनि को सुनाया गया वृत्तान्त है। एक बार गोप्रलय मुनि ने चंपक-वन में घोर तपस्या द्वारा हरि को प्रसन्न किया, तो उन्होंने दर्शन देकर उस मुनि की इच्छा के अनुसार अपनी अष्ट महीषियों तथा १६ हज़ार गोपिकाओं के साथ दक्षिण द्वारका में निवास करना स्वीकार कर लिया। इसमें कृष्ण की अष्टमहीषियों की अष्टविध शृंगार-नायिकाओं के रूप में जो अलंकारिक कल्पना की गयी, वह अपूर्व है। इसमें चंपकारण्य और हरिद्रा नदी-तीर्थ के माहात्म्य भी वर्णित हैं।

कोनेटि दीक्षित

इनकी कृति "विजयराघव-कल्याण" नामक एक नाटक है। ये राजगुरु शतक्रतु चतुर्वेदी श्रीनिवास ताताचार्य के शिष्य और रामानुजाचार्य के पुत्र थे। यक्ष-गान की शैली में रचित इस नाटक में विजय राघव और कांतिमती का विवाह-वर्णन है। राजा शिकार खेलने जाते हैं, वन में एक राजकुमारी उन्हें देख मोहित हो जाती है। उनके विरह में कृशगात्री हो वह अपनी सखियों से दूती-कार्य सम्पन्न कराती है। अन्त में राजगुरु की अनुमति से विवाह होता है। इसमें प्रसंगवश साहित्य-गोष्ठी भी होती है। पात्रोचित भाषा तथा सौभाग्यवती नारियों के वार्तालाप इसकी अन्य विशेषताएँ हैं।

कामरसु वेंकटपति

इनकी रचना "विजयराघव-चन्द्रिका-विहार" है। विजयराघव जब एक बार दुग्ध-धवल ज्योत्स्ना में टहलने जाते हैं, तो लीलावती नामक राजकुमारी उन्हें देखकर मोहित हो जाती है। रंभा उसकी सखी बनकर दूती कार्य करती हुई उसे सांत्वना देती है। अन्त में दोनों का विवाह सम्पन्न होता है।

पुरुषोत्तम दीक्षित

इनकी कृति "तंजापुरान्नदान-नाटक" है। यह अद्भुत और हास्य-रस प्रधान नाटक है। यह गद्य-प्रधान यक्षगान है। इसमें वर्णित हास्य शिष्टता की सीमा को पार कर गया है। इसमें स्थानीय अन्नशालाओं की दु:स्थिति का सजीव चित्र पाया जा सकता है।

मन्नारदास

इनका दूसरा नाम मन्नार देव है। ये विजयराघव नायक के पुत्र थे। सन् १६७३ में एक युद्ध में अपने पिता के साथ ये भी वीरगति को प्राप्त हुए, इसलिए तंजाऊर में आन्ध्र-नायक-वंश का राज्य सन् १६७३ में ही समाप्त हो गया।

ये अपने पिता के दरबारी कवि थे। "विजयराघवाभ्युदय" तथा "हेमाब्जनायिका-स्वयंवर" इनके ग्रन्थ हैं। आज इनका प्रथम ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। उसमें इन्होंने अपने पिता की दिनचर्या को काव्य का रूप दिया है। इनका दूसरा ग्रन्थ यक्षगान है। हेमाब्जनायिका स्वयं लक्ष्मी हैं और नायक राजगोपाल स्वामी विष्णु हैं। इसमें समुद्र-मंथन, अमृत की उत्पत्ति के पश्चात् इतिवृत्त में पौराणिकता का समावेश है, किन्तु उससे अधिक तत्कालीन समाज का इसमें चित्रण हुआ है।

पसुपुलेटि रंगराजम्मा

ये वेंकटाद्रि और मंगम्मा की पुत्री तथा विजयराघव नायक के दरबार की कवयित्री थीं। ये दरबार की शोभा-स्वरूपा थीं। इनकी कृतियाँ छ: मानी जाती हैं—(१) "मन्नारुदास-विलास", (२) "उषा-परिणय" (प्रबन्ध काव्य), (३) मन्नारुदास-विलास" (नाटक), (४) "रामायण-संग्रह", (५) "महाभारत-संग्रह" और (६) "भागवत-संग्रह" (काव्य)। इनके रचे कुछ फुटकल पद भी हैं।

"उषा-परिणय" नामक प्रबन्ध काव्य के अन्त में वर्णित गद्य से हमें यह विदित होता है कि ये भगवान् राजगोपाल की अनुकम्पा से कवियित्री हुईं और ये

आठ भाषाओं में कविता कहा करती थीं। "मन्नारुदास-विलास" नाटक में आठ भाषाओं में रचित कविताएँ भी उद्धृत हैं। वे आठ भाषाएँ क्रमश: यों हैं—संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका, अपभ्रंश और तेलुगु।

रंगराजम्मा का दूसरा नाम रंगराजी था। इनकी विद्वत्ता और काव्य-प्रतिभा पर मुग्ध हो, विजयराघव नायक ने इनका स्वर्णाभिषेक किया था। स्वर्णाभिषेक महाकवि अथवा लोकोत्तर प्रतिभावाले महा पण्डित का ही हुआ करता है। रंगराजी को यह अपूर्व आदर-सत्कार प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था।

"मन्नारुदास-विलास" नाटक के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि संस्कृत-व्याकरण में कवयित्री दक्ष थीं और उनका ज्योतिष-शास्त्र में भी अच्छा प्रवेश था। यह बात हमें नाटक में वर्णित "लग्न-निर्णय" से विदित होती है। नाटक में पात्रोचित भाषा का प्रयोग करके कवयित्री ने अपनी लोकज्ञता, सरसता और विनोदी प्रकृति का परिचय दिया है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह नाटक अपना अनुपम स्थान रखता है।

"उषा-परिणय" एक प्रबन्ध-काव्य है। इसके केवल तीन आश्वास पूर्ण रूप से तथा चौथे आश्वास का थोड़ा-सा अंश उपलब्ध हुआ है। यह श्रृंगार-रस प्रधान काव्य है और इसमें उषा और अनिरुद्ध का विवाह वर्णित है। इसका कथा-संविधान और कविता-चमत्कार प्रशंसनीय है।

क्षेत्रय्या (ई० सन् १६०० से १६६० तक)

ये जिला कृष्णा, मोव्व ग्राम के निवासी थे। इनका बचपन का नाम वरदय्या था, किन्तु समस्त क्षेत्रों (तीर्थों) के दर्शन करने के कारण ये क्षेत्रज्ञ या क्षेत्रय्या कहलाये। बाद में इनका यही नाम रूढ़ हो गया। बचपन में ही क्षेत्रय्या ने अपने गाँव में संगीत, नृत्य और अभिनय का अभ्यास किया। तेलुगु और संस्कृत का भी इन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। तदनन्तर विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते तंजाऊर पहुँचे। विजयराघव नायक ने क्षेत्रय्या का अच्छा स्वागत ही नहीं किया, अपितु अपने दरबार में भी उन्हें सम्माननीय स्थान दिया। वहाँ रहते हुए भी क्षेत्रय्या ने अनेक पद रचे।

क्षेत्रय्या ने कुल चार हजार से अधिक पद रचे हैं, किन्तु उनमें आज केवल ३५० पद प्राप्त हुए हैं। क्षेत्रय्या के पद, संगीत-नृत्य और अभिनय के अनुकूल हैं। इनके पद शृंगार-रस प्रधान हैं। ये माधुर्य-भक्ति के समर्थक थे। इनकी दृष्टि में एक परमात्मा ही पुरुष है, शेष सभी जीवात्माएँ स्त्रियाँ हैं और समस्त जीवात्माएँ परमात्मा को प्राप्त करने के लिए योग-मार्ग का अवलम्बन करने के लिए नायिका सदृश्य हैं। उन नायिकाओं अर्थात् जीवात्माओं के लिए नायक रूप परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। इन नायिकाओं और नायकों का ऐक्य होना ही राधाकृष्ण-तत्त्व है, वही मधुर भाव है और वही अलौकिक शृंगार की मधुर भक्ति है।

क्षेत्रय्या के आराध्य देव मुव्वगोपाल थे। इन्होंने कंचि वरदराज स्वामी पर भी कीर्तन या पद बनाये हैं। इनके पदों में सर्वश्रेष्ठ पद "मुव्वगोपाल" हैं। क्षेत्रय्या के पद उन दिनों मन्दिरों में देवदासियाँ अधिक गाया करती थीं। वे भगवान् को अपना पति मान भजन, नृत्य और गायन द्वारा उनकी आराधना किया करती थीं। आज प्रायः सभी विद्वान् क्षेत्रय्या के पदों के आधार पर उन्हें साहित्य, संगीत और अभिनय के आचार्य मानते हैं। ये अनेक राग और रागिनियों के जन्मदाता भी थे। कुछ लोग क्षेत्रय्या के पदों को अश्लील बताते हैं, यह सत्य भी है, किन्तु भक्ति के आवेश में नायिका का नायक के सामने अपनी विरह-व्यथा और मिलनेच्छा व्यक्त करना मधुरा भक्ति में आने के नाते क्षम्य है, क्योंकि अभिनय और संगीत के आराधन में जब लौकिक वातावरण की स्मृति दृष्टिपथ से ओझल हो जाती है, तो उस रस-समाधि में नायिका और नायक की मिलनेच्छा तीव्रतर हो जाती है और ऐसी मनःस्थिति में अन्तर की तीव्र अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो भी शब्द समर्थ जान पड़ें, उनका प्रयोग होता है। यह स्थिति क्षेत्रय्या की थी, जिन्होंने भावों की तीव्रता के प्रवाह में ही ऐसे शब्दों का संयोजन किया। यों उनका शृंगार-वर्णन उनके इष्ट को ही समर्पित है, मानवीय कलुष को नहीं।

क्षेत्रय्या का प्रत्येक पद अनेक रागों में गाया जा सकता है। इनके राग, ताल, पल्लवि और अनुपल्लवि से युक्त पद इन विषयों के विद्वानों की दृष्टि में संगीत,

नृत्य और अभिनय-कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जिसके कारण ये मर्मज्ञ विद्वान् उनको कर्णाटक संगीत के जन्म-दाताओं में से मानते हैं।

महाकवि क्षेत्रय्या की लोक-प्रियता का यह एक उज्वल उदाहरण है कि अगस्त, सन् १९६३ की ११ से १७वीं तारीख तक भारत भर में क्षेत्रय्या की त्रिशत जयन्ती मनायी गयी और उन्हें राष्ट्रीय सम्मान के साथ याद किया गया।

लिंगनमखि तिरुकाम कवि

इन्होंने "सत्यभामा-स्वांतनमु" और "धेनुका-माहात्म्य" नाम से दो ग्रन्थ लिखे। इनका रचनाकाल सन् १६७० है। इनका प्रथम काव्य-ग्रन्थ मदुरा के नायक राजा मुद्दलधरि को समर्पित है। इसका इतिवृत्त श्रीकृष्ण का युद्ध-भूमि में विरह-व्यथा से पीड़ित हो सत्यभामा को अपने पास बुलवाना है। इस काव्य से हमें यह संकेत मिलता है कि इस समय तक प्रबन्ध-काव्य पतनावस्था को प्राप्त होने लगा था।

"धेनुका-माहात्म्य" गद्य-ग्रन्थ है। युधिष्ठिर का गोदान करना और गोदान का फल इसका इतिवृत्त है। मुद्दलधरि के सौतेले भाई चोक्कनाथ इस ग्रन्थ के कृतिपति हैं।

गणपवरपु वेंकट कवि

ये लाक्षणिक और कवि भी थे। "प्रबन्ध-राजवेंकटेश्वर-विजय-विलास" इनकी प्रसिद्ध कृति है। इन्होंने "विद्यावती-दण्डक" लिखकर मुद्दलधरि को समर्पित किया है। दण्डक तेलुगु पद्य-साहित्य की एक काव्य-विधा है। इस दण्डक की कथावस्तु में विद्यावती नामक एक वेश्या मुद्दलधरि से प्रेम करती है और वे अपनी नाटय-शाला में उसका सम्मान करते हैं। "पेद्दलधरि-विजय" इनकी एक और कृति है।

इस युग की विशेषताएँ और तत्कालीन साहित्य की संक्षिप्त समीक्षा

१. तेलुगु-वाङमय का यह युग, स्वर्ण-युग माना जाता है।

२. इस युग में प्रबन्ध-काव्य का चरम विकास हुआ और अन्तिम समय में प्रबन्ध काव्य के ह्रास के लक्षण भी दिखाई देने लगे।

३. पाण्डित्य-प्रदर्शन की स्वस्थ स्पर्धा ने असंख्य उत्तम काव्य-ग्रन्थों को जन्म दिया। यही कारण है कि इस युग में एक से बढ़कर एक प्रौढ़ महाकाव्य रचे गये।

४. द्व्यर्थी-काव्य और त्र्यर्थी-काव्य इस युग की एक अपूर्व देन हैं। एक ही वस्तु या इतिवृत्त में दो अर्थ घटित करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इससे कवियों की प्रतिभा और तर्क-पटुता का परिचय मिलता है। "राघव-पांडवीयमु" नाम से द्व्यर्थी काव्य के प्रकाशित होने पर इसकी प्रतिस्पर्धा में "राघव-यादव-पांडवीयमु" नामक द्व्यर्थी काव्य का सर्जन हुआ। इसमें एक साथ तीन काव्य की कथाएँ चलती हैं।

५. शतक-साहित्य ने भी इस युग में चरम उन्नति की। धूर्जटी कविविरचित "कालहस्तीश्वर-शतक" इसका सुन्दर नमूना है।

६. ठेठ तेलुगु-भाषा में काव्य-रचना का सूत्रपात हुआ। पोन्नगंटि तेलगन्ना-कृत "ययाति-चरित्र" इसका उत्तम उदाहरण है।

७. मुसलमान नवाबों ने भी बड़ी उदारता के साथ तेलुगु-कवियों को अपने दरबारों में स्थान दिया और तेलुगु-साहित्य के सर्जन तथा विकास में हाथ बँटाया। "मल्किभराम" के नाम से इब्राहीम कुतुबशाह का नामांतर इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

८. इस युग में अधिकांश साहित्य का सर्जन राज-दरबारों में हुआ और विजयनगर, गोलकोंडा, चन्द्रगिरि, नंद्याल, तंजाऊर और मदुरा इसके केन्द्र थे।

९. धार्मिक-सहिष्णुता इस युग का एक उल्लेखनीय तथ्य है। मुसलमान भी इस समय हिन्दू-धर्म सम्बन्धी काव्यों की रचना में सहयोग देते थे और वैष्णव, शैव-साहित्य के सर्जन को प्रोत्साहन देते थे।

१०. इस युग में विशुद्ध कल्पना-प्रधान "कलापूर्णोदय" जैसे काव्यों का प्रणयन हुआ। इस काव्य में पूर्ण मौलिकता के दर्शन होते हैं।

११. इस काल में लक्षण-ग्रन्थ भी बड़ी संख्या में रचे गये।

१२. इस समय छोटे प्रबन्ध और मोहपरक काव्यों का भी बीजारोपण हुआ।

१३. शतक-साहित्य को काव्य-गौरव प्राप्त हुआ। शतक-कविता में ह्रस्व कविता का प्रादुर्भाव इसी काल में हुआ और वही अन्त में भाव-कविता के रूप में परिणत हुई।

१४. पाण्डित्य-प्रकर्ष इस युग की एक विशेषता रही है।

१५. "भुवन-विजय" और "इंदिरा-मन्दिर" जैसे दरबारों में तेलुगु-कविता का स्वर्णाभिषेक हुआ और इसके वसन्तोत्सव मनाये गये।

१६. गद्य-रचना भी इस काल में विविध रूपों में होने लगी थी।

१७. पद-साहित्य, संगीत और अभिनय के संयोग से काव्य में एक अपूर्व माधुर्य गुण का प्रादुर्भाव हुआ।

१८. यक्ष-गानों के प्रादुर्भाव से साहित्य सर्वसाधारण के मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का साधन बना। ज्ञान और मनोरंजन का सुन्दर माध्यम बनने पर भी यक्ष-गान का साहित्यिक महत्त्व कम नहीं हुआ।

१९. राजाओं की दिनचर्या को काव्य और नाटक के रूप में प्रस्तुत करके इस युग के कवियों ने एक नयी काव्य विधा का आविष्कार किया। इनका साहित्यिक महत्त्व तो है ही, साथ ही ये ऐतिहासिक दृष्टि से भी अमूल्य सिद्ध होते हैं।

२०. राजदरबारों में साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय, शिल्प, चित्र आदि समस्त ललित कलाओं को आश्रय मिला, जिसके कारण साहित्य में मृदुता, लालित्य और शृंगार का पक्ष प्रबल हुआ। उत्तम कवयित्रियाँ भी इस युग में अनेक हुई।

८

अर्वाचीन-युग या संक्रांति-युग

सामान्य परिचय (ई० सन् १७०१ से १८५० तक)

तेलुगु-वाङ्मय में प्रबन्ध-युग और नवीन-युग वास्तव में विविध साहित्यिक विधाओं के प्रादुर्भाव तथा शास्त्रीय लक्षण-ग्रन्थों की सृष्टि की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध माने जाते हैं। इन दोनों युगों के बीच का युग संक्रान्ति-युग कहलाता है। नवीन युग के पूर्व का युग होने तथा भाव, भाषा और अन्यान्य दृष्टियों से भी प्राचीनता की ओर उन्मुख होने के कारण यह युग, अर्वाचीन-युग भी कहा जा सकता है।

तंजाऊर के आन्ध्र-नायक-वंशी नरेशों के युग में अन्य काव्यों के साथ प्रबन्ध-काव्य की परम्परा भी अविच्छिन्न रूप से चलती रही, किन्तु उनके साम्राज्य के पतन के साथ यह परम्परा भी टूट गयी। नायक-वंश का अन्त सन् १६७३ में हुआ। ई० सन् १६७३ से १६८४ तक छत्रपति शिवाजी के सौतेले भाई एकोजी ने तंजाऊर राज्य पर शासन किया। इनके समय में तेलुगु-साहित्य को राजाश्रय नहीं प्राप्त हुआ। इनके पश्चात् शहाजी सन् १६८४ में गद्दी पर बैठे और ई० सन् १६८४ से १७१२ तक अविच्छिन्न रूप से राज्य किया।

शहाजी

शहाजी तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इनके दरबार में कई तेलुगु-कवि थे। इन्होंने निम्नलिखित २० यक्ष-गानों की रचना की——

(१) "किरात-विलास", (२) "कृष्ण-विलास", (३) "गंगा-पार्वती-संवाद", (४) "जल-क्रीड़ाएँ", (५) "त्यागराज-विनोद-चित्र-प्रबन्ध-नाटक", (६) "द्रौपदी-कल्याण", (७) "पंचरत्न-प्रबन्ध-नाटक", (८) "पार्वती-

परिणय", (९) "रति-कल्याण", (१०) "राम-पट्टाभिषेक", (११) "रुक्मिणी-सत्यभामा-संवाद", (१२) "वल्ली-कल्याण", (१३) "विघ्नेश्वर-कल्याण", (१४) "विष्णु-पल्लकि-सेवा-प्रबन्ध", (१५) "शंकर-पल्लकि-सेवा-प्रबन्ध", (१६) "शची-पुरंदर", (१७) "शांताकल्याणमु", (१८) "सीता-कल्याणमु", (१९) "सतीपतिदान-विलास" और (२०) "सतीदानशूर"।

यद्यपि इनमें १८ यक्ष-गान पौराणिक हैं, किन्तु इनमें पौराणिकता कम और तत्कालीन समाज की मनोवृत्तियों का चित्रण अधिक हुआ है। नाम पौराणिक हैं, किन्तु वर्णन बहुधा सामाजिक ही हैं। तंजाऊर का नगर-वर्णन, वहाँ के उद्यान, आचार-व्यवहार, विनोद और क्रीड़ाएँ संदर्भानुसार इनमें विशेष रूप से वर्णित हुई हैं। यहाँ ऐसी समस्त कृतियों का परिचय सम्भव नहीं है, एक-आध कृति का परिचय कराया जायगा। इनकी कृतियों में "त्यागराज-विनोद-चित्र-प्रबन्ध नाटक" यक्ष-गान-शैली में विरचित छ: अंकों वाला एक महान् नाटक है। यह तेलुगु-साहित्य की एक विलक्षण कृति मानी जाती है। "पंचरत्न-प्रबन्ध-नाटक" भी एक अपूर्व रचना है। इसमें कोई विशेष कथा और घटना नहीं वर्णित हुई है। जैसे ईश्वर के दरबार में पाँच प्रकार के रत्न नट आकर नाट्य करते हैं, वैसे ही नाटकों के संयोजन से युक्त होने के कारण यह नट-पंचक-नाटक "पंचरत्न-प्रबन्ध-नाटक" कहलाया।

शहाजीकृत "सतीदान-शूर" नामक यक्ष-गान का इतिवृत्त बड़ा ही मनोरंजक है। इस कृति का प्रधान रस शृंगार और आंगी रस दानवीर है। इसमें ईश्वर के माहात्म्य की अपेक्षा मानव की मानसिक वृत्तियों का चित्रण प्रधान रूप से किया गया है। कथा-वस्तु निम्न-प्रकार है—

मोरो भट्ट नामक एक ब्राह्मण एक चमारिन पर आसक्त हो अपने शिष्य तथा स्वयं चमारिन के समझाने पर भी अपने हठ को नहीं छोड़ता है। नीच जाति में उत्पन्न होने पर भी उस चमारिन का उत्तम प्रकृतिवाला पति अपनी नारी को ब्राह्मण को दान कर देता है। यह घटना उस ब्राह्मण पर ऐसा प्रभाव डालती है कि उसका हृदय-परिवर्तन होता है और अपने कृत्य पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए वह उस नारी को उसके पति के पास लौटा देता है, किन्तु दान दी हुई वस्तु को वापस लेने को वह चमार तैयार नहीं होता। इस पर

ब्राह्मण कहता है कि पराये की पत्नी को मैं ग्रहण नहीं कर सकता। इसकी प्रतिक्रिया में उस चमार के तीव्र विरोध पर वह नारी न घर की, न घाट की-सी हो जाती है। ऐसी स्थिति में स्वयं ईश्वर प्रत्यक्ष होकर इस समस्या का समाधान करता है।

पौराणिक यक्ष-गानों में "विष्णु-पल्लकि-सेवा-प्रबन्ध" तथा "शंकर-पल्लकि-सेवा-प्रबन्ध" उल्लेखनीय हैं। दोनों की कथा-वस्तु एक-सी है, केवल नाम भिन्न हैं। विचित्र कल्पनाओं से पूर्ण इन संगीत रूपकों का अद्यतन समय तक तंजाऊर प्रान्त के मन्दिरों में प्रदर्शन हुआ करता था। जब विष्णु के विरह में व्यथा के भार से पीड़ित हो, लक्ष्मी अपनी सखियों को उन्हें मनाने भेजती हैं और जब नारद, गरुड़ और हनुमान द्वारा विष्णु को मनाने का प्रयत्न भी असफल सिद्ध होता है, तो वे ही अन्त में अंजलि जोड़कर उनकी प्रार्थना करती हैं तथा विष्णु की स्वीकृति पाने पर कहारों को आज्ञा दे पालकी मँगाती हैं और उसमें उन्हें आसीन कराकर शयन-मन्दिर तक ले जाती हैं और वहाँ पुनः हरि और लक्ष्मी की आरती उतारकर उन्हें शयन-मन्दिर में भेजती हैं। इसकी रमणीय उद्भावनाएँ बड़ी प्रभावपूर्ण हैं।

शहाजी के दरबारी कवियों ने अनेक यक्ष-गान रचे हैं। इन यक्ष-गानों का इतिवृत्त प्रायः एक-सा है, अतः केवल कवि और उनकी कृतियों का नामोल्लेख मात्र करना ही यहाँ पर्याप्त होगा। निर्वति शेषाचल कविकृत "सरस्वती-कल्याण" और "शाहजी-विलास", बालकवि सुब्बन्न-विरचित "पंच-कन्या-परिणय" और "लीलावती-शाहा-राजीय" और दर्भा गिरिराजुकृत "शाहेन्द्र-चरित्र" इस श्रेणी में आते हैं।

मैसूर में तेलुगु-साहित्य की रचना

इसी समय में मैसूर में भी तेलुगु-साहित्य के सर्जन का शुभारम्भ हुआ। इस दिशा में कंपरायकृत "गंगागौरी-संवाद-विलास" प्रथम यक्ष-गान है। इसके पश्चात् मैसूर के शासक कंठीरव राजा ने "आन्ध्र-कोरवंजी", "प्राकृत-कोरवंजी", "तिगुल-कोरवंजी", "तमिल-कोरवंजी" तथा "पंचायुध-कट्ले" नाम से पाँच यक्ष-गान प्रस्तुत किये। इनका राज्य-काल ई० सन् १७०४ से '१३ तक था। ये सभी यक्ष-गान आत्मपरक तथा गेय और अभिनेय हैं। इस समय की

अन्य प्रसिद्ध कृतियों में "लक्ष्मीराज-विलास" और "वसंतोत्सव-विलास" भी उपलब्ध हैं ।

कलुवे वीरराजु

मैसूर के दलपति कलुवे वीरराजु ने (ई० सन् १७०४ से '२४) के बीच गद्य में "महाभारत" लिखा । यह पूरा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । उपलब्ध अंश के आधार पर विदित होता है कि यह व्यासकृत महाभारत का सार मात्र है । बताया जाता है कि तुपाकुल अनंतभूपाल ने इस कार्य में वीरराजु की मदद की थी ।

तुपाकुल अनन्तभूपाल

ये भी गद्य-लेखक थे । "विष्णु-पुराण" और "रामायण का सुन्दर काण्ड" इनकी कृतियाँ हैं । दीर्घ समासों से पूर्ण गद्य इसकी विशेषता है ।

कलुवे नंजराजु

ये वीरराजु के पुत्र थे और इनका रचना-काल भी ई० सन् १७०४ से '२४ तक माना जाता है । "हालास्या-महात्म्य" और "काशी-महिमा-दर्पण" इनकी कृतियाँ हैं । ये दोनों पद्य रचनाएँ हैं । प्रथम कृति साहित्यिक शैली में तथा दूसरी व्यावहारिक अथवा लोक-शैली में लिखी गयी है ।

विजयरंग चोक्कनाथ

ये मदुरा के शासक थे और इनका राज्य-काल ई० सन् १७०६ से '३२ माना जाता है । इनके समय में तेलुगु-गद्य का अच्छा विकास हुआ है । बल्कि यों कहना अधिक उत्तम होगा कि इनके समय में गद्य की ही प्रधानता रही ।

चोक्कनाथ स्वयं कवि और साहित्यिकों के आश्रयदाता भी थे । इनकी कृतियाँ "श्रीरंग-माहात्म्य" और "माघ-माहात्म्य" हैं । प्रथम कृति में श्रीरंग क्षेत्र का माहात्म्य प्रतिपादित है । विष्णु-भक्त नारद मुनि को देवदेव श्रीरंग का माहात्म्य बताते हैं, यही इसका इतिवृत्त है । दूसरी कृति में माघ महीने का माहात्म्य वर्णित है ।

सम्मुखमु वेंकटकृष्णप्प नायक

ये विजयरंग चोक्कनाथ के दलपति (दलवायि) थे। इन्होंने "जैमिनी-भारतमु" और "सारंगधर-चरित्र" नामक गद्य-ग्रन्थ तथा "अहल्या-संक्रन्दनमु" और "राधिकास्वांतनमु" नामक पद्य-ग्रन्थों की रचना की है। इनका जैमिनी भारत पिनवीरभद्रकृत चंपू काव्य के तथा "सारंगधर-चरित्र" चेमकूर वेंकटकवि-कृत चंपू-काव्य के गद्य-रूपान्तर माने जाते हैं। गद्य को निखारने में तथा उसे साहित्यिक सम्मान प्राप्त कराने में इन ग्रन्थों के लेखक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये कवि की अपेक्षा गद्य-लेखक के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। साहित्यिक (ग्रांथिक) शैली में रचित इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं तद्युगीन व्याकरण की त्रुटियाँ पायी जाती हैं।

"अहल्या-संक्रन्दन" तीन आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है। इसमें महर्षि गौतम की गृहिणी अहल्या के साथ इन्द्र का प्रेम-वृत्तान्त वर्णित है। कवि ने इसमें यहाँ तक कल्पना की है कि अहल्या गौतम के साथ अपने विवाह के पूर्व से ही इन्द्र पर अनुरक्त थी। इसमें सन्दर्भानुसार रति-क्रिया आदि का भी वर्णन हुआ है। इसमें श्रृंगार का नग्न चित्र सीमा को पार कर गया है। एक योगिनी इन्द्र की दूतिका बन कर अहल्या के पास आती है। वार्तालाप का चातुर्य प्रशंसनीय है। "राधिका-स्वांतनमु" एक आश्वास वाला ग्रन्थ है। इसके कर्तृत्व के सम्बन्ध में सन्देह है।

वेंकटाचलपति

ये विजयरंग चोक्कनाथ के दरबारी कवि थे। "मित्रविंदा-परिणय" और "कार्तिक-माहात्म्य" इनके दो प्रबन्ध काव्य हैं। श्रीकृष्ण का मित्रविंदा के साथ परिणय इसका इतिवृत्त है। इस काव्य से विदित होता है कि कवि ने "महाभारत" "भागवत" और "रामायण" गद्य में लिखे हैं, किन्तु आज वे सभी उपलब्ध नहीं हैं।

शेषमु वेंकटपति

ये इस युग के प्रसिद्ध कवि तथा कृष्णप्प नायक के समकालीन थे। कृष्णाचार्य

इनके पिता थे। इनका प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य "शशांक-विजय" नामांतर से "तारा-शशांक" है। यह पाँच आश्वासों का शृंगार प्रबन्ध-काव्य है। इसके कृतिपति वंगल सीनय्या थे, जो विजयरंग चोक्कनाथ के मन्त्री थे। इसकी कथा इस प्रकार वर्णित है—

चन्द्रमा देवगुरु बृहस्पति के यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आता है और गुरुपत्नी के साथ उसका अनुचित सम्बन्ध हो जाता है। कुछ काल तक उनका रहस्यमय जीवन चलता है, अन्त में चन्द्रमा तारा को भगा ले जाता है। यही इस काव्य का इतिवृत्त है। तारा को भगा ले जाने आदि की अनुचित घटनाओं के संयोग के कारण इसमें अतिशय अश्लीलता आ गयी है, इसलिए यह अनैतिक काव्यों के अन्तर्गत माना जाता है, किन्तु इसमें काव्य-कला और प्रबन्ध-पटुता के निर्वाह में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इसकी रीति की सभी प्रशंसा करते हैं और तत्कालीन युग के प्रबन्ध-काव्यों में इसका विशेष स्थान भी है।

तिरुमल कवि

ये विजयरंग चोक्कनाथ के आस्थान कवि थे। "चित्रकूट-माहात्म्य" नामक एक यक्ष-गान इनकी कृति है। पार्वती के चित्रकूट जाने पर उनके विरह की असहनीय पीड़ा से व्याकुल शिकार खेलने के बहाने शिवजी उस पहाड़ के पास पहुँचकर उनसे मिलते हैं। यही इसका इतिवृत्त है। **श्रीपति रामभद्र कवि** का "हालास्य-महात्म्य" एक उत्तम गद्य-ग्रन्थ है।

तुक्कोजी या तुलजाजी

ये तंजाऊर के शासक थे। शहाजी के पश्चात् प्रथम शरभोजी ने ई० सन् १७१२ से '२८ तक राज्य किया और उनके बाद तुक्कोजी ने ई० सन् १७२८ से '३६ तक राज्य किया। ये तेलुगु के अच्छे लेखक थे। "शिवकाम-सुन्दरी-परिणय" और "राजरंजन-विद्याविलास" इनके यक्ष-गान हैं। प्रथम कृति में शिवजी और पार्वती की परिणय-कथा वर्णित है। दूसरी कृति वेदान्त-विषयक यक्ष-गान है। "पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए मनकों में स्थित धागे की

भाँति परिवार से तटस्थ और अलग रहो" इसमें इसी तत्त्व का प्रतिपादन हुआ है।

कूचिमंचि तिम्मकवि (ई० सन् १६९० से १७५७ तक)

ये गंगना और अच्चमांबा के पुत्र थे और पूर्व गोदावरी जिले के कंदराडा गाँव के पटवारी थे। साहित्यिक सुघरता, प्रामाणिकता एवं रचे ग्रन्थों की संख्या की दृष्टि से तेलुगु-साहित्य को इनकी देन अनुपम है। ये पिठापुर अथवा पीठिकापुर के शासक माधव नृपति के आस्थान कवि थे। उनके आश्रय में रहकर तिम्मकवि तीस-पैंतीस वर्ष तक लगातार साहित्य की आराधना करते रहे। इनकी साहित्यिक सेवा और काव्य-कौशल पर मुग्ध हो माधवराय नृपति ने इन्हें "कवि-सार्वभौम" नामक उपाधि से विभूपित किया था।

तिम्मकवि की कृतियों में (१) "रुक्मिणी-परिणय", (२) "राजशेखर-विलास", (३) "सिंहाशैल-माहात्म्य", (४) "नीला-सुन्दरी-परिणय", (५) "अच्च-तेलुगु-रामायण", (६) "लक्षण-सार-संग्रह", (७) "रसिकजन-मनोभिराम", (८) "सर्पपुर-माहात्म्य" और (९) "शिव-लीला-विलास" अत्यन्त प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त "सारंगधर-चरित्र", "सागर-संग-माहात्म्य" और "कुक्कुटेश्वर-शतक", अन्य अनेक शतक और दण्डक उनकी अनेक अन्य कृतियाँ हैं।

तिम्मकवि की प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने अपने समय तक प्रचलित प्राय: सभी कविता-शैलियों में सुन्दर काव्य-रचना की। प्रबन्ध-युग की समस्त रीतियों का इन्होंने अनुसरण किया। माहात्म्य, शतक, ठेठ तेलुगु-काव्य, शृंगार-प्रबन्ध आदि अनेक प्रकार के काव्यों का इन्होंने प्रणयन किया। प्राचीन कवियों ने एक काव्य-शैली की रचना का प्रारम्भ कर सफलता प्राप्त की, ये सभी प्रकार के काव्य सफलतापूर्वक रच कर प्रबन्ध-युग के कवियों की विशिष्ट श्रेणी में गिने गये।

"रसिक-जन-मनोभिराम" वसुचरित्र को प्रतिबिम्बित करनेवाले दर्पण-सदृश है। "नीला-सुन्दरी-परिणय" और "कुक्कुटेश्वर-शतक" सुन्दर काव्य-रत्न हैं। इनकी कविता-धारा ललित, शान्त और मधुर है। ये एक उच्चकोटि

के आचार्य भी थे और इनका "लक्षण-सार-संग्रह" इसका सुन्दर उदाहरण है। पूर्ववर्ती "अप्पकवीयमु" की त्रुटियों का संशोधन कर इन्होंने अपने समय तक के अनेक नये कवियों के पद्य लक्षण–उदाहरणों के रूप में संग्रहीत किये हैं। ठेठ तेलुगु में काव्य-रचना करके ये "अभिनव-वागानुशासक" उपाधि प्राप्त कर चुके थे। इनकी कविता में श्लेष और शब्दालंकारों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अतिमानवीयता और प्राकृतिक शोभा का सुन्दर समन्वय इनकी कविता की एक और विशेषता है।

तिम्मकवि का "कुक्कुटेश्वर-शतक" भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को प्रतिपादित करने वाला ग्रन्थ है। समाज-सुधार और नैतिक उत्थान इस ग्रन्थ का मुख्य आशय है। कवि शिवभक्त थे, किन्तु उन्होंने अपने अन्तिम काव्य "शिव-लीला विलास" शिव और केशव में अभेद का प्रतिपादन करके अद्वैत का समर्थन किया है। इस युग के श्रेष्ठ कवियों में तिम्मकवि का स्थान अनुपम है।

कूचिमंचि जग्ग कवि (ई० सन् १७०० से १७६० तक)

ये तिम्मकवि के छोटे भाई थे। अनेक राजदरबारों में जाकर इन्होंने सम्मान-सत्कार प्राप्त किया। कवि ने स्वयं लिखा है कि धनार्जन और पाण्डित्य-प्रकाशन के निमित्त मैंने देशाटन किया है। ये एक अच्छे विद्वान् और कवि थे। (१) "जानकी-परिणय", (२) राधाकृष्ण-चरित्र" (द्विपद काव्य), (३) "सुभद्रा-परिणय", (४) "चन्द्ररेखा-विलाप", (५) सोमदेव-राजीय" और (६) "चाटु-प्रबन्ध" इनकी विशिष्ट कृतियाँ हैं।

ये निन्दापरक अथवा दूषण कविता करने में भी पटु थे। इनका "चन्द्ररेखा-विलाप" नामक काव्य इस कथन की पुष्टि करता है। इनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि एक बार ये विजयनगर (जिला विशाखपट्टणम्) के राजा पूसपाटि विजय-रामराजु के बहनोई नीलाद्रि राजु के आश्रय में गये। उन्होंने अपने को नायक तथा अपनी वेश्या को नायिका बनाकर प्रबन्ध-काव्य लिखने की कवि से अभ्यर्थना की। धन के लोभ में पड़कर कवि ने "चन्द्ररेखा-विलास" नाम से एक शृंगार-रस प्रधान काव्य लिखा। इस बीच याडिमल्ल वेंकटशास्त्री नामक एक संस्कृत कवि की बातों में आकर राजा ने जग्गकवि के काव्य को ग्रहण करने से असहमति

व्यक्त की, इस पर क्रुद्ध हो कवि ने उस काव्य को फाड़ डाला और "चन्द्ररेखा-विलाप" नाम से एक दूषण काव्य लिखा, जिसमें राजा की खूब निन्दा की गयी है।

जग्गकविकृत "सुभद्रा-परिणय" छः आश्वासों का काव्य है। यही उनका सर्वोत्कृष्ट काव्य माना जाता है। "सोमदेव-राजीय" तीन आश्वासों का काव्य है। इसमें काकतीय-वंशी प्रतापरुद्र का वंश-वर्णन है। यह काव्य उसी वंश के मंदपाटि नारायणराजु की प्रेरणा से जग्गकवि ने लिखा है। इनकी सभी कृतियाँ जगन्नाथस्वामी को समर्पित है।

एनुगु लक्ष्मण कवि (ई० सन् १७०० से १७८० तक)

ये तिम्मकवि और पेरमांबा के पुत्र तथा लक्ष्मण कवि के पौत्र थे। इनके बड़े भाई अनन्त कवि तथा छोटे भाई वीरभद्र थे। पण्डित-परिवार में जन्म धारण करने का इन्हें अभिमान भी था। इनके वंश के मूल पुरुष पैडिपाटि सिंगन्ना थे, परन्तु इस वंश के जलपालामात्य नामक व्यक्ति ने पेद्दापुरम् राज्य के अधिपति गजपतिराजा से पुरस्कार के रूप में हाथी प्राप्त किया था। तेलुगु में हाथी का अर्थ "एनुगु" होता है। तब से इनके वंश का नाम पैडिपाटि के बदले "एनुगु" नाम से रूढ़िबद्ध हो गया। इस बात का उल्लेख कवि ने अपनी "सुभाषित-रत्नावली" की अवतरणिका में भी किया है।

ये कूचिमंचि तिम्मकवि के समकालीन थे, इनकी कृतियाँ हैं—(१) "रामेश्वर-महात्म्य", (२) "गंगा-माहात्म्य", (३) "गीर्वाण-सूर्य-शतक", (४) "सुभाषित-रत्नावली", (५) "राम-विलास", (६) "विश्वामित्र-चरित्र", (७) "विश्वेश्वरोदाहरण", (८) "ध्रुव-चरित्र", (९) "तुल्या-माहात्म्य"। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक दण्डकों आदि की भी रचना की है।

उपर्युक्त ग्रन्थों में "सुभाषित-रत्नावली" और "राम-विलास" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "सुभाषित-रत्नावली" भर्तृहरिकृत संस्कृत-ग्रन्थ का सरस और सुन्दर रूपान्तर है। मूल के अनुरूप ही यह अत्यन्त उत्कृष्ट एवं मनोहर बन पड़ा है। इनके पितामह ने "द्रौपदी-परिणय" तथा इनके भ्राता अनन्ताचार्य ने "गौरी-परिणय" काव्यों की रचना की थी। इनके परिवार के कवियों को

पेद्दापुर के वत्सराय-वंशी राजाओं ने जो स्वयं इनके कृतिकर्ता थे, आश्रय दिया था। उनकी साहित्य-प्रियता का यह पद्य सुन्दर उदाहरण है--

"आयत वत्सराय सुकुलांबुधिपूर्ण निशापती जग-
द्गेय शुभाकृती। विदितकीर्तिसती कमनीय यौवन
प्रायनलाकृती सततवैभव निर्जित पूर्वदिक्पती
धीयुत वाक्पती जगपती नृपती सुकृती महोन्नती।।"

नेल्लूरि वीरराघव कवि

ये वेंकपति के पुत्र थे। इनका वंश नाम "देशराजु" था, किन्तु नेल्लूर में आ बसने के कारण ये नेल्लूरि वीरराघव कवि कहलाये। इन्होंने "यादव-राघव-पांडवीयमु" नामक चार आश्वासों वाले त्र्यर्थि-काव्य की रचना की थी। इसमें एक ही साथ श्रीकृष्ण, श्रीरामचन्द्र तथा पाण्डवों की कथाएँ वर्णित हैं। प्रत्येक पद्य में तीन अर्थ हैं, किन्तु वर्णनों के प्रसंगों में एक ही अर्थवाले पद्य हैं। कवि ने अपने काव्य की भूमिका में लिखा है कि वे मंत्र-रहस्य-शास्त्र, योग-शास्त्र, नाटच-शास्त्र, अलंकार-शास्त्र, शब्द-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, स्मृति, पुराण, वास्तु, गणित, रत्न, गज--इत्यादि शास्त्रों के ज्ञाता हैं। अवधान, समस्यापूर्ति और आशु कविता में भी इन्होंने अपने को प्रवीण बताया है-- "शतलेखिनी पद्य संधान चातुरी घटिका शत ग्रन्थ करणपटिम, आशु प्रबन्ध बंधादि क्रिया रूढ़ि संकरोष्ठच निरोष्ठच····" नामक पद्य में इन्होंने अपनी ऐसी आत्मस्तुति भी की है। ये इस सन्दर्भ में आगे लिखते हैं कि सत्कवियों की कृपा से मैं दस अर्थों वाला काव्य भी शिरीष-सम मृदु-कविता रूप में कर सकता हूँ। इस काव्य में शिल्प की प्रौढ़ता है, किन्तु अर्थ-चमत्कार और रस-पुष्टि का अभाव है।

नंजराजु

ये मैसूर के राजा वीरभूपाल के पुत्र और दोड्ड महीपाल के पौत्र थे। ये 'हालास्य-महात्म्य" नाम से ७२ अध्यायों वाले गद्य-संग्रह के प्रणेता हैं। इस ग्रन्थ में दक्षिण मदुरापुरी का महात्म्य वर्णित है। यह एक शैव-ग्रन्थ है और

इसकी कथा-वस्तु स्कन्ध-पुराण से गृहीत है। प्रौढ़ शैली में रचित यह ग्रन्थ उस उस समय की गद्य-शैली का सुन्दर परिचय देता है।

कोटि वेंकनार्य

इन्होंने "आन्ध्र-भाषार्णवमु" नामक निघंटु (कोष) का पद्य काव्य के रूप में रूपान्तर किया। श्री रघुनाथराजु की कृपा से इन्होंने यह ग्रन्थ लिखा और इसे उन्हीं को समर्पित किया। इनका रचना-काल ई० सन् १७३४ से १७४७ के बीच माना जाता है।

आडिदमु सूर कवि (ई० सन् १७२० से '८५ तक)

ये बाल भास्कर के पुत्र थे। अपने "कविजन-रंजन" नामक ग्रन्थ में कवि ने अपने को "शुद्धांध्ररामायण घटनवैदुषी धुरंधराडिदमु बाल भास्कर तनूभव" बताया है, किन्तु आज यह रामायण उपलब्ध नहीं है। इनकी कृतियाँ—(१) ("चन्द्रमती-परिणय" का नामांतर रूप) "कविजनरंजनमु", (२) "राम-लिंगेश्वर-शतक", (३) "कवि-संशय-विच्छेदमु", (४) आन्ध्र-चन्द्रालोकमु" और (५) "आन्ध्र-नाम-शेषमु" हैं। इन्होंने अपने समस्त ग्रन्थों को रामचन्द्र-पुर में विराजमान रामलिंगेश्वर को समर्पित किया है। "कविजन-रंजनमु" तीन आश्वासों का छोटा प्रबन्ध-काव्य है। आकार की दृष्टि से छोटा होने पर भी काव्य-लक्षण तथा अन्य गुणों के आधार पर यह एक उत्तम काव्य तथा "शिशु-वसुचरित्र" कहलाता है। यह कहा जा सकता है कि इसकी मूर्ति से भी इसकी कीर्ति बड़ी है।

"कवि-संशय-विच्छेद" तीन आश्वासों वाला लक्षण-ग्रन्थ है। यह छन्द-शास्त्र-ग्रन्थ है। "आन्ध्र-नामशेष" एक छोटा-सा निघंटु है। यह पैडिपाटि लक्ष्मण कविकृत "आन्ध्र-नाम-संग्रह" नामक विख्यात तेलुगु-निघंटु के विशुद्ध तेलुगु शब्दों का पद्य में परिवर्तित रूप है। "रामलिंगेश्वर-शतक" में समाज की अंध रूढ़ियों तथा कुरीतियों पर खूब उपहास किया गया है। "आन्ध्र-चन्द्रालोक" एक रीति-ग्रन्थ है। इस प्रकार ये कवि एक अच्छे रीति-शास्त्रकार भी थे। इनके अतिरिक्त समय-समय पर उन्होंने असंख्य फुटकल कविताएँ भी रची हैं।

मंगलगिरि आनंद कवि

ये तिम्मयामात्य के पुत्र थे और पहले हिन्दू-ब्राह्मण थे, किन्तु बाद में ये ईसाई-धर्म के अनुयायी बन गये। इन्होंने "वेदान्त-रसायन" नाम से चार आश्वासों वाला एक काव्य रचा। इसके कृतिभर्ता निडिमामिल्ल दासयामात्य हैं। ये भी जन्म से ब्राह्मण और धर्म से ईसाई हैं। श्री ब्राउन साहब इस काव्य का रचना-काल सन् १७०० मानते हैं, किन्तु श्री वीरेश लिंगम् के मतानुसार यह ई० सन् १७४६ से '५० के बीच रचित हुआ है। यह काव्य अत्यन्त सरस और मधुर है।

काकमानिमूर्ति

ये रामलिंग भट्ट के आत्मज थे। "पांचाली-परिणय" और "राजवाहन-विजय" नामक दो प्रवन्ध-काव्यों के ये प्रणेता थे। प्रथम कृति श्रीरंगनाथ को तथा दूसरी बालाजी को समर्पित है। "बहुलाश्व-चरित्र" ग्रन्थ इन्हीं का माना जाता है, किन्तु आज वह अप्राप्य है। धारा-प्रवाह रचना-शैली और शब्दालंकारों का वैचित्र्य इनकी कविता की विशेषताएँ हैं।

कनुपर्ति अब्बयामात्य

ये रायन मंत्री और नरसमांबा के पुत्र थे। "अनिरुद्ध-चरित्र" और "कविराज-मनोरंजन" दो प्रबन्ध-काव्यों का इन्होंने प्रणयन किया है। ये अपने समय के प्रबन्ध-कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। "वसु-चरित्र" के अतिरिक्त इनके "कविराज-मनोरंजन" काव्य की समता कर सकने वाले प्रबन्ध तेलुगु में एकाध ही पाये जाते हैं।

"कविराज-मनोरंजन" का नामांतर "पुरूरवा-चरित्र" है। राजा पुरूरवा की दिग्विजय का समाचार सुन कर उर्वशी उन पर अनुरक्त होती है और अन्त में उनसे विवाह करती है, यही इस काव्य का इतिवृत्त है। "अनिरुद्ध-चरित्र" की रचना कवि ने अपनी किशोरावस्था में की थी, इसलिए वह दूसरे काव्य-जैसा प्रौढ़ नहीं है।

अकोंजी द्वितीय

ये तंजाऊर के शासक थे। इन्होंने ई० सन् १७३६ से '३७ तक केवल दो वर्ष राज्य किया। "रामायण" और "विघ्नेश्वर-यक्षगान" इनकी कृतियाँ हैं। "रामायण" द्विपद छन्द में रचा गया है।

नेल्लूरि शिवराम कवि

ये तंजाऊर के शासक जयसिंह (ई० सन् १७३७ से '४० तक) के राज्य-काल में उनके दरबारी कवि थे। काम-शास्त्र पर इनका एक ग्रन्थ "काम-कला-निधि" है। इस युग में विभिन्न प्रकार के शास्त्र-ग्रन्थों की रचना हुई, उनमें से यह भी एक है।

मुद्दुपलनि

जयसिंह के पश्चात् तंजाऊर राज्य के अधिपति प्रतापसिंह हुए। इनका राज्य-काल ई० सन् १७४० से '६२ तक है। इसी समय कवयित्री मुद्दुपलनि विद्यमान थीं। बल्कि यों कहना उचित होगा कि मुद्दुपलनि राजा प्रतापसिंह की वेश्या थी और काव्य-रचना भी करती थी। मुद्दुपलनि ने "इलादेवीय" का नामांतर कर "राधिकास्वांतनमु" की रचना की। यह चार आश्वासों का शृंगार-प्रधान प्रबन्ध-काव्य है। कवयित्री संगीत, साहित्य और भरतनाट्य-शास्त्र में प्रवीणा थीं। शृंगार के नाम पर इन्होंने संभोग आदि वर्णनों का ऐसा नग्न चित्र उपस्थित किया है कि कुल-कामिनियाँ उसे न पढ़ सकती हैं और न सुन ही सकती हैं।

मुद्दुपलिनि की कविता मुहावरों, लोकोक्तियों से भरी हुई है। इसके प्रथमाश्वास में इला-देवी के साथ श्रीकृष्ण का संसर्ग, राधा का विप्रलंब-शृंगार, राधा की ईर्ष्या, प्रातःकाल का वर्णन आदि हैं, द्वितीयाश्वास में रति, ज्योत्स्ना, नृत्य आदि, तृतीय और चतुर्थ आश्वासों में कृष्ण और राधा का प्रणय-कलह आदि वर्णित हैं। समीक्षकों का विचार है कि यह काव्य अनेक अनौचित्यों से पूर्ण हैं, फिर भी इसकी कविता-धारा और काव्य-चमत्कार प्रशंसनीय हैं, किन्तु

भारतीय नारी के अलंकार लज्जा का इन्होंने परित्याग कर दूषित शृंगारिक काव्य की रचना की है।

अय्यल राजु और अय्यल भास्कर कवि

इस कविद्वय ने सत्रहवीं शती के तृतीय चरण में काल, स्वरूप आदि का परिचय देनेवाले 'रेट्टमत' नामक ग्रन्थ का कन्नड़ भाषा से तेलुगु-काव्य के रूप में अनुवाद किया। इसमें पाँच आश्वास हैं। यह कृति वेंकटराजु को समर्पित है। वेंकटराजु कर्नूल जिले में स्थित येर्रपालेम के अधिपति तथा अहोबल क्षेत्र के धर्मकर्ता थे। इनकी कविता निर्दुष्ट और सरस है।

कंकंटि पापिराजु

ये अप्पयामात्य और नरसांबा के पुत्र थे। नेल्लूर जिले के पलय कावेरी पट्टणम् के निवासी थे। पुराणों की शैली को त्याग कर इन्होंने प्रबन्ध-शैली में "उत्तर-रामायण" की रचना की। करुण, शृंगार और वीर-रसों से पूर्ण यह काव्य तेलुगु में अपना अनुपम स्थान रखता है। कथा-रीति के अनुरूप मनोहर भावों से युक्त एवं अष्टादश वर्णनों से पूर्ण यह ग्रन्थ तेलुगु में अब तक रचे गये उत्तर-रामायणों का शिरोमणि है। यही कारण है कि तेलुगु में महाभारत और भागवत के पश्चात् इस काव्य को अधिक जनादर प्राप्त हुआ है।

इस काव्य की लोक-प्रियता का दूसरा कारण यह भी है कि यह अत्यन्त श्रव्य और मधुर है। शिवजी के जटाजूटों से प्रवाहित होनेवाली जाह्नवी की धारा की भाँति इसका प्रवाह निर्मल और गम्भीर है। इसमें आत्मा और स्वर का सुन्दर संयोग हुआ है। शब्दालंकार, लोकोक्ति एवं प्रसंगों के अनुरूप रसों का समावेश इसकी शोभा को द्विगुणित करते हैं।

भावों की सुगन्धि पाठकों का अन्तर आनन्द-विह्वल करने में समर्थ है। इस काव्य के मार्मिक स्थलों में करुण-रस पूर्ण सीता का वनवास, वीर-रस से पूर्ण रावण की दिग्विजय, वीभत्स-रस का परिचय देने वाला कपिल-सन्दर्शन, हास्य, अद्भुत एवं भयानक रसों से युक्त बलि चक्रवर्ती की कथाएँ आदि स्वतन्त्र

वृत्तान्तों के रूप में प्रतीत होती हैं। इसमें रावण आदि राक्षसों का जन्म-वृत्तान्त और रामचन्द्रजी के पट्टाभिषेक के बाद की कथा वर्णित है।

कवि पापिराजु राजयोग, गणित-शास्त्र और लोक-ज्ञान में प्रवीण थे। इसका परिचय हमें उनके काव्यों में भली-भाँति प्राप्त होता है। "उत्तर-रामायण" की रचना में पापिराजु को पुष्पगिरि तिम्मना का सहयोग प्राप्त था। ये तिम्मना के समकालीन थे।

पापिराजु का दूसरा ग्रन्थ-"विष्णु-माया-विलास" नामक यक्ष-गान है।

पुष्पगिरि तिम्मना

ये कंकंटि पापिराजु के समसामयिक थे। इनका रचना-काल सन् १७५० तक माना जाता है। "समीर-कुमार-विजय" और भर्तृहरिकृत "नीति-शतक" का रूपांतर इनकी रचनाएँ हैं। इनकी कविता प्रौढ़ और सरस है, किन्तु पापिराजु की कविता की भाँति और उस कोटि की सरसता इसमें नहीं है। ये अप्पनार्य के पुत्र तथा जिला नेल्लूर, मोडेगुंट के निवासी थे। ये संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित थे, किन्तु इनका "नीति-शतक" लक्ष्मण कवि की रचना की भाँति अधिक सरस और प्रांजल नहीं बन पाया है। इनकी कविता में यत्र-तत्र लक्षण-विरुद्ध प्रयोग पाये जाते हैं।

दिट्टकवि नारायण कवि

ये पापिराजु के पुत्र थे। इन्होंने "रंगराय-चरित्र" नामक एक वीर-रस प्रधान प्रबन्ध-काव्य लिखा है। इसकी कथा-वस्तु आन्ध्र देश के इतिहास की एक प्रमुख घटना है। यह कृति नरसराव पेटा के जमींदार मल्राजु रामराय को समर्पित है। इसका रचनाकाल सन् १७६० है।

ई० सन् १७५७ में बोब्बिलि के राजा रंगाराय और फ्रेंच सेनापति बुस्सी की मदद से विजयनगर राजा विजयराम राजु के बीच जो भयंकर युद्ध हुआ था, उसे महाभारत युद्ध के रूप में चित्रित किया गया है। बोब्बिलि दुर्ग के पास जो युद्ध हुए, उनका तथा बोब्बिलि राज्य का वृत्तान्त भी सन्दर्भानुसार प्रभावपूर्ण शैली में चित्रित है। इस वीर-रस प्रधान काव्य के द्वारा आन्ध्र देश की राजनीति का थोड़ा-बहुत परिचय मिलता है।

ग्रुल राम मंत्री

ये नागयामात्य और पणिदम्मा के पुत्र थे। "दशावतार-चरित्र" इनकी कृति है। यह दस आश्वासों वाला काव्य-ग्रन्थ है। इसके कृतिपति मगदल कृष्ण मंत्री हैं। कृष्ण मंत्री नेल्लूर जिले के कावेरी पट्टणम् के निवासी थे। इनकी कविता मृदु-मधुर एवं सरस है।

पिंगलि एल्लनार्य

ये नागयामात्य के पुत्र तथा कोंडवीडु के निवासी थे। इन्होंने "सर्वेश्वर-माहात्म्य" का नामांतर कर "तोभ्य चरित्र" की रचना की। यह चार आश्वासों वाला काव्य-ग्रन्थ है। तुम्म रायपरेड्डी की प्रेरणा से कवि ने इस काव्य की रचना की थी। ग्रन्थ की अवतरणिका में कवि ने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है।

कस्तूरि रंगकवि

ये वेंकटकृष्णयामात्य तथा कामक्षम्मा के पुत्र थे। "लक्षण-चूड़ामणि" नामांतर "आनन्द-रंगराट्-छन्द", "सांबनिघंटु" नामक शुद्ध (ठेठ) तेलुगु-शब्दों का कोश तथा "कृष्णार्जुन-संवादमु" नामक पाँच आश्वासों का काव्य इनकी कृतियाँ हैं। ये ई० सन् १७९० के आसपास तंजाऊर के दरबार में थे। यह भी बताया जाता है कि ये कुछ काल तक फ्रेंच गवर्नर डूप्ले के पास दुभाषिये का कार्य भी करते रहे।

ये एक उत्तम कवि ही नहीं, अपितु गीतकार भी थे। कस्तूरि रंगा "कावेटि-रंगरंगा" नामक मुकुट वाले पदों के रचयिता भी थे। इस मुकुट में पदकर्ता, लेखक और सृष्टिकर्ता रंगेश के नाम भी सम्मिलित हैं। "शंकर-विजय" के कर्ता "आन्ध्र-कालिदास" ने अपने ग्रन्थ में आदर के साथ यह उल्लेख किया है कि ये कस्तूरि रंगकवि के शिष्य हैं।

चिंतकुंट कोदण्डराम कवि

ये "सुनन्दा-परिणय" नामांतर "प्रदीप-चरित्र" के कृतिकर्ता थे। यह

पाँच आश्वासों वाला प्रबन्ध-काव्य है। ये अक्कन मंत्री के पुत्र थे और ई० सन् १७९० के आसपास वर्तमान थे। इनकी कविता सरस और मनोहर है।

मातृभूत कवि

ये तंजाऊर के राजा अमरसिंह (ई० सन् १७८८ से '८९ तक) के समय में वर्तमान थे। "पारिजातापहरण" नामक यक्ष-गान के कवि थे। यह एक विलक्षणता- पूर्ण यक्ष-गान है। इसमें मार्ग तथा देशी नाटकों के प्रभाव के साथ प्रबन्ध-काव्य का प्रभाव भी पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। नाटकों को पाँच अंकों में विभाजित करना संस्कृत के नाटकों का सम्प्रदाय है। भामा कलाप की रीति देशी नाटकों से प्रभावित है और इसमें सुदीर्घ वर्णन एवं अंकों के अन्तिम गद्य-प्रबन्ध की शैली है।

कोटि रघुनाथ तोंडमान

ये पुदुक्कोट के शासक और नायक वंशी थे। "तोंडमान" इनकी उपाधि है। ई० सन् १७६९ से '८९ के बीच इन्होंने पुदुक्कोट पर शासन किया। ये कवि ही नहीं, अपितु आश्रयदाता भी थे। तंजाऊर, मदुरा और मैसूर के शासकों की भाँति इन्होंने भी तेलुगु-साहित्य के विकास में अपना पूर्ण सहयोग दिया है। इनकी कृति "पार्वती-परिणय" नामक प्रबन्ध-काव्य है।

इस काव्य का इतिवृत्त यद्यपि पौराणिक है, तथापि इसमें तत्कालीन समाज का चित्रण विपुल रूप में पाया जाता है। इस काव्य के अनुसार पार्वती, मेनका और हिमपति की सन्तान नहीं, दत्तपुत्री हैं। पार्वती की तपस्या की परीक्षा करने वृद्ध विप्र के वेष में उपस्थित शिवजी का पार्वती की सखियों द्वारा परिहास, शिव-पार्वती के परिणय के प्रसंग में रंभा और उर्वशी का विवाद आदि प्रसंगों पर समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव है। विवाहानंतर शिव-पार्वती के संसर्ग का वर्णन नग्न शृंगार से पूर्ण है। अतः काव्य की उदात्तता लुप्तप्राय-सी है।

नुदुरुपाटि वेंकन्ना

ये रघुनाथ तोंडमान के प्रसिद्ध दरबारी कवि थे। "पार्वती-कल्याण" नामक

यक्ष-गान, "आन्ध्रभाषार्णवमु" नामक ठेठ तेलुगु शब्दों का कोश, "रघुनाथीय" नामक अलंकार शास्त्र और "मल्लु-पुराण" नामक मल्ल-विद्या सम्बन्धी पुराण इनकी कृतियाँ हैं।

गणपवरपु वेंकट कवि

ये जिला कृष्णा गणपवर ग्राम के निवासी और अप्पयामात्य के आत्मज थे। आत्म-स्तुति करने वाले कवियों में इनका स्थान प्रथम आता है। इन्होंने अपने पूर्व कवियों की कृतियों से भाव, भाषा इत्यादि की चोरी करने में संकोच नहीं किया है। इसकी दो दर्जन से ज्यादा कृतियाँ गिनायी जाती हैं। उनमें "आन्ध्र-प्रताप-रुद्रीयमु", "आन्ध्र-रस-मंजरी", "आन्ध्र-निघंटुवु", "आन्ध्र-कौमुदी", "आन्ध्र-प्रयोग-रत्नाकरमु", 'आन्ध्र-द्विरूप-कोश', "कल्पित-कल्पलता" "आन्ध्र-वसंत-तिलक-बाणमु" "आन्ध्र-प्रक्रिया-कौमुदी" तथा "श्रीप्रबन्ध-राज-वेंकटेश्वर विजय-विलास" मुख्य हैं।

यद्यपि कवि ने "श्रीप्रबन्ध-राजवेंकटेश्वर-विजय-विलास" को एकाश्वास प्रबन्ध के रूप में रचा है, किन्तु इसके पद्यों की संख्या चार आश्वासवाले काव्यों से कम नहीं है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की लालसा इस कवि में अधिक थी। ये प्रतिभा-शाली और परिश्रमी थे। गर्भबंध-कविता और चित्र-कविता की रचना में कवि ने अपने कौशल का परिचय दिया है।

चित्रकवि सिंगरार्य

"बिल्हणीयमु" नामक तीन आश्वासों वाला प्रबन्ध-काव्य इनकी कृति है। यह श्रीरामचन्द्र जी को समर्पित है, इसकी कथा-वस्तु मनोहर और कविता सरस है, किन्तु श्रृंगार रस के आधिक्य के कारण यह काव्य अधिक लोकप्रिय नहीं बन पाया है। इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

मदनाभिराम नामक राजा अपनी पुत्री यामिनीपूर्ण तिलक को साहित्य और संगीत में शिक्षित बनाने के लिए बिल्हण नामक संस्कृत कवि को नियुक्त करता है। राजकुमारी को बताया जाता है कि बिल्हण जन्मांध और कुष्ठ रोगी है, जिसको न देखने का रानी ने प्रण किया और जिसके फलस्वरूप दोनों के बीच

अध्ययन के समय एक पर्दा लगाया गया । एक दिन बिल्हण जब पूर्ण चन्द्रमा का वर्णन कर रहा था, तो राजकुमारी ने पर्दा हटाकर उसे देख लिया और उस पर आसक्त हो गयी । उनके प्रणय का समाचार पा राजा बिल्हण का शिर-च्छेद करने की आज्ञा दी, किन्तु अन्त में वध-स्थल से बिल्हण द्वारा भेजी गयी कविता पढ़कर प्रसन्न हो राजा ने उन दोनों का विवाह कर दिया ।

कोत्तलंक मृत्युंजयुडु

ये गोदावरी मण्डल में स्थित कोमरगिरि ग्राम के निवासी और विश्वनाथ के आत्मज थे । "बृहन्नारदीयमु", "धर्मात्मजा-परिणयमु" और "निरोष्ठयनल-चरित्र" इनके काव्य ग्रन्थ हैं । इनकी कविता सरस और लक्षणयुक्त है ।

"बृहन्नारदीयमु" छः आश्वासों वाला काव्य है, "धर्मात्मजा-परिणयमु" चार आश्वासों का द्वयर्थी काव्य है और "निरोष्ठ्य नल-चरित्र" पाँच आश्वासों का चित्र-काव्य है ।

पालवेकरि कदिरीपति

ये "शुकसप्तति" काव्य के रचयिता थे । इसमें सात सौ कथाएँ वर्णित हैं, किन्तु यह ग्रन्थ आज तक पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हुआ है । प्राप्त दो आश्वासों के आधार पर निस्संदेह रूप से हम कह सकते हैं कि इनकी कविता प्रौढ़ और सरस है । आश्वासांत के गद्य से विदित होता है कि ये नायक वंशी और कदिरि राजा के पुत्र थे तथा नेल्लूर जिले के वासी थे । इनका काव्य श्रीरामचन्द्र को सर्मापित है ।

कृष्णदास कवि

ये वेंकटदास के पुत्र थे । "राधा-कृष्ण-विलास" नाम से जयदेवकृत "गीत गोविन्द" को तीन आश्वासों वाले काव्य के रूप में रचा । इनकी कविता सरस और सरल है ।

अय्यगारि वीरभद्र कवि

ये सोमनाराध्य के पुत्र थे । इनकी कृति, "राघव-यादव-पांडवीयमु" नामक

द्व्यर्थी काव्य है । तीन अर्थों वाले काव्य की रचना करना साधारण काम नहीं है । इस महान् कार्य में अपने को सफल बनाने के हेतु कवि ने बड़ी विनय के साथ अपने आराध्य से प्रार्थना की । इनकी कविता से यही ज्ञात होता है कि ये संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित थे । यह तीन आश्वासों का काव्य है ।

घट्टु प्रभुवु

ये नेल्लूर मण्डल के निवासी तथा एल्लनामात्य के पुत्र थे । "सुराभांडेश्वर", "कुचेलोपाख्यान" और "याज्ञवल्क्य-चरित्र" इनके काव्य-ग्रन्थ हैं । लोकोक्तियों और कहावतों से पूर्ण इनकी कविता अत्यन्त सरस और प्रभावोत्पादक बन पड़ी है ।

पदरामात्युडु

ये शिवराम मंत्री और सीतमांबा के पुत्र थे । इन्होंने गुरजाल पेरय्या नामक व्यक्ति की प्रेरणा से "शिव-रामाभ्युदयमु" नामक द्व्यर्थी काव्य की रचना की है । यह कृति जिला गोदावरी, आचंटा नामक ग्राम में विराजमान राम-लिंगेश्वर स्वामी को समर्पित है, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि ये भी गोदावरी मण्डल के निवासी होंगे । इनकी कविता पूर्ण धारा-प्रवाह युक्त है ।

परशुराम पंतुल सिंगपूर्ति

तिम्मांबा और माम मंत्री इनके माता-पिता थे । "सीतारामांजनेय-सम्पादमु" नामक तीन आश्वासों वाला वेदान्त-ग्रन्थ इनकी कृति है । ये महादेव योगी के शिष्य थे । वेदान्त-जैसे नीरस विषय को सरस काव्य का रूप देकर कवि ने अपनी अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है । इस काव्य के प्रथम आश्वास में कवि ने "तारक-योग", द्वितीय में "सांख्य-योग" तथा तृतीयाश्वास में "राज-योग" नाम से व्यवहृत "अमनस्क योग" का सुन्दर प्रतिपादन किया है । यह काव्य अत्यन्त जनप्रिय हो चुका है । इनकी कविता सरल और सरस है, किन्तु कवि ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के हेतु यत्र-तत्र एकाक्षर और द्व्यक्षर पद्यों को भी घुसेड़ दिया है, जिससे वह कहीं-कहीं कठिन भी हो गयी है । इनके पुत्र राममूर्ति भी अच्छे कवि थे,

इन्होंने "शुक-चरित्र" नाम से पाँच आश्वासों वाला वेदान्त-ग्रन्थ रचा है। इनकी कविता भी अत्यन्त सरस और मनोहर है।

कपाल नरसिंह कवि

ये वेंकटेशयामात्य के पुत्र और तरिगोंडा गाँव के निवासी थे। इन्होंने हरिवंश-पुराण के आश्चर्य पर्व के अन्तर्गत वर्णित "शेष-धर्म" का आठ आश्वासों के पद्य-काव्य के रूप में रूपांतर किया। यह कृति तरिकोंडा के नृसिंह स्वामी को समर्पित है। इन्होंने यत्र-तत्र कुछ विलक्षण प्रयोग किये हैं, फिर भी कविता मधुर है।

कोटिकेलपूडि वेंकटकृष्ण कवि

ये वेंकटराम के आत्मज तथा बोब्बिलि राजा के दरबारी कवि थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ की अवतरणिका में बताया है कि उनके आश्रयदाता रंगराजु ने, जो इस कृति के कृतिपति भी हैं, उन्हें कर्म-माहात्म्य की रचना करने की प्रेरणा दी। उन्हीं की प्रेरणा से कवि ने "श्वेताचल-माहात्म्य" नामक काव्य तीन आश्वासों में लिखा। रंगराय का राज्य-काल ई० सन् १८०१ से १८३० के बीच था और कवि भी इसी काल में वर्तमान थे।

ओरुगंटि सोमशेखर कवि

संस्कृत और तेलुगु भाषाओं के ये प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे। इन्होंने "रामकृष्णार्जुन-रूप नारायणीयमु" नाम से चार आश्वासों वाले त्र्यर्थी काव्य का प्रणयन किया। इसके कृतिपति पूसपाटि नारायण राजु हैं। इस काव्य में राम, कृष्ण और अर्जुन (पाण्डव) की कथाएँ साथ-साथ वर्णित हैं। कवि भाषा को भावों के अनुरूप वांछित रूप-कल्पना में ढालने की सामर्थ्य रखते थे। इनके पाण्डित्य का प्रागल्भ्य भी यत्र-तत्र इस काव्य में प्रदर्शित हुआ है।

गोगुलपाटि कूर्मनाथ

ये बुच्चना और गौरमांबा के पुत्र थे। जिला विशाखपट्टणम् के निवासी थे। ये सन् १७५० के आसपास वर्तमान थे। "नरसिंह-शतक" और "मृत्युंजय-

विलास" इनकी कृतियाँ हैं। एक दंतकथा के अनुसार कवि के समय में आन्ध्र देश पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ था और उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित थी, अतः कवि ने अपने आराध्य देव सिंहाचल में स्थित नरसिंह स्वामी को अपने देश और धर्म की रक्षा के हेतु उनकी स्तुति, निन्दा और प्रार्थना कर उत्साहित किया है। एक ही पैर पर खड़े हो कवि ने अपने आराध्य को सम्बोधित करते अड़सठ पद्य सुनाये, और वे आगे बढ़ते ही जा रहे थे कि निकट के पेड़-पौधों से असंख्य मधु-मक्खियाँ निकल आयीं और मुसलमानों को सताने लगीं। इससे घबराकर वे सब भाग खड़े हुए।

"नरसिंह-शतक" कवि की भक्ति का प्रबल प्रमाण है। यह आन्ध्र देश के लोकप्रिय शतकों में एक माना जाता है। पाठशाला के प्रत्येक बालक के जिह्वाग्र पर इस शतक के पद्य अपनी मधुरता घोलते जाते हैं। "मृत्युंजय-विलास" यक्ष-गान है, इसमें पार्वती के जन्म, उनकी तपस्या और विवाह तथा कुमार-संभव एवं तारकासुर-वध आदि के वृत्तान्त वर्णित है।

नृसिंह कवि

ये भक्ति-रस प्रधान "कृष्ण-शतक" के रचयिता थे। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाएँ इसमें वर्णित हैं। "कृष्णा" इसका मकुट है। "कृष्णाशतक" आन्ध्र देश में विशेष प्रचारित और लोकप्रिय है। कवि का समय ई० सन् १७६० के निकट माना जाता है।

त्यागराज (ई० सन् १७६४ से १८४६ तक)

श्री त्यागराज गिरिराज कवि के पौत्र तथा राम ब्रह्म के पुत्र थे। इनके पूर्वज कर्नूल जिले के काकर्ल नामक गाँव के निवासी थे। कुछ पीढ़ियों पूर्व ये तमिलनाडु के तिरवय्यूरु में जा बसे और वहीं उन्होंने अपना स्थिर-निवास बनाया। त्यागराजु की शिक्षा-दीक्षा शोंठि वेंकट रमणय्या के यहाँ हुई। बचपन से ही इनका झुकाव भक्ति की ओर था। गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के पश्चात् भी इनकी भक्ति अविचलित रही। इनके आराध्य-देव श्रीरामचन्द्र थे।

त्यागराज ने दस हजार पद या गीत लिखे। ये कीर्तन अथवा कृति नाम से

विख्यात हैं, किन्तु उनमें छः सौ गीत विशेष रूप से विख्यात हैं। ये "गायक ब्रह्मा" नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके गीत कर्णाटक संगीत के प्राण हैं। इन्होंने अनेक नवीन राग-रागिनियों को जन्म दिया। ये कर्णाटक संगीत के विधायक माने जाते हैं। उत्तर में तानसेन का जो स्थान है, वही दक्षिण में त्यागराज को प्राप्त है। एक लेखक ने यहाँ तक लिखा है कि "त्यागराज के गीत दक्षिणांध्र-वाङ्मय के अश्लील शृंगाररूपी पंक में विकसित अनर्घ पद्म के समान हैं।" डा० के० वी० आर० नरसिंहम् का कथन है कि "त्यागराज ने संगीत को सौन्दर्य के साथ शीलता भी प्रदान की।" त्यागराज के गीत भक्ति, संगीत और साहित्य-रस के छलकते हुए प्याले हैं, जिनका आकंठ पान करके भी कोई परितृप्त नहीं होता।

त्यागराज की लोकप्रियता का उत्तम उदाहरण यह भी है कि इनके गीत महल से लेकर कुटी तक समान रूप से लोकप्रिय हैं। त्यागराज की रचनाएँ भक्ति के लिए ही नहीं, अपितु नयी उद्भावनाओं के लिए भी प्रसिद्ध हैं। दस सहस्र गीतों के अतिरिक्त त्यागराज ने (१) "सीताराम-विजय", (२) "नौका-विजय" (नौका-चरित्र) तथा (३) "प्रह्लाद-भक्त-विजय" नामक तीन यक्ष-गानों की रचना की है। ऊँची कल्पना की उड़ान और औचित्यपूर्ण कथा-संयोजन के लिए "नौका-विजय" और "प्रह्लाद-भक्त-विजय" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "नौका-विजय" की कथा-वस्तु गोपिकाओं का चीर-हरण ही है, किन्तु भागवत की कथा से भिन्न है।

"नौका-विजय" की कथा इस प्रकार आरम्भ होती है—गोपिकाएँ सौन्दर्य-गर्विताएँ थीं। कृष्ण ने उनका गर्व-भंग करना चाहा, अतः नौका-विहार का आयोजन किया। हठात् आँधी चली, चतुर्दिक् गहन अन्धकार व्याप्त हुआ। नौका के निचले भाग में छेद हो जाने के कारण पानी आने लगा। अधिक पानी आयेगा तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा, यह सोचकर गोपिकाएँ घबरा उठीं और उन्होंने कृष्ण से बचाने की प्रार्थना की। कृष्ण ने आदेश दिया कि अपने-अपने कंचुक निकालकर छेद बन्द करें। लेकिन कोई फायदा न हुआ। इस बार चीर आदि समस्त वस्त्र उतार कर छेद बन्द करने का आदेश हुआ। अब जीवन की नौका प्राणहानि और मान-भंग रूपी तटों के मध्य दोलायमान होने लगी। दोनों प्राणांतक हैं। विवश हो, प्राणों की रक्षा के हेतु गोपिकाओं ने अपने वस्त्र उतारे। तभी उन लोगों ने

जाना कि यह सब कृष्ण की माया है। गोपिकाएँ कृष्ण के चरणों पर गिर पड़ीं। उनका गर्व भंग हुआ। यह कथा त्यागराज की उपज्ञा का उत्तम उदाहरण है। ऐसी कल्पना अन्यत्र ढूँढ़े भी नहीं मिलती।

"प्रह्लाद-भक्त-विजय" त्यागराज की भक्ति का नमूना है। इसके कथा-क्रम के अनुसार हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को समुद्र में फेंकवा देता है। इस पर समुद्र प्रह्लाद को महाभक्त मानकर प्रणाम करता है। प्रह्लाद जब समुद्र से भगवान् के साक्षात्कार का मार्ग पूछता है, तब वह कहता है—"षोडश उपचारों द्वारा भगवान् की आराधना करते हुए आत्मार्पण करो।" यह पाँच अंकों वाला यक्ष-गान है। यह मार्गनाटक शैली पर विरचित है।

राजाश्रय का तिरस्कार कर त्यागराज ने दरिद्र का-सा जीवन व्यतीत किया। भक्ति-भाव से संगीत और साहित्य की आराधना करते हुए वे अमर हो गये। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने अपनी मातृ-भाषा तेलुगु में अपने गीतों की रचना की, तमिलनाडु में अपना सारा जीवन व्यतीत किया और उनका संगीत कर्णाटक-संगीत कहलाया। इस प्रकार उस महात्मा ने साहित्य, भक्ति और संगीत के क्षेत्र में समन्वयात्मक आदर्श उपस्थित किया। इन्होंने मानव-कृत संकुचित सीमाओं को क्षणिक एवं नश्वर बताते हुए साहित्य और दर्शन का एक अनन्त मार्ग प्रशस्त किया। उनकी वाणी और भक्ति आत्मा से परमात्मा के साक्षात्कार का माध्यम बनी। उनका साहित्य कल्पना के उत्कृष्टतम अन्तरिक्ष को छूने में सफल रहा। त्यागराज-जैसे कवि पर सारे राष्ट्र को अभिमान है।

पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि (ई० सन् १७७० से १८४० तक)

ये गोपालामात्य के पुत्र तथा गोदावरी जिले के रामचन्द्रपुरम के समीप में स्थित कुय्येरु नामक गाँव के पटवारी थे। राव धर्माराय नामक एक जागीरदार ने इनका खेत हर लिया था, अतः धर्माराय की रावण के साथ तुलना करते हुए इन्होंने अपने क्षेत्रापहरण की कथा रामायण के श्लेषार्थ में वर्णित की। यह एक द्व्यर्थी काव्य है। यह "लंका-विजय" के नामांतर रूप में "रावणदम्मीय" नाम से ख्यात हुआ है। तेलुगु-भाषा के ये प्रकाण्ड पण्डित थे, इस बात का उन्हें गर्व था। अपने पाण्डित्य पर भी इन्हें पूरी आस्था और अभिमान था और दूसरों को नीचा दिखाने

की प्रवृत्ति भी इनमें बड़ी बलवती थी। ये विवाहादि कार्यों में अपनी कविता सुनाकर पुरस्कार भी लिया करते थे। लक्ष्मण कवि के प्रतिस्पर्धी कवि शिष्टु कृष्ण-मूर्ति शास्त्री थे, जिनकी संस्कृत-भाषा की अनभिज्ञता का वे खूब परिहास करते थे। मौका पाकर लक्ष्मण कवि ने इसका बदला भी उनके कृति समर्पण के समय लिया था। इस सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। ये अपनी सद्यःकाव्य-स्फूर्ति और उक्ति-चमत्कार के लिए विशेष प्रसिद्ध थे।

अल्लमराजु रामकृष्ण कवि

ये रंगनाथार्य के पुत्र और गोदावरी जिले के निवासी थे। ये सन् १८४१ तक वर्तमान थे। "कविचकोर-चन्द्रोदय" इनका चार आश्वासों का एक प्रबन्ध-काव्य है। यह द्राक्षाराम में विराजमान भीमेश्वर को समर्पित है। इनकी अन्य कृतियाँ (१) "मदालसा-परिणय", (२) "शंतनु-विलास", (३) "आध्यात्म-रामायण", (४) "अच्च-तेलुगु-भागवतमु", (५) "रामकृष्णीयमु" आज उपलब्ध है, किन्तु इनके अतिरिक्त भी (६) "वैनतेय-विजय", (७) "सत्यभामा-विलास" (८) "गोतमी-महात्म्य", (९) "द्रौपदी-परिणयमु", (१०) "सुशोभा-विवाह", (११) "हनुमदाख्यान", (१२) "सुकविजन-मनोरंजन"—इनके अन्य काव्य-ग्रन्थ हैं। यदा-कदा त्रुटिपूर्ण होने पर भी इनकी कविता प्रौढ़ और मनोहर है।

शिष्टु कृष्णमूर्ति शास्त्री (ई० सन् १७९० से १८८० तक)

इनका जन्म जिला गोदावरी के रामचन्द्रपुरम के समीप स्थित गोल्लपालेम में हुआ था। इनके पिता सर्व-शास्त्री थे। कुछ समय के पश्चात् इनका परिवार रामचन्द्रपुरम में आ बसा। इनकी शिक्षा-दीक्षा बुलुस अच्चय्या के यहाँ हुई। बचपन में ही इन्होंने काव्य-नाटक, व्याकरण एवं अलंकार-शास्त्र का अध्ययन किया था। संस्कृत और तेलुगु के साथ संगीत-शास्त्र में भी इन्होंने अच्छी प्रवीणता प्राप्त की थी। आशु कविता करने और पुराण-पठन में ये बेजोड़ थे। इनकी योग्यताओं से प्रभावित हो रामचन्द्रपुरम के जमींदार रामचन्द्र राज और जगन्नाथ राज ने इन्हें आश्रय दिया तथा इनका पर्याप्त सत्कार और सम्मान भी किया।

कृष्णमूर्ति में पांडित्य तो था, किन्तु व्यावहारिक ज्ञान का उनमें अभाव था। पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि में कृष्णमूर्ति की अपेक्षा पांडित्य कम था, परन्तु व्यावहारिक ज्ञान और उक्ति-चमत्कार में वे निपुण थे, अतः जब-तब मौका पाकर कृष्णमूर्ति को पराभूत करने से न चूकते थे। ऐसी स्थिति में ही सम्भवतः लक्ष्मण कवि से पराभूत हो वे रामचन्द्रपुरम छोड़ देशाटन के लिए निकल पड़े। रामेश्वर की यात्रा से लौटते समय कालहस्ती के अधिपति दामेर वेंकटपति राय ने कृष्णमूर्ति के पांडित्य पर मुग्ध हो उन्हें अपने संस्थान में आश्रय दिया। वहाँ वे लगभग १६ वर्ष रहे।

"सर्वकामदा-परिणय", "स्त्री-नीति-शास्त्र", "वेंकटाचल-महात्म्य" "वसु-चरित्र", "वसुचरित्र की व्याख्या", "वीक्षारण्य-महात्म्य" इनके तेलुगु काव्य ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत में "यक्षोल्लास", "पल्लवी-पल्लवोल्लास", "मदनाभ्युदय", नामक बाण, "कंकण-बन्ध", नामक राम-कथा और "नीलशैलनाथीय" की भी रचना की थी, जो इनकी विद्वत्ता की परिचायिका हैं। ये अन्य अनेक संस्थानों में भी गये, जहाँ इनका अच्छा आदर हुआ। पिठापुरम, माडुगल्लु, जग्गमपेटा आदि संस्थानों में इनका अभूतपूर्व सत्कार हुआ था।

कासुल पुरुसोत्तम

ये अप्पलराज और रमणांबा के पुत्र और चारण वंशी थे। इनका रचना-काल ई० सन् १७७४ से ६१ तक माना जाता है। ये जिला कृष्णा पेद्दप्रोलु ग्राम के निवासी थे। ये देवरकोटा (चल्लपल्लि) के राजा अंकिनीडु के दरबार में थे। "आन्ध्र-नायक-शतक", "मानस-बोध-शतक" "भक्त-कल्पद्रुम-शतक" तथा "हंसल-दीवि" और "गोपाल-शतक" इनकी रचनाएँ हैं।

तरिगोण्ड वेंकमांबा

ये कड़पा जिले के तरिगोण्डा नामक गाँव की निवासिनी थीं। अल्प वय में ही ये विधवा हो गयी थीं। इसके पश्चात् उन्होंने अपना शेष समय काव्य-रचना और भगवद्-भजन में बिताया। ये एक विदुषी नारी थीं।

"राजयोग-सार" और "वेंकटाचल-महात्म्य" काव्य इनकी भक्ति के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इनकी कविता में विशुद्ध शृंगार-रस-वर्णन और शब्दालंकारोंका चमत्कार अद्भुत है। भागवत के दशम स्कन्ध को आपने द्विपद छन्द में काव्य का रूप दिया। ये ई० सन् १८४० तक जीवित रहीं। तेलुगु की कवयित्रियों में वेंकमांबा का स्थान उल्लेखनीय है।

मुलुगुपापयाराध्य

ये वासिरेड्डी वेंकटाद्रिनायुडु के दरबारी कवि थे। "अभिनव-कालिदास" इनकी उपाधि थी। इन्होंने संस्कृत में "एकादशी-महात्म्य", तेलुगु में "देवी-भागवत" और ठेठ तेलुगु में "सर्व-मधुरमु" नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इनकी कविता प्रौढ़ और प्रसादगुणयुक्त है।

फक्कि वेंकटनरसय्या

'अपरपद-कल्पद्रुम', "कवियर्पण-छन्द", "शकुंतला-परिणय", "मदन-सायिका-परिणय", "नारायणस्तव", "नारायण-शतक" और "कुमारी-शतक" इनकी-कृतियाँ हैं। "कुमारी-शतक" नारियों के कर्तव्य का बोध करानेवाला है। यह आन्ध्र देश में विशेष प्रचारित और प्रशंसित है। ये सन् १८६० के लगभग तक वर्तमान थे।

ओगिराल जगन्नाथ कवि

ये गोदावरी जिले के नीलपल्लि नामक ग्राम के निवासी और वेंकटेश्वरामात्य के पुत्र थे। इन्होंने अपने अंतिम काल में काकिनाड़ा से "सुधीरंजनी" नामक तेलुगु मासिक का प्रकाशन किया था। "सुमनोमनोभिरंजन" पाँच उल्लासों में विरचित इनका एक सरस काव्य है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यही है कि कई बार यह काव्य उपाधि-कक्षाओं (बी० ए० आदि) के पाठ्यक्रम में रखा गया।

माडभूषि वेंकटाचार्य

ये नृसिंहाचार्य के पुत्र तथा गोदावरी जिले के पेंटपाडु गाँव के निवासी थे।

ये बहुत समय तक कृष्णा जिले के नूजिवीडु के आस्थान में रहे। "अभिनव-पंडितराय" नामक उपाधि भी इन्होंने वहीं प्राप्त की थी। ये संस्कृत और तेलुगु के उद्भट विद्वान् और कवि थे। ये शतलेखनी "पद्य-संधान", "अष्टावधान" तथा आठ भाषाओं में "व्यस्ताक्षरी" कहने में समर्थ थे।

"भरताभ्युदय" नामक चार आश्वासों वाले प्रबन्ध-काव्य का प्रणयन कर इन्होंने अपनी उत्कट विद्वत्ता का परिचय दिया है। इनकी कविता अकलुष, प्रांजल और श्रवण मधुर हुई है।

अन्य कवि

इस युग की विस्तृत साहित्य-रचना का इसी तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि उक्त कवियों के अतिरिक्त इस युग के अन्य कवियों की संख्या पाँच सौ से कम न होगी। सब का परिचय देना यहाँ संभव नहीं है, अतः कुछ कवि और उनकी कृतियों का नामोल्लेख मात्र किया जायगा। यों तो इस युग की कविता असंख्य धाराओं में प्रवाहित हुई है, पर उसकी कुछ प्रमुख श्रवन्तियों के निर्माता कवि और लेखक नौ भागों में विभक्त हैं। वे क्रमशः (१) प्रबन्ध-कवि, (२) लाक्षणिक कवि या रीति-शास्त्रकार, (३) शास्त्र-कवि, (४)भाषांतरीकरण-कवि, (५) असभ्य-शृंगार-कवि, (६) द्व्यर्थि-काव्य-कवि, (७) शतक, गीत और दण्डक कवि, (८) गद्य-लेखक और (९) नाटककार की कोटियों में विभाजित हुए हैं। यह विभाजन काव्यरीति और वस्तु के आधार पर हुआ है।

प्रबन्ध-कवि

प्रमुख प्रबन्ध कवियों का परिचय पहले ही दिया गया है। शेष कवियों में "विष्णु-माया-विलास" के रचयिता रसनूरि वेंकटपति, "चन्द्रांगक्षचरित्र" नामक छः आश्वासों के प्रबन्ध-काव्य के रचयिता पैडिमर्रि वेंकटपति, "भानुमद्विजय" "मालती-माधव" और "गौलिका-शास्त्र" के रचयिता वेलग पूडि कृष्णय्या, "मित्र-विंदा-परिणय" के रचयिता कुंदुर्ति वेंकटाचलपति, "रत्नावली-परिणय" के प्रणेता धूर्जटी वेंकट राय, "राधा-माधव-संवाद" के कृति-कर्ता वेलिदंड्ल वेंकट-पति, "भल्लाण-चरित्र" के निर्माता मल्लवरपु वालेश्वर, "मधुर-वाणी-विलास"

के रचयिता चितलपल्लि वीरराघव कवि, "बलराम-चरित्र" के निर्माता गुडारु वेंकटदास कवि, "इन्दुमती-परिणय" के रचयिता यशस्वी कवि काकुनूरि कृष्णय्या, "भद्रराजपुत्र-चरित्र" के प्रणेता वैष्णव वेंकटाचार्य, "अभिमन्यु-परिणय" के लेखक वीणेमु लक्ष्मीपति, "गयोपाख्यान" के कृतिकर्ता रामनामात्य इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

रीति-शास्त्रकार

सन्दर्भानुसार हमने लक्षण-ग्रन्थों के प्रणेताओं का परिचय दिया है। शेष आचार्यों में "आन्ध्र-भाषार्णव" निघंटु के प्रणेता कोटवेंकटनार्य, "शृंगार-रसाल-वाल" नामक तीन आश्वासों वाले अलंकार शास्त्र के कृतिकर्ता वेणुतुर्ल वट्टि कवि, "कुवलायानन्द-प्रकाश" नामक अलंकार-ग्रन्थ के प्रणेता कटिकिनेनि राममय कवि तेलुगु के लक्षण शास्त्र की श्रीवृद्धि में अपना योगदान देकर इसे समृद्ध बनाने में विशेष सफल सिद्ध हुए।

शास्त्र-कवि

कोडिचर्ल श्रीनिवासकर्ता ने "शेष-धर्म-रत्नाकर", वेमुगुंट दत्तोजी पंडित ने "भगवद्गीता-योग-शास्त्र" माधव मंत्री ने "गीता-शास्त्र" वेगिनाटि कोंडनार्य ने "विवेक-सिन्धु" तथा वासुदेव योगी ने "जीव-प्रबोध" नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

भाषांतरीकरण कवि

वीरभद्र कवि ने सुबन्धुकविकृत वासवदत्ता का "वासवदत्ता-परिणय" नाम से तथा कालिदासकृत कुमार सम्भव का "गौरी-कल्याण" नाम से रूपांतर किया है। पट्टभट्ट सोमनाथ कवि ने स्कन्ध पुराण की सूत-संहिता और ईदुरुपल्ले भवानी शंकर ने "धर्मखण्ड" का अनुवाद किया। "रघुवंश" का अवुडूरि पिच्चय्या ने, "किरातार्जुनीय" का गोपालुनि सिंगय्या ने, "रसमंजरी" का गुडिपाट कोदण्डपति ने संस्कृत से तेलुगु में सुन्दर रूपांतर किया है।

असभ्य श्रृंगार कवि

वासना-प्रधान अथवा कामुकता से पूर्ण भावनाओं को उभाड़ने के विचार से जिन कवियों ने अपने काव्यों में श्रृंगार-रस का विकृत रूप उपस्थित किया है, ऐसे कुछ प्रमुख कवियों का परिचय तो दिया जा चुका है। परिणय-बन्धन से मुक्त प्रणय का वर्णन, सामाजिक दृष्टि से अविनीतिपूर्ण है और सामाजिक स्थिरता, सुरक्षा एवं व्यावहारिकता के लिए अनुपयुक्त बताया जाता है, इसलिए ऐसी क्षणिक वासनाओं के वशीभूत होकर मोहवश लिखा गया काव्य दूषित समझा गया है। तारा और शशांक का प्रणय-व्यापार भले ही प्रेम के अन्तर्गत आये, किन्तु इसमें सामाजिक धर्म के विरुद्ध आचरण होने के कारण यह अधर्म कहलाता है। ऐसे काव्य के प्रणेताओं को असभ्य और अशुद्ध श्रृंगार कवि बताया गया है।

संक्षेप में "ओडयनंबिविलास" के रचयिता अज्जरपु पेरयलिंगय्या, "श्रृंगार-धाम" के रचयिता दिवि रमणकवि, "श्रृंगारसुधा-समुद्र-चन्द्रोदय' के प्रणेता चेन्नूर शोभनाद्रि, "यामिनी-पूर्ण तिलकाविलास" के रचयिता चल्लपिल्ल नरसकवि, "विप्र-नारायण-चरित्र" के कृतिकर्ता चेदलुवाड़ मल्लया, "मदन-सायक-विलास" के कृति-कर्ता चदुवुल सोमलिंगय्या, इस श्रेणी के ही कवियों में आते हैं। कविता की दृष्टि से सरस होने पर भी इनका काव्य अश्लील समझा गया, इसलिए इन्हें पण्डितों का आदर नहीं प्राप्त हो सका है।

काव्य कवि

इस युग के अन्य काव्यों में अनंतराजु जन्नय कविकृत "राम-कथाभिराम" नामक दस आश्वासों वाला ग्रन्थ, अत्तलूरि पापकवि का "चेन्न-वसव-पुराण", काणाद पेद्दन सोमयाजीकृत "मुकुंद-विलास" तथा "आध्यात्म-रामायण", गोंतेटि सूरना का लिखा "कृष्णाभ्युदय", भारय कविकृत "मैरावण-चरित्र", कोवेल गोपराजुकृत "सिंहासन-द्वात्रिंशति", अय्यलराजु नारायण कवि का "हंस-विंशति", नारन सूरनाकृत "वनमाली-विलास" तथा गूलिकलु वेंकट रमण कवि प्रणीत "कनक-रंजित-शिखामणि-परिणय' 'नामक विक्रमार्क-चरित्र विशेष-रूप से उल्लेखनीय है।

द्व्यर्थी काव्य

तदनुरूप सन्दर्भों में हमने द्व्यर्थी काव्य एवं त्र्यर्थी काव्यों का परिचय दिया है। अन्य काव्यों में तिरुमल बुक्क पट्टणपु वेंकटाचार्यकृत "अचलात्मजा-परिणय" उल्लेखनीय है।

शतक, गीत और दण्डक कवि

तेलुगु में इतनी संख्या में शतकों की रचना हुई है कि उनकी नामावली का भी परिचय देना यहाँ सम्भव नहीं है। शतक-कर्ताओं ने काव्य की अन्य विधाओं की परिपुष्टि में भी अपना योगदान दिया है, अतः उनमें कुछ के संक्षिप्त परिचय के साथ शतकों का भी उल्लेख किया गया है। शतक-रचना मुख्यतः ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के प्रसार तथा सामाजिक सुधार के विचार से हुई है। कंचेर्ल गोपन्ना के नामांतर रूप में रामदासकृत "दाशरथी-शतक" इस युग का उत्कृष्ट काव्य माना जाता है। यह भक्ति-प्रधान है, किन्तु इसमें ज्ञान और वैराग्य का भी पूर्ण समन्वय हुआ है। "दाशरथी करुणापयोनिधी" इसका मुकुट माना जाता है। इसकी भाषा मधुर और शैली मनोहर है। यह आन्ध्र में विशेष लोकप्रिय और प्रचारित शतकों में से एक है।

शतक के लक्षण

शतक के निम्नलिखित पाँच प्रमुख लक्षण बताये गये हैं—

(१) शतक में सौ अथवा एक सौ आठ पद्य होते हैं। (२) प्रत्येक पद्य के चतुर्थ चरण में सम्बोधन होता है। (३) कवि अपने-अपने अनुभव प्रत्यक्ष पद्धति में सुनाते हैं। (४) विभिन्न भावों का संकलन शतक में होता है। (५) इसमें नीति, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, अंध-विश्वास और विविध कुरीतियों इत्यादि का खण्डन-मण्डन होता है।

शतक कई प्रकार के होते हैं। दर्शन, हास्य, स्वतन्त्र-प्रियता इत्यादि बातें इसमें वर्णित होती हैं।

तेलुगु में लगभग एक हजार शतक हैं। उनमें अधिकांश शतक तत्कालीन सामाजिक अवस्था के प्रतिरूप हैं। अन्य शतकों में सुमती-शतक, वेमन-शतक,

नरसिंह-शतक, कुमारी-शतक, नीति-शतक, कृष्ण-शतक, कवि-चौडप्पा-शतक, वेणुगोपाल-शतक और भास्कर-शतक मुख्य हैं।

गीतकारों में क्षेत्रय्या और त्यागराज के पश्चात् रामदास का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। रामदास ने समस्त जगत् को राममय देखा है। येड्ल रामदास, वीर-ब्रह्म और दूदेकुल सिद्धप्पा के गीत या तत्त्व आन्ध्र देश में अविस्मृत रहेंगे। दण्डकों में पोतनाकृत भोगिनी-दण्डक, गणपवरपु वेंकट कविकृत "चण्डविद्यावतीदण्डक", आडिदम सूरना प्रणीत रामदण्डक, एनुगु लक्ष्मण कविकृत नृसिह दण्डक और मदिन सुभद्रा का श्रीरामदण्डक विशेष प्रामाणिक और प्रसिद्ध दण्डक माने जाते हैं।

गद्य

यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी भाषा में प्रथम कविता का प्रादुर्भाव हुआ, तदुपरान्त ही गद्य का जन्म हुआ। आदि कवि वाल्मीकि के मुँह से प्रथम काव्य वाणी ही श्लोक के रूप में छन्दोबद्ध होकर उद्भूत हुई थी। यह कथन केवल भारतीय-साहित्यों में ही नहीं, अपितु पाश्चात्य-साहित्यों में भी सर्वथा सत्य माना गया है, जो नीचे दिये उदाहरण से स्पष्ट है—

"It has been commonly observed that a literary prose is much later in its development than verse. This does not mean that there is no prose of any kind written although this is true in some cases. The necessary business of life is of course carried on in prose...."

(Page 23, Roman Literature—1914
by A. S. Wilkis.)

लिपि के अभाव में गद्य की अपेक्षा कविता कंठस्थ कर भावी पीढ़ियों को संचित ज्ञान-निधि के रूप में प्रदान करना अधिक अनुकूल और आसान था, इसीलिए इसका प्रचलन एवं विकास शीघ्रता के साथ हुआ, किन्तु हमारे पूर्वजों ने "गद्यं-कवीनां निकषं वदन्ति" कहा है, इससे गद्य के प्रति उनका प्रेम और आदर प्रकट होता है।

तेलुगु-साहित्य का प्रथम उपलब्ध काव्य नन्नयकृत "महाभारत" चंपू-काव्य है। तेलुगु में गद्य-रचना को कविता रचना से कम महत्त्व नहीं है। गद्य लेखकों को गद्य-कवि नाम से ही सम्बोधित किया जाता रहा है। नन्नय का गद्य दीर्घ समासों से युक्त है। तिक्कना के विराटपर्व में "प्रभात-वर्णन" और पोतना के महाभागवत में "नैमिषारण्य-वर्णन" में व्यवहृत गद्य पढ़ने योग्य है। गद्य की यह धारा अविच्छिन्न रूप से १६वीं शदी तक प्रवाहित होती रही, किन्तु इस शताब्दी में विशुद्ध गद्य ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। ऐसे ग्रन्थों में मदुरा के शासक विश्वनाथ नायक का स्थानाधिपतिकृत "राय-वाचक" विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। विश्वनाथ नायक कृष्णदेवराय के समसामयिक थे, अतः अनुमान किया जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना ई० सन् १५३५ के करीब हुई होगी। इस ग्रन्थ में विजय-नगर (विद्या-नगर) का निर्माण, कृष्णदेवराय की दिन-चर्या और उनका दिग्विजय वर्णित हैं। अन्य गद्य-ग्रन्थों में एकाम्रनाथकृत "प्रताप-चरित्र", पुलिपाक रामन्ना प्रणीत "श्रीरंग-माहात्म्य" प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस युग के गद्य-ग्रन्थों में कलुवे वीरराजु विरचित "वचन-महाभारत", "मंजराजकृत "हालास्य-माहात्म्य" और "विष्णु-भक्त-विलास" इत्यादि का उल्लेख किया जाता है। "हालास्य-माहात्म्य" ७२ अध्यायों वाला ग्रन्थ है। तुपाकुल अनन्त भूपाल, वेन्नेलकंटि सूरना ने भी गद्य के विकास में अच्छा योग दिया है। विजयरंग चोक्कनाथकृता "श्रीरंग-माहात्म्य" और "माध-माहात्म्य" तथा वेलग पूडि कृष्ण कविकृत "वेदान्त-सार-संग्रह" भी गद्य के विकास में अपना अच्छा स्थान रखते हैं।

गद्य के विकास में नया मोड़ लानेवाले लेखकों में समुखमु वेंकटकृष्णप्पा का नाम अविस्मरणीय है। इनके द्वारा विरचित "जैमिनी-भारत" और "सारंगधर-चरित्र" विशुद्ध गद्य-ग्रन्थों के सुन्दर नमूने हैं। यद्यपि इनकी शैली उद्धत मानी जाती है और व्याकरण के कुछ प्रयोगों को लेकर शब्दों के उच्चारण के सम्बन्ध में मतभेद प्रकट किया जाता है, फिर भी प्रारम्भिक अवस्था के गद्य-निर्माण विचार से उनका गद्य पर्याप्त प्रौढ़ तथा भावी पीढ़ियों के लिए उपयुक्त पृष्ठ-भूमि तैयार करने वाला हुआ है। अर्धानुस्वार के स्थान पर अनुस्वार, समुच्चय में "न्नु" का प्रयोग, अनुस्वारों के अन्त में "प" के बदले "प्प" "ड" के

स्थान "ल्ल" इत्यादि कतिपय प्रयोग उस युग की भाषागत विशेषता के सूचक हैं। भाषा और व्याकरण, विकासवाद सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं, अतः ये दोष क्षम्य हैं और फिर वर्तमान भाषा-स्वरूपसम्बन्धी सिद्धान्तों को कसौटी बनाकर उस युग की भाषा की तुलना नहीं की जा सकती।

इस युग के अन्य गद्य-ग्रन्थों में मुकुंदयोगीकृत "विवेक-सिन्धु", पुष्पगिरि तिम्मना प्रणीत "भागवत" भी उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जिनके कवि अज्ञात हैं, फिर भी वे रचनाएँ इतनी लोकप्रिय हैं कि आज भी विपुल संख्या में बिक रही हैं। ऐसी कृतियों में "विक्रमार्क-कथलु", "पंचतंत्र", "तेनालि-रामलिंगन-कथलु", "परमानन्द-शिष्युल-कथलु", "मर्याद-रामन्न-कथलु", "काशी-मजिली-कथलु", "पंच-विंशति-कथलु", "मदन-कामराजु-कथलु", "मैरावण-कथलु" और "शुक-सप्तति-कथलु" बहु प्रचारित एवं बहु प्रशंसित हैं। इनसे हमें विदित होता है कि १८वीं शदी के अन्त तक ही गद्य-साहित्य का अच्छा विकास हो गया था।

नाटक

आधुनिक युग में प्रवर्द्धित नाटकों की परिभाषा को मानदण्ड बनाकर यदि हम उस युग तक विरचित नाटकों की आलोचना करने बैठेंगे तो हम उनके साथ न्याय नहीं कर पायेंगे, क्योंकि आज समस्त भारतीय भाषाओं के सम्पर्क में नाटकों का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास हो रहा है और फिर प्राचीन-काल के लक्षणों की परिभाषा में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। हाँ, युगों के अनुरूप अभिरुचि, तत्कालीन साहित्यिक दशा पर दृष्टिपात करने से हमें यह आत्म-तोष होगा कि तेलुगु-नाटक-साहित्य पिछड़ा हुआ नहीं है। यों तो १३वीं शताब्दी की कथाओं से हमें ज्ञात होता है कि तेलुगु में नाटकों की रचना हुई है, किन्तु उस समय के नाटक आज प्राप्त नहीं हैं। श्रीनाथ कवि के समय में "वीथी-भागवत" और "यक्ष-गानों" का प्रदर्शन हुआ करता था। उस समय की जनता के मनोरंजन के लिए वे देशी रूपक पर्याप्त थे। १६वीं शदी में एलकूचि बाल सरस्वती और १७वीं शदी में कुंगुति वेंकटाचल कवि ने अपनी आत्म-स्तुति में बताया है कि उन लोगों ने नाटक रचे हैं।

जहाँ तक उपलब्ध नाटकों का प्रश्न है, "क्रीड़ाभिराम" प्रथम नाटक माना जाता है। यक्ष गान एक प्रकार का संगीत-नृत्य-रूपक है। काल-क्रम के अनुसार परिवर्तित होते उन यक्ष-गानों ने आज के नाटक रूप को प्राप्त किया। ऐसे नाटकों में "कुशलव-नाटक", "प्रह्लाद-नाटक", "राम-नाटक" "शशांक-विलास", "शशिरेखा-परिणय", "सुग्रीव-विजय", "सीतापहरण" आदि की गणना विशेष रूप से की जा सकती है।

अंग्रेजी विद्वानों द्वारा तेलुगु-साहित्य की सेवा

हिन्दुस्तान में क्रमशः अंग्रेजों का शासन दृढ़ होता गया। उन लोगों ने सन् १८१२ से भारतीय भाषाएँ सीखना प्रारम्भ किया। मुद्रणालय की स्थापना के साथ भाषाओं के विकास का मार्ग भी खुल गया। कर्नल कालिन मेकंजी, चार्लस फ़िलिप ब्राउन, धूल्जी तथा बिशप काल्डवेल महोदयों ने तेलुगु-साहित्य की अपूर्व सेवा की। कर्नल कालिन मेकंजी सन् १७८३ में इंजीनियर बनकर मद्रास आये, बाद को वे ही हिन्दुस्तान भर के लिए "सर्वेयर जनरल" पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने हिन्दुस्तान का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करने के विचार से सभी भारतीय भाषाओं के पण्डितों की सहायता ली और ग्राम, नगर, गुफ़ालयों के शिल्पों का इतिहास, शिला-लेख, दान-पत्र, ताम्र-पत्र, नक्शे तथा अन्यान्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्रियों का संग्रह किया। उक्त सामग्री बाद में आन्ध्र देश का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुई।

मेकंजी साहब के सहायकों में प्रधान पण्डित कावलि वेंकट बोर्रय्या थे। प्राचीन ताम्र-पत्र व शिला-लेखों की लिपि-पठन-विद्या के ये उद्धारक थे। ये तेलुगु, संस्कृत, तमिल, कन्नड़, मलयालम, ओरिया तथा अंग्रेजी—कुल सात भाषाओं के विद्वान् थे। बोर्रय्या की मृत्यु अल्पावस्था में ही हो गयी। इसके पश्चात् उनके भाई ने मेकंजी साहब की सहायता की। मेकंजी साहब ने इतिहास के अनुसन्धान के लिए उपयोगी ताल-पत्र तथा अन्य १५५६ पांडुलिपियाँ प्राप्त कीं। इनमें तेलुगु, संस्कृत, तमिल, कन्नड़, मलयालम और ओरिया भाषाओं की प्रतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त २०७० स्थानीय इतिहास और वृत्तान्त, ८०७६ शिला-लेखों के बचान, ७९ नकशे, २६३० चित्र और ६२१८ सिक्के भी हैं।

बोरैय्या के भाई रामस्वामी ने सन् १८२२ में तेलुगु, तमिल, मराठी और कन्नड़ भाषाओं के कवियों का इतिहास "दक्षिणापथ-कवि" नाम से प्रकाशित किया है।

इस सन्दर्भ में सी० पी० ब्राउन साहब की सेवा उल्लेखनीय है। उन्होंने सन् १८१४ से लेकर सन् १८५५ तक लगातार ४० वर्ष तक तेलुगु वाङमय की अनवरत सेवा की है। उन्होंने तेलुगु भाषा का अध्ययन कर उसमें असाधारण पाण्डित्य प्राप्त किया, स्वयं ग्रन्थरचना की और दूसरों को प्रोत्साहित कर ग्रन्थ लिखाये। अनेक उत्तम तेलुगु ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। शब्दों का संकलन कर व्याकरण और कोश तैयार किये। बताया जाता है कि ब्राउन साहब ने २४४० पांडुलिपियों का संग्रह किया था। १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के समस्त तेलुगु साहित्यिक प्रक्रियाओं पर ब्राउन साहब का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

ब्राउन साहब ने सन् १८१७ में "तेलुगु-व्याकरण" लिखा, सन् १८२९ में सन्त वेमनाकृत "वेमन-शतक" का अंग्रेजी रूपांतर प्रकाशित किया, सन् १८३३ में तेलुगु-साहित्य पर एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किया और तदनन्तर सन् १८५२ में अंग्रेजी-तेलुगु-कोश तथा तेलुगु-अंग्रेजी-कोश का संपादन किया। इनके अतिरिक्त सन् १८५४ में एक कोश का भी सम्पादन किया।[1]

सन् १८०६ में ही तेलुगु में तेलुगु-मुद्रण-यन्त्र की सुविधा उपलब्ध हो गयी थी और प्रथम तेलुगु-ग्रन्थ उसी वर्ष मद्रास में प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व अर्थात् सन् १७४६ में जर्मन निवासी रेवरेंड बेंजमीन श्लुल्जीस ने टाइप तैयार कर तेलुगु में मुद्रण-कार्य प्रारम्भ किया था। इसके उपरान्त सन् १८१२ में फोर्टसेंट जार्ज कालेज की स्थापना हुई और उसके लिए पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता हुई। अंग्रेजी अफ़सरों को तेलुगु सीखने के लिए आवश्यक ग्रन्थों की भी जरूरत थी। इस महान् कार्य को देशी और विदेशी विद्वानों ने अपने हाथ में लिया और अनति काल में ही अच्छी संख्या में पाठ्य-पुस्तक, व्याकरण, निबन्ध और कोश इत्यादि की रचना की। इस कार्य में जिन विदेशी विद्वानों ने योग दिया है, उनमें ई० सन् १८१४ में डाक्टर क्यारी महोदय ने एक "तेलुगु-व्याकरण" लिखा,

1. A dictionary of Mixed dialects and Foreign works used in Telugu.

सन् १८१६ में ए० डी० काम्बेल महोदय ने एक दूसरा "तेलुगु-व्याकरण" प्रस्तुत किया, सन् १८१८ में एड्वर्ड प्रिटचेन ने "क्रोत्त-निबन्धनलु" नामक एक ईसाई धर्म-ग्रन्थ का प्रणयन किया, सन् १८२१ में डंकन काम्बेल महोदय ने "तेलुगु-निघंटुवु" का सम्पादन किया, उसके बाद बिशप काल्डवेल महोदय ने दक्षिण-भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण (Comparative Grammar of Dravidian Languages) नाम से द्राविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण लिखा। आधुनिक युग में अर्थात् सन् १८७३ में ए० एच० आर्डेन साहब ने भी एक तेलुगु-व्याकरण लिखा है। ब्राउन साहब के कोश इतने प्रामाणिक माने जाते हैं कि आज तक ऐसे कोशों का निर्माण तेलुगु-भाषा में नहीं हो पाया है। स्कूल और कॉलेजों की स्थापना के साथ अंग्रेजी पठन-पाठन का कार्य जोर पकड़ने लगा था, देशी भाषाओं को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ था, किन्तु इस नवीन शिक्षा के प्रकाश में देशी भाषाओं के विकासकर्ताओं से साहित्यकारों को नयी दृष्टि मिली थी।

प्राचीन परम्परा के कुछ अन्य कवि

इस युग में विशेष ख्याति-प्राप्त कतिपय प्राचीन परम्परा के साहित्यिकों का भी इस संदर्भ में उल्लेख करना असंगत न होगा।

मण्डपाक पार्वतीश्वर शास्त्री (ई० सन् १८३३ से १८९७ तक)

ये जोगम्मा और कामकवि के पुत्र थे। विशाखपट्टणम् के समीप में स्थित पालतेरु गाँव के निवासी थे और बोब्बिलि राजा के आश्रय में रहते थे। संस्कृत और तेलुगु-भाषा के ये पारंगत विद्वान् थे। इन्होंने कुल ८० ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें ३५ शतक हैं। इनके काव्य-ग्रन्थों में "राधाकृष्ण-संवादमु" "कांची-माहात्म्यमु", "अमरुक-काव्य" और "उमा-संहिता" उच्च कोटि के माने जाते हैं। इनके गद्य-ग्रन्थों में "यात्रा-चरित्र", "गुरुचित्र", "कथलघु", "चित्र-कथ" और "बोब्बिलि-महाराज-वंशावली" प्रसिद्ध हैं। "अक्षरमालिकाख्य-निघंटुवु" इनके अथक परिश्रम का फल है।

शास्त्रीजी के संस्कृत ग्रन्थों में "कविता-विनोद-कोशम्", "सीतानेतृस्तुति", "काशीश्वराष्टकम्" और "श्रीवेंकटगिरि प्रभु द्वयर्थिश्लोक कदंब" उल्लेखनीय हैं। इनकी कविता धारावाही, मधुर और प्रांजल होती है।

गोपीनाथमु वेंकट कवि (ई० सन् १८२० से १८९० तक)

ये नेल्लूर जिला लक्ष्मीपुर गाँव के निवासी थे। वेंकटगिरि के राजा के आश्रय में रहकर आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। आपके काव्य-ग्रन्थों में "गोपीनाथमु-रामायणमु", "शिशुपाल-वध", "कृष्ण-जन्म-खण्ड" और "भगवद्गीता-शास्त्र" प्रसिद्ध हैं। वेंकटगिरि के युवराजा श्री गोपालकृष्ण याचेन्द्र द्वारा कवि ने अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त किये थे।

तेलुगु में विरचित रामायणों में, मूल से कुछ भिन्न वृत्तान्तों के आधार पर आपने संस्कृत रामायण का तेलुगु-रूपांतर किया। कुछ पण्डितों का विचार है कि तेलुगु रामायणों में यह अत्यन्त उत्कृष्ट है। यह "गोपीनाथ-रामायण" नाम से प्रसिद्ध है। "कृष्ण-जन्म-खण्ड" की कथा-वस्तु ब्रह्म और वैवर्त पुराणों से गृहीत है। यह आठ आश्वासों का प्रबन्ध-काव्य है। इन्होंने "भगवद्गीता" को काव्य का रूप दिया और माघकृत "शिशुपाल-वध" का सरस रूपांतर किया।

त्यागराज मुदलि (ई० सन् १८३० से १८७५ तक)

ये संस्कृत, तमिल और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। तेलुगु सीखकर आपने काव्य-रचना की है। "विद्वत्-कर्णामृत" के नामांतर रूप में इन्होंने "सुब्रह्मण्य विजय" काव्य की रचना पाँच आश्वासों में ही की है। इसमें तमिलवासियों के आराध्य देव "षण्मुख" की कथा वर्णित है। इनका दूसरा ग्रन्थ "छन्द-रत्नाकर" नामक एक छोटा-सा लक्षण-ग्रन्थ है।

मंत्रिप्रेगड सूर्यप्रकाश कवि (ई० सन् १८०८ से १८७३ तक)

ये सीतम्मा और शरभराजामात्य के आत्मज तथा पिठापुरम् के समीप स्थित तिम्मापुरम् के निवासी थे। "माड्गुल" संस्थान के ये आस्थान कवि थे। इनकी कृतियों में "सीताराम-चरित्र" "कृष्णार्जुन-चरित्र" तथा 'भीमलिंग-शतक" विशेष उल्लेखनीय हैं। "सीताराम-चरित्र" छः आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है। यह भीमलिंगेश्वर को समर्पित है। "कृष्णार्जुन-चरित्र" दो आश्वासों का द्व्यर्थि काव्य है। इसमें कृष्ण और अर्जुन की कथाएँ वर्णित हैं। इसमें शब्द-श्लेष की

अपेक्षा अर्थ-श्लेष पर अधिक ध्यान दिया गया है। उदाहरणस्वरूप यहाँ उनका एक पद्य उद्धृत है—

समयमेन्नक भीष्म कजातकेलि
निलय सन्निधिजेरुट नलरुवार्त
विनिन सत्य विरक्ति दुर्वृत्ति यनुचु
जाल निंदिंपकुंडुने जगति नन्नु।

(प्रथमाश्वास, पृष्ठ १००)

इसमें कृष्ण-कथा और अर्जुन के वृत्तान्त का वर्णन है—

ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। इनकी अनेक चाटूक्तियाँ संस्कृत भाषा में उपलब्ध हैं। "भीमलिंग-शतक" तेलुगु भाषा की सुन्दर लोकोक्तियों, मुहावरों तथा कहावतों का संग्रह कहा जा सकता है।

इस युग की विशेषताएँ—

इस युग की विशेषताओं का निम्नलिखित पंक्तियों में संक्षेप में विवेचन किया गया है—

(१) इस युग में ऐसा कोई विशाल साम्राज्य न था, जिसके अन्तर्गत सारा आन्ध्र अपनी सर्वतोमुखी उन्नति करता। आन्ध्र देश अनेक छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त था। ऐसे राज्यों में बोब्बिलि, वेंकटगिरि, विजयनगरम्, चन्द्रगिरि, पिठापुरम् आदि मुख्य हैं।

(२) इस युग के अधिकांश कवियों को छोटे-छोटे राज्यों में राजाश्रय प्राप्त था। तंजाऊर, मदुरा, पुदुक्कोट, मैसूर, गद्वाल, अमरावती, विजयनगरम्, पिठापुरम्, वेंकटगिरि आदि राज्यों के अतिरिक्त छोटे-मोटे जमींदार, जागीरदार तथा धनिकों के यहाँ भी साहित्यिक सभाएँ आयोजित होती रहती थीं।

(३) प्रबन्ध-काव्यों की रचना विपुल मात्रा में हुई, किन्तु उसमें उच्च आदर्शों का अभाव था। इस युग में भोग-विलास का नग्न-चित्र साहित्य में स्थान पाने लगा था, इसीलिए इस युग के साहित्य में सामाजिक पतन का प्रतिबिम्ब दर्शित होता है।

(४) भाषांतरीकरण का कार्य पुनः इस युग में प्रारम्भ हुआ तथा संस्कृत के अनेक काव्य, शास्त्र, पुराण इत्यादि का तेलुगु में रूपांतर हुआ।

(५) रीति-ग्रन्थों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई। कोश, व्याकरण, तथा अन्य शास्त्र-ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ।

(६) रसराज शृंगार का मधुर पक्ष लुप्त हो गया और अश्लीलता ने उसका स्थान ग्रहण किया। कामुकता और वासना को उत्तेजित करने वाला साहित्य राजाश्रय पाकर खूब पनपा।

(७) काव्य के सृजन में भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष को अधिक प्रश्रय मिला। कवि अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन में लगे रहे। रसात्मक काव्यों की जगह कौतूहलवर्द्धक ग्रन्थ अधिक रचे गये। द्वयर्थी और त्र्यर्थी काव्य इसके उदाहरण हैं।

(८) गद्य-ग्रन्थों का शुभारम्भ हुआ और गद्य की विविध प्रवृत्तियों तथा शाखाओं के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।

(९) अच्च तेलुगु या ठेठ तेलुगु भाषा में काव्य-रचना का सूत्रपात इसी समय विशेष रूप से हुआ और इसका आशातीत विकास भी हुआ।

(१०) नाटकों की सर्जना हुई तथा आधुनिक युग के नाटकों का प्रारम्भिक रूप निखर उठा। संगीत-नृत्य-रूपक, यक्ष-गान, विशेष लोकप्रिय हुए। यक्ष-गानों का चरम विकास भी इसी युग में हुआ। तेलुगु-साहित्य की प्रक्रिया अपनी अलग विशेषता रखती है। आज भी इनका प्रदर्शन होता है।

(११) दूषण अथवा निन्दात्मक काव्यों की रचना भी इसी युग में अधिक हुई। इस परम्परा के उन्नायक आडिदम सूरकवि, पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि इत्यादि हैं। वेमुलवाड भीमकवि ने ही इस कविता का प्रारम्भ १२वीं शदी में किया था, किन्तु इस युग में उस प्रक्रिया ने काव्य का रूप ग्रहण किया और उसकी बहुलता दृष्टिगत हुई।

(१२) शतक-साहित्य इस युग में समृद्ध हुआ तथा विभिन्न विषयों पर शतक रचे गये। काव्य के विविध अंगों में शतक को भी समादरपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

(१३) पद या गीत-साहित्य उच्चतम शिखर पर जा पहुँचा और पण्डित

से लेकर पामर तक सब का कंठ-हार बना। इसका श्रेय क्षेत्रय्या और त्यागय्या को प्राप्त है।

(१४) आशु-कविता का प्रदर्शन, समस्या-पूर्ति, शतावधान तथा अष्टावधान इस युग की अन्य विशिष्ट प्रवृत्तियाँ हैं। रघुनाथ नायक तथा विजय-राघव नायक के दरबारों में यह प्रक्रिया खूब पनपी और माडभूषि वेंकटाचारी और शिष्टु कृष्णमूर्ति ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

(१५) उत्तम श्रेणी की कवयित्रियाँ भी इस युग में हुई तथा नारी-सहज कोमल प्रवृत्तियों का चित्रण उनके काव्यों में हुआ। रंगराजम्मा-जैसी कवयित्री का स्वर्णाभिषेक इसी काल में हुआ था। तेलुगु-साहित्य के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी।

(१६) इस युग में तेलुगु के साथ संस्कृत-काव्यों का भी अच्छे परिमाण में सर्जन हुआ।

(१७) राजाओं की दिनचर्या को काव्य-रूप देने का सफल प्रयत्न भी इस युग में हुआ। रघुनाथाभ्युदय, विजयराघवाभ्युदय इसी श्रेणी के काव्य हैं।

(१८) सुदूर दक्षिण में तमिलनाडु में स्थापित आन्ध्र-राज्यों में (तंजाऊर, मदुरा, पुदुक्कोट) तेलुगु-साहित्य की यश-पताका इसी युग में फहरायी। महाराष्ट्र के राजाओं ने भी तेलुगु में पाण्डित्य प्राप्त किया और स्वयं ग्रन्थ लिखे, यह इस युग की एक अविस्मरणीय घटना कही जा सकती है।

(१९) कुछ पंडितों के विचार से यह काल क्षीण-युग अथवा ह्रास-युग माना जाता है, किन्तु मेरे विचार में यह कहना ठीक नहीं है। कवि और उनके काव्यों की बहुलता, विविध साहित्यिक विधाओं का विकास तथा व्यापकता की दृष्टि से यह युग पर्याप्त सम्पन्न कहा जा सकता है। उपादेय साहित्य की परिभाषा देना भी तो कठिन है, क्योंकि साहित्य उस युग की जनता की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब होता है और एक युग की तुलना दूसरे युग से करते समय अनेक बातों को दृष्टि में रखना आवश्यक होता है। 'रायलु-युग' के प्रबन्ध-काव्यों के साथ इस युग के काव्यों की तुलना नहीं हो सकती। इस युग की अन्य विधाओं के साथ तुलना करने के लिए "रायलु-युग" में ऐसी प्रक्रियाओं का प्रणयन भी तो नहीं हुआ था। अलावा इसके, दो महान् युगों का मिलन करानेवाला यह "संक्रान्ति-

युग" था, इसमें प्रबन्ध-युग तथा आधुनिक-युग दोनों की विशेषताएँ आँख-मिचौनी करती दृष्टिगोचर होती हैं। आधुनिक-युग की पृष्ठ-भूमि यहीं तैयार हुई, अतः यह युग नवीन युग के लिए अर्वाचीन-युग कहलाता है।

(२०) इस युग में जितनी संख्या में कवि हुए हैं, उन सबका नामोल्लेख करना भी सम्भव नहीं हो सका। सैकड़ों ग्रन्थ इस काल में रचे गये। उनमें कुछ तो उत्तम और उच्च कोटि के कहे ही जा सकते हैं। मानव की कोमल चित्तवृत्तियों का चित्रण इस युग में बड़ी कुशलता के साथ हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। असंख्य दोषों के बीच थोड़े से जो भी गुण उपलब्ध होते हैं, उन गुणों को देखा जाय तो हमें सन्तोष होगा कि तेलुगु-वाङ्मय को इस युग की देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

१

आधुनिक युग या नवीन युग

(ई० सन् १८५१ से आज तक)

तेलुगु वाङमय के आधुनिक युग का श्रीगणेश उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ। यह समय भारतवर्ष के इतिहास, समाज और साहित्य में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील रहा है। इस युग की समस्त प्रवृत्तियों व परिस्थितियों का प्रभाव तेलुगु-साहित्य पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अत: इस युग के साहित्य का विवेचन करने के पूर्व तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दशाओं का परिचय प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

राजनीतिक दशा

ई० सन् १८५१ से ही भारतीय जनता में परतन्त्रता के बन्धन तोड़कर स्वतन्त्र होने की अभिलाषा बलवती होने लगी और सन् १८५७ में भारत वासियों का प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम प्रारम्भ हुआ। यद्यपि अंग्रेज इतिहासकारों ने उसे "सिपाही-विद्रोह" अथवा "गदर" की संज्ञा दी, किन्तु वह संग्राम भारतीय नागरिकों की आकांक्षा, अभिलाषा और संकल्प का मूर्त रूप था। इस संग्राम में भारतीयों के पराजित होने के कारण ब्रिटिश शासन-सत्ता की जड़ें जम गयीं, पर यह स्मरण रहे कि उसके बाद केवल कुछ समय के लिए देश में शान्ति अवश्य क़ायम हुई, किन्तु भारतीय नेता स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए अन्य मार्गों का अन्वेषण करने में तल्लीन हो गये।

ई० सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। क्रमश: स्वतन्त्रता आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। सन् १९०५ में वंग-भंग हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज-शासन के प्रति भारतवासियों के हृदय में घोर घृणा पैदा हुई और उन्होंने सामूहिक

रूप से उसका विरोध किया। ई० सन् १९१३ में आन्ध्र देश के बापट्ला नामक शहर में प्रथम आन्ध्र महासभा का अधिवेशन हुआ और लगातार ४० वर्ष तक अलग आन्ध्र-राज्य की स्थापना के हेतु आन्दोलन चलता रहा, जिसके परिणाम-स्वरूप सन् १९५३ के अक्टूबर की पहली तारीख को आन्ध्र राज्य का अवतरण हुआ तथा सन् १९५६ के नवम्बर की पहली तारीख को आन्ध्र-प्रदेश का निर्माण हुआ। इस आन्दोलन का प्रभाव तेलुगु-साहित्य पर पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के हेतु गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग-आन्दोलन, नमक-सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह, झण्डा-सत्याग्रह, भारत-छोड़ो-आन्दोलन चलाये गये और एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त सन् १९४७ में १५ अगस्त को हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। सन् १९५० के जनवरी २६ को भारत में लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना हुई।

सामाजिक दशा

तत्कालीन भारतीय समाज में बाल-विवाह, छुआछूत, देवदासी-प्रथा, दहेज-प्रथा, जाति-पाँति का भेद-भाव, सहगमन इत्यादि असंख्य कुरीतियाँ व्याप्त थीं। अंग्रेजों ने ईसाई-धर्म का दक्षिण में तीव्र प्रचार करना प्रारम्भ किया था, जिससे हरिजन इत्यादि निम्न वर्ग के लोग आकर्षित हो बहुत बड़ी संख्या में अपना धर्म-परिवर्तन करने लगे थे। उच्च वर्ग के लोगों ने भी पद व प्रतिष्ठा प्राप्त करने के हेतु ईसाई-धर्म को ग्रहण करना प्रारम्भ किया। ऐसी स्थिति में हमारे समाज में सुधार लाने के अभिप्राय से राजा राममोहन राय ने बंगाल में ब्राह्म-समाज की स्थापना की और "सहगमन" प्रथा के निर्मूलन में वे सफल हुए। तत्पश्चात् ब्राह्म-समाज सन् १८६५ से श्री केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में और महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानडे के दिशा-निर्देश में आगे बढ़ने लगा। गुजरात में स्वामी दयानन्द सरस्वती के अविरल प्रयत्न के कारण आर्य-समाज का प्रचार बड़ी द्रुत गति के साथ होने लगा।

इधर आन्ध्र देश में ब्रह्मर्षि सर रघुपति वेंकटरत्नम् के नेतृत्त्व में ब्राह्म-समाज की स्थापना हुई। इस समाज की ओर से सामाजिक दुराचारों के प्रक्षालन का कार्य आरम्भ हुआ। बाल-विवाहों का निषेध, विधवा-विवाहों को प्रोत्साहन, जाति-

पाँति के भेदभाव का निर्मूलन, अनाथ शिशुओं का संरक्षण, देवदासी-प्रथा का बहिष्कार, वेश्या-वृत्ति का निरोध इत्यादि कार्यक्रम सफलता के साथ संचालित होने लगे। नायुडुजी ने अंग्रेजी-पत्रों में लेख लिखकर तथा सभा-समाजों में भाषण देकर ब्राह्म-समाज को बल प्रदान किया। इसका प्रभाव राव बहादुर श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु पर ऐसा पड़ा कि उन्होंने उपयुक्त कार्यक्रमों को न केवल आचरण द्वारा सफल बनाया, अपितु साहित्य द्वारा प्राणपण से उसका विपुल प्रचार भी किया। इन कुरीतियों को जड़ से निकाल फेंकने के लिए पंतुलुजी ने गद्य की विभिन्न प्रक्रियाओं को साधन बनाया और इस प्रकार नवीन साहित्य का श्रीगणेश किया।

साहित्यिक दशा

ई० सन् १८५७ में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास नगरों में विश्व-विद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी। विश्वविद्यालयों के भारतीय विद्यार्थियों ने अंग्रेजी-साहित्य का अध्ययन करना शुरू किया और उन्हें इससे अपने साहित्य को भी समृद्ध बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त श्री सी० पी० ब्राउन, बिशप काल्डवेल, ए० डी० काम्बेल, डाक्टर क्यारी साहब, डंकन काम्बेल महोदय, ए० एच० आर्डन इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों ने तेलुगु-वाङ्मय की जो अपार सेवा की, उसका भी अमिट प्रभाव तेलुगु-विद्वानों पर पड़ा।

बंगाल में सर विलियम जोन्स महोदय ने संस्कृत-वाङ्मय का अध्ययन कर इस पर अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ किया और विश्व-विद्यालयों में संस्कृत भाषा को पाठ्य विषय बनाया गया। संस्कृत के अध्ययन से तेलुगु विद्वानों में आत्मविश्वास की भावना जागृत हुई। अंग्रेजी के उपन्यासकार स्काट, लिटेन, जेन, थेकरी, आस्टिन, डिकेन्स के उपन्यासों ने आन्ध्र के युवकों में नवीन चेतना भर दी तो कीट्स, शेली, बाइरन आदि अंग्रेजी कवियों की भाव-कविताओं का प्रभाव भी उन पर पड़ा। शेक्सपियर, गोल्डस्मिथ, शेरिडान, मौलियर आदि अंग्रेज नाटककारों के नाटकों के साथ-साथ उन्होंने कालिदास, शूद्रक, भवभूति आदि के संस्कृत नाटकों का भी अध्ययन किया। इन दोनों समुन्नत एवं सम्पन्न वाङ्मयों के अध्ययन से आन्ध्र में नवीन युग का बीजारोपण हुआ। प्रथम उपर्युक्त

प्रक्रियाओं का प्रभाव बंगाल पर अधिक पड़ा। बंकिमचन्द्र चटर्जी महोदय ने अपनी अपूर्व प्रतिभा से नव्य रीतियों में भव्य साहित्य को जन्म दिया। उनका प्रभाव समस्त भारतीय भाषाओं तथा साहित्यों पर प्रतिबिम्बित हुआ।

सामान्य परिचय

आधुनिक युग का तेलुगु-साहित्य प्रधानतः गद्य, पद्य और नाटक—तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। गद्य के विभिन्न अंगों का—जैसे उपन्यास, कहानी, निबन्ध, प्रहसन, समालोचना, जीवनी, यात्रावृत्तान्त, आत्म-कथा, शास्त्र-ग्रन्थ, नीति-नाटक इत्यादि का प्रादुर्भाव और विकास इसी युग में हुआ। इन विधाओं के विकास का परिचय अगले अध्यायों में किया गया है।

इस युग की एक विशेषता यह भी है कि कविता में जहाँ नवीन रीतियों का जन्म हुआ, वहाँ प्राचीन परिपाटी का भी कुछ समय तक पोषण होता रहा। आधुनिक युग की तेलुगु-कविता प्रधानतः चार धाराओं—(१) सम्प्रदाय-सिद्ध प्राचीन कविता-पद्धति, (२) भाव-कविता-पद्धति, (३) जातीय कविता-पद्धति और (४) अभ्युदय कविता-पद्धति में प्रवाहित हुई।

गद्य का विकास

गद्य-साहित्य के क्षेत्र में भी इस युग में अभूतपूर्व घटनाएँ घटित हुईं। तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान् श्री परवस्तु चिन्नयसूरि (ई० सन् १८०६ से १८६२) ने ई० सन् १८५५ में "बाल-व्याकरण" नाम से एक प्रमाणिक तेलुगु व्याकरण प्रस्तुत किया। यद्यपि इसका नाम "बाल-व्याकरण" है, किन्तु विषय की दृष्टि से यह अत्यन्त प्रौढ़ है। उन्होंने इस व्याकरण द्वारा आधुनिक तेलुगु-भाषा का स्वरूप निर्द्धारित किया और "नीति-चन्द्रिका" नाम से प्रथम प्रामाणिक गद्य-ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस प्रकार नवीन गद्य-शैली का बीजारोपण हुआ और साथ ही भाषा का अनुशासन भी। इसका परिणाम यह हुआ कि कविता की भाँति गद्य की रचना सलक्षण (व्याकरण सम्मत) भाषा में करने की परम्परा चल पड़ी। अलावा इसके, चिन्नय सूरि सन् १८५७ में मद्रास-विश्वविद्यालय में तेलुगु भाषा के प्राध्यापक और निर्देशक

नियुक्त हुए। इन्होंने एक अत्यन्त प्रामाणिक तेलुगु-शब्द-कोश-निर्माण का कार्य भी शुरू किया, किन्तु वह अपूर्ण ही रहा। इस प्रकार वे तेलुगु-गद्य-गंगावतरण के अपर भगीरथ सिद्ध हुए। इस धारा को दश दिशाओं में प्रवाहित करनेवाले कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु थे। कहानी को छोड़ शेष समस्त गद्यांगों का आपने बीजारोपण किया और "गद्य-ब्रह्म" नाम से विख्यात हुए।

गद्य के विकास-क्रम में और गति लानेवाले श्री गिडुगु राममूर्ति पंतुलु थे। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि व्याकरण के नियमों में निबद्ध ग्रन्थ-(साहित्यिक) भाषा में तथा साधारण जनता में व्यवहृत लोक-भाषा (व्यावहारिक भाषा) में बहुत बड़ा अन्तर है। उन्होंने अभिव्यक्त किया कि इस अन्तर को दूर करके व्यावहारिक भाषा में ग्रन्थ-रचना करने पर शिक्षा का प्रचार व प्रसार अधिक तेजी के साथ हो सकता है। इस कार्य में पंतुलु ने अपना सर्वस्व लगाया। व्यावहारिक भाषावाद नाम से एक आन्दोलन के ये प्रवर्तक हुए। इस वाद की पुष्टि के हेतु उन्होंने महत्त्वपूर्ण साहित्य का सृजन किया। विश्व-विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में व्यावहारिक भाषा को स्थान दिलाने का भी यथा-शक्ति प्रयत्न किया, किन्तु जयन्ति रामय्या पंतुलुजी के नेतृत्व में इस वाद का तीव्र विरोध हुआ। इसके खण्डन-मण्डन में उत्तम साहित्य आया। आज व्यावहारिक भाषा का ही प्रयोग समस्त पत्र-पत्रिकाओं तथा अधिकांश पुस्तकों में हो रहा है। विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्य-क्रम में, मुख्यतः पठित पुस्तकों में अभी तक इनके ग्रन्थों को स्थान नहीं दिया है, किन्तु व्यावहारिक भाषा की अपठित पुस्तकें इसमें स्वीकृत की हैं।

अनुसंधान-कार्य, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का परिमार्जन, सम्पादन व मुद्रण, साहित्यिक इतिहास, भाषा-शास्त्र पर अनुशीलात्मक ग्रन्थों का सृजन इस समय तेजी से हुआ। इनके अतिरिक्त रीति-ग्रन्थ, कोश, विविध शास्त्र-ग्रन्थ, विश्व-कोश आदि का भी प्रणयन इस युग में हुआ, जिनका परिचय आगे दिया जायगा।

तेलुगु-साहित्य के अभिवर्धन के लिए "साहिती-समिति", "नव्य साहित्य-परिषद्", "नाटक कला-परिषद्", "तेलुगु-भाषा-समिति", "आन्ध्र-साहित्य-परिषद्" तथा विश्वविद्यालयों की ओर से भी उल्लेखनीय कार्य हुआ है। पत्र-

पत्रिकाओं ने तेलुगु साहित्य के अभ्युत्थान में जो अभूतपूर्व योगदान दिया है, वह चिरस्मरणीय है। इस प्रकार यह युग विविधता, उत्तमता और नवीनता की दृष्टि से अधिक समुन्नत और व्यापक है। इस युग की साहित्यिक विधाओं में प्रथम गद्य-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि इस युग में प्रामाणिक गद्य का सृजन और विकास हुआ है, अतः इस युग का नामकरण "गद्ययुग" भी किया जा सकता है, किन्तु इस युग में पद्य-साहित्य भी कम नहीं लिखा गया है। पाश्चात्य कविता-रीतियों को हृदयंगम करके इस युग के कवियों ने उन समस्त शैलियों को तेलुगु-साहित्य में लाने का प्रयत्न किया है, जिनके कारण पाश्चात्य साहित्य समृद्ध कहा जाता है। इस युग की प्रवृत्तियों में नवीनता है, अतः इस युग का नवीन युग नामकरण ही अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होता है।

पुराण-युग में नन्नय ने "महाभारत" और "आन्ध्र-शब्द-चिंतामणि" की रचना करके उस युग का प्रवर्तन किया, वैसे ही इस युग में चिन्नय सूरि ने "नीतिचन्द्रिका" नामक प्रामाणिक गद्य-ग्रन्थ तथा "बाल-व्याकरण" की रचना करके इस युग का नेतृत्व किया, अतः आधुनिक तेलुगु-गद्य-साहित्य का शुभारम्भ इन्हीं से माना जाता है।

परवस्तु चिन्नय सूरि (ई० सन् १८०६ से १८६२ तक)

आधुनिक तेलुगु गद्य-शैली का श्रीगणेश चिन्नय सूरि ने किया। गद्य-स्वरूप के निर्माता ही नहीं थे, अपितु "बाल-व्याकरण" की रचना करके इन्होंने भाषा पर अनुशासन भी किया और "आन्ध्र-पाणिनी" नाम से ख्याति प्राप्त की। इन्होंने प्रामाणिक गद्य में "नीति-चन्द्रिका" का सृजन करके भावी पीढ़ी का मार्ग-दर्शन भी किया। यों तो इनके पूर्व अनेक गद्य-ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ था, किन्तु "नीति-चन्द्रिका" जैसे उत्तम और प्रामाणिक ग्रन्थों का सृजन नहीं हुआ था। सूरि की गद्य-शैली विलक्षण और सुरुचिपूर्ण है।

चिन्नय सूरि तेलुगु, संस्कृत, तमिल, प्राकृत के तो उद्भट विद्वान् थे ही, अंग्रेजी के भी अच्छे ज्ञाता थे। तर्क और अलंकार-शास्त्र, मीमांसा और संगीत-शास्त्रों का भी इन्होंने समुचित अध्ययन किया था। इन्होंने तत्कालीन अंग्रेज अफ़सरों

को तेलुगु और संस्कृत पढ़ा कर उनमें तेलुगु और संस्कृत साहित्यों के प्रति अभिरुचि पैदा की। सूरि ने बहुत समय तक पच्चयप्पा कॉलेज तथा प्रेसिडेन्सी कॉलेज में भी तेलुगु के प्राध्यापक के पद पर कार्य किया। उस समय के विश्वविद्यालय के अधिकारी ए० जे० आर्बतनट साहब ने चिन्नय सूरि की योग्यताओं की जाँच कराने के विचार से काशी से तर्क और मीमांसा के मर्मज्ञ विद्वानों को बुलाया और उस परीक्षा में योग्य साबित होने पर लन्दन से "चिन्नय सूरि" नामक अक्षर खुदे हुए स्वर्ण-कंकण मँगवा कर उन्होंने सूरि को भेंट किया।

सूरि ने एक कोश का कार्य भी प्रारम्भ किया था। किन्तु असामयिक देहावसान होने के कारण वह कार्य अधूरा ही रह गया। उनके शिष्य बहुजनपल्लि सीतारामाचार्युलु ने "शब्द-रत्नाकर" नाम से एक बृहत् कोश का निर्माण किया। चिन्नय सूरिकृत "सूत्रांध्र-व्याकरण" और "आन्ध्र-धातु-माला" का आन्ध्र-साहित्य परिषद् ने प्रकाशन किया है।

सूरिजी एक कुशल कवि और लेखक के साथ एक सफल सम्पादक भी थे। इन्होंने "सुजन-रंजनी" पत्रिका का सम्पादन भी कुछ वर्ष तक किया। "वाणी-दर्पण" नामक एक मुद्रणालय की स्थापना करके आपने अपनी गद्य-कृति "नीति-चन्द्रिका" का प्रथम मुद्रण सन् १८५३ में कराया था।

इनका जन्म जिला चेंगलपट के पेरंबुदूर में हुआ था, किन्तु इनका अधिकांश जीवन मद्रास नगर में ही व्यतीत हुआ। ये श्रीनिवासांबा तथा वेंकटरंगय्या के आत्मज थे।

इनकी अन्य कृतियाँ—"चिंतामणि-वृत्ति", "पद्यांध्र-व्याकरण", "शब्द-लक्षण-संग्रह". "नीति-संग्रह", "विभक्ति-बोधिनी", "आदि-पर्व-वचनमु", "आन्ध्र-कौमुदी", "आन्ध्र-कादम्बरी" और "यादवाभ्युदयमु" हैं।

बहुजनपल्लि सीतारामाचार्युलु (ई० सन् १८२७ से १८०१ तक)

नागपट्टणम् इनका जन्मस्थान तथा मद्रास इनका निवास-स्थान था। रीति-शास्त्रकारों में इनका अनुपम स्थान है। आचार्यजी की कीर्ति को आलोकित करने वाले ग्रन्थ "शब्द-रत्नाकरमु" नामक कोश तथा "प्रौढ़-व्याकरण" नाम से लोकप्रिय ग्रन्थ "त्रिलिंग-शेषमु" हैं। आचार्युलुजी ने वर्ण क्रम पद्धति में "शब्द-

रत्नाकर" का प्रणयन किया है। इस पद्धति में इनके पूर्व ए० डी० काम्बेल तथा सी० पी० ब्राउन नामक पाश्चात्य विद्वानों ने निघंटुओं के निर्माण का सूत्रपात किया था। अक्षर या वर्णक्रम-रीति पर रचित शब्द-कोशों में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसमें शास्त्रीय पद्धति पर शब्दों का रूप-निर्णय तथा अर्थ-निर्णय किया गया है। इस कोश का प्रकाशन सन् १८८५ में हुआ था। प्रकाशकों ने आचार्यजी के परिश्रम का यद्यपि पाँच सहस्र मुद्राओं से ही मूल्यांकन किया था, किन्तु विद्वान् मानते हैं कि वह पाँच लाख रुपयों से भी मूल्यवान् ग्रन्थ है। निघंटु की रचना निर्विघ्न समाप्त होने के विचार से इन्होंने "विनायक-शतक" का सृजन किया। कोश का रचना-कार्य सन् १८६२ में प्रारम्भ होकर सन् १८८५ में अर्थात् २३ वर्षों में समाप्त हुआ है।

आचार्युलुजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "प्रौढ़-व्याकरण" है। यह ग्रन्थ "बाल-व्याकरण" का शेषांश अथवा परिशिष्ट माना जाता है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—"सौन्दर्य राज-स्वामी-शतक", "वैकृत-दीपिका", "पदार्थ-नामकोश", "बालचन्द्रोदय", "अलघु-कौमुदी", "नीति-माला", "प्रसन्न-पारिजात", "आन्ध्र-शब्द मंजरी" आदि।

कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु (ई० सन् १८४८ से १९१९ तक)

"गद्य ब्रह्म" तथा "गद्य-तिक्कना" नाम से विख्यात वीरेशलिगम् पंतुलुजी की सेवा तेलुगु-साहित्य में चिरस्मरणीय तथा वन्दनीय है। ये बहुमुखी प्रतिभा लेकर साहित्य के क्षेत्र में अवतरित हुए। आधुनिक तेलुगु-गद्य के विभिन्न अंगों का शुभारम्भ इन्होंने ही किया। पाश्चात्य संस्कृति और अंग्रेजी-शिक्षा की अच्छाइयों को इन्होंने भली-भाँति हृदयंगम किया और आन्ध्र देश में उनको फैलाने का प्रयत्न किया।

वीरेशलिंगम्जी एक ही साथ समाज सुधारक तथा लेखक भी थे। साहित्य को उन्होंने समाज-सुधार का साधन भी बनाया, साथ ही विशुद्ध ज्ञान-वर्द्धक तथा आनन्ददायक प्रामाणिक वाङ्मय का भी प्रणयन किया। नारी-समाज को शिक्षित बनाने, विधवाओं के अन्धकारमय जीवन को आलोक प्रदान करने तथा सामाजिक दुराचारों को दूर करने में इन्होंने अनवरत उद्योग किया और तन-मन

तथा धन लगाकर अपना सर्वस्व होम कर दिया। बाल-विवाहों को बन्द कराया, विधवा-विवाह तथा अन्तर-वर्ण विवाह कराकर ये अपनी बिरादरी तथा समाज के भी कोपभाजन हुए, उनका बहिष्कार सहा, धमकियाँ और गालियाँ सुनीं और उनकी जोर-जबर्दस्ती सही, पर अपने निश्चय पर अटल रहे।

समाज की आधी संख्या नारी जाति के उद्धार के हेतु इन्होंने "विवेक-वर्द्धनी" नामक मासिक पत्रिका चलायी। उस पत्रिका द्वारा श्रुति, स्मृति एवं पुराणों से प्रमाण देकर विधवा-विवाहों की उपयुक्तता जतायी तथा सनातनी पण्डितों का मुँह बन्द किया। "वितन्तु (विधवा)-शरणालय" की स्थापना करके इन्होंने तीस हजार रुपयों का चन्दा भी दिया। स्त्री-शिक्षा को बलप्रदान करने के हेतु इन्होंने जबर्दस्त आन्दोलन किया और असंख्य गाँव और शहरों में बालिका पाठ-शालाएँ खुलवायीं। बड़ी निर्भीकता के साथ इन्होंने सामाजिक कुरीतियों का खण्डन किया। इनकी सेवाओं से प्रसन्न और प्रभावित हो सरकार ने इनको सन् १८९३ में "राव-बहादुर" नामक उपाधि प्रदान की।

साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने विविध प्रकार की विधाओं का बीजारोपण किया और वे सब उन्हीं के समय में पल्लवित तथा पुष्पित भी होने लगे। अंग्रेजी-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करके उसकी विभिन्न उदात्त प्रक्रियाओं का तेलुगु में समारम्भ किया। इस कार्य को हाथ में लेने के पूर्व इन्होंने प्राचीन प्रबन्ध संप्रदाय के अनुकरण पर "शुद्धांध्र-निरोष्ठ्य-निर्वचन-नैषधमु", "शुद्धांध्र-भारत-संग्रहमु" इत्यादि काव्य लिखे, किन्तु इन्होंने यह अनुभव किया कि प्रौढ़ एवं सुदीर्घ समासों तथा शब्द-चित्रों से पूर्ण कृतियाँ सर्व साधारण जनता के लिए लाभदायक नहीं हैं, सरल गद्य-कृतियाँ ही विशेष उपयोगकारी सिद्ध हो सकती हैं। तेलुगु भारती की उस समय की अवस्था का परिचय देते हुए इन्होंने "सरस्वती-नारद-संवाद" नामक खण्ड काव्य लिखा और साथ ही चिन्नय सूरि द्वारा प्रवर्तित गद्य-शैली में पंतुलुजी ने "संधि-विग्रह" की रचना की। इसकी शैली प्रौढ़ होने के कारण गद्य को अधिक स्पष्ट, सुबोध, ज्ञानवर्द्धक और सरल बनाने में समर्थ है। यहीं से वीरेशलिंगम् के जीवन में नया अध्याय प्रारम्भ होता है।

पंतुलुजी ने कुल मिलाकर १३० ग्रन्थ लिखे। उनमें संस्कृत और अंग्रेजी के अनुवाद तथा मौलिक ग्रन्थ भी हैं। ई० सन् १८७८ में पंतुलुजी ने अंग्रेजी

के विख्यात विद्वान् गोल्डस्मिथकृत "विकार ऑव वेकफ़ील्ड' के अनुकरण पर "राजशेखर-चरित्र" का प्रणयन किया। यह तेलुगु-साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है। इसमें हिन्दू-समाज की कुरीतियों का खण्डन किया गया है। यह उपन्यास इतना लोकप्रिय और सफल माना गया कि एक अंग्रेज लेखक ने बहुत ही प्रभावित हो "फ़ार्चून्स ह्वील" (Fortune's wheel) नाम से इसका अंग्रेजी रूपांतर प्रकाशित किया। इसी प्रकार गलिवर्स ट्रावेल्स का "सत्यराजा-पूर्वदेश यात्रलु" नाम से तेलुगु-अनुवाद प्रकाशित किया। इसमें भी सनातन विचार वालों की खूब आलोचना की गयी है। यद्यपि उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ अंग्रेजी कृतियों के अनुकरण पर रचे गये हैं, किन्तु मौलिकता से पूर्ण होने के कारण परवर्ती लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शक बन गये हैं।

इसी प्रकार सन् १८८३ में पंतुलुजी ने कालिदासकृत "अभिज्ञान शाकुंतल" का तेलुगु रूपांतर प्रकाशित किया। यह अनुवाद आज भी सबसे उत्तम अनुवाद माना जाता है। इसके पश्चात् इन्होंने "मालविकाग्नि-मित्र", "प्रबोध-चन्द्रोदय", "रत्नावली" आदि संस्कृत नाटकों का तथा "चमत्कार-रत्नावली" "कल्याण-कल्प-वल्पी", "राग-मंजरी", "वेनीसुवर्तकोदंतमु" आदि नामों से अंग्रेजी नाटकों का सुन्दर, सरल और सरस अनुवाद प्रस्तुत किया। "प्रह्लाद-नाटक", "दक्षिण गोग्रहणमु", "सत्य-हरिश्चन्द्र", "विवेक-दीपिका" इत्यादि इनके मौलिक नाटक हैं।

इन्होंने तेलुगु में सर्वप्रथम "प्रहसन" का भी सूत्रपात किया। सामाजिक सुधार को लक्ष्य बनाकर इन्होंने दर्जनों प्रहसनों की रचना की है। उनमें "अपूर्व-ब्रह्मचर्य-प्रहसन", "विचित्र-विवाह", "कलह-प्रिया", "बलात्कार-गान-विनोद", "वेश्या-प्रिय", "महावंचक", "असहायशूर", "कौतुकवर्द्धनी" उल्लेखनीय हैं।

नारी वर्ग के समुत्थान के विचार से इन्होंने "सत्यवती-चरित्र", "चन्द्रमती-चरित्र", "सत्यसंजीवनी", "सतीमणि-विजयमु", "भानुमती-कल्याण", आदि महिलोपयोगी साहित्य का प्रणयन किया। साथ ही "श्रीविक्टोरिया महाराज्ञी-चरित्र, "जीसस-चरित्र" आदि जीवनियाँ लिखकर इन्होंने "जीवनी-साहित्य" का भी तेलुगु में श्रीगणेश किया।

"स्वीय-चरित्र" नाम से अपनी आत्म-कथा सन् १९१० में लिखकर इस

प्रक्रिया का भी प्रारम्भ इन्होंने ही किया। यह ग्रन्थ उस युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों का दर्पण भी कहा जा सकता है।

पंतुलुजी की कीर्ति का केतु उनका "आन्ध्र-कवुल-चरित्र" है। आदि कवि से लेकर अपने समय तक के समस्त कवियों का प्रामाणिक जीवन तथा साहित्यिक परिचय इन्होंने तीन भागों में प्रस्तुत किया है। कवियों का काल-निर्णय तथा ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण करने में लेखक ने इसमें अपनी असाधारण क्षमता का परिचय दिया है। तेलुगु-साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने के लिए आज भी ये ग्रन्थ आधारभूत बने हुए हैं।

पंतुलुजी एक अच्छे समीक्षक और अनुसन्धानकर्ता थे। इन्होंने असंख्य प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संशोधन कर उन्हें प्रकाशित किया। उनमें नाचन-सोमनाकृत "उत्तर हरिवंश" अनन्त कवि का "भोजराजीय", चेरिगोंड धर्मना द्वारा विरचित "चित्र-भारत", नारायण कवि रचित "पंचतंत्र", मोल्लांबा कृत "रामायण" नन्दिमल्लया तथा घंटसिंगय्या द्वारा प्रणीत "वराह-पुराण" इन्हीं के द्वारा संपादित और प्रकाशित किये गये हैं।

इनके अतिरिक्त असंख्य शास्त्र-ग्रन्थों के प्रणयन का भी इन्होंने सूत्रपात किया है। इन्होंने तर्क-संग्रह, ज्योतिष-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र इत्यादि शास्त्र-ग्रन्थों का निर्माण करके तेलुगु वाङमय के अभाव की पूर्ति की। पंतुलुजी के विद्वत्तापूर्ण भाषण भी तेलुगु साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। इस प्रकार वे एक ही साथ आधुनिक परिभाषा के अनुरूप प्रथम उपन्यास, नाटक, जीवनी, आत्म-कथा, प्रहसन, निबन्ध, समीक्षा, शास्त्र-ग्रन्थ, प्रामाणिक अनुवाद आदि के जनक तथा युग-निर्माता कहलाते हैं।

कोक्कोंड वेंकटरत्नम् पंतुलु (ई० सन् १८४२ से १९१५ तक)

"आन्ध्र-जान्सन" नाम से विख्यात श्री कोक्कोंड वेंकटरत्नम् पंतुलु तेलुगु और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे। ये साहित्यिक (ग्रान्थिक) भाषा के समर्थक थे। घर पर भी ऐसी ही भाषा का व्यवहार करते थे। ये वीरेश-लिंगम् पंतुलुजी के समसामयिक तथा प्रतिद्वंद्वी थे। वीरेशलिंगम्‌जी व्यावहारिक भाषा के पक्षपाती थे। साहित्य में नवीनता और सामाजिक क्षेत्र में प्राचीनता

के ये पक्षपाती थे। इन्होंने लगभग तीस वर्ष तक मद्रास तथा राजमहेन्द्रवरम् में तेलुगु के प्राध्यापक-पद पर कार्य किया। "आन्ध्र-भाषा-संजीवनी" नामक पत्रिका की स्थापना करके उसके द्वारा तेलुगु-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग दिया। इस पत्रिका ने तेलुगु-साहित्य के लिए प्राण-संजीवनी का कार्य किया है और उसके अभिवर्द्धन में महान् कार्य किया है। हिन्दू-जाति के उत्थान के हेतु इन्होंने "हिन्दू-श्रेयोभिवर्द्धनी" नामक संस्था स्थापित कर आर्य-धर्म का अनुपम उपकार किया है।

अंग्रेजी के कठिन शब्दों के लिए आवश्यक तेलुगु पारिभाषिक शब्दों का निर्माण कर उनको प्रचलित करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। ये अंग्रेजी में "पोयम ऑव दि प्रिन्स ऑव वेल्स—विजिट टु इण्डिया" नामक रचना करके लन्दन की क्रौन परफ्यूमरी कम्पनी द्वारा सम्मानित हुए थे।

इनके गद्य-ग्रन्थों में नीतिचन्द्रिका का पूरक ग्रन्थ "विग्रह-तंत्रमु" उल्लेखनीय है। "महाश्वेता" इनका सुन्दर उपन्यास है। इनके काव्य-ग्रन्थों में "बिल्लेश्वरीय" (महाकाव्य) "कोकोंड माहात्म्य", "घटिकाचल-क्षेत्र-महात्ममु", "सिंहाचल-क्षेत्र-माहात्म्य", "मंगलगिरि-क्षेत्र-माहात्म्य" तथा "अन्नवर-क्षेत्र-माहात्म्य", विशेष प्रसिद्ध हैं। संस्कृत से "नरकासुर विजय व्यायोग" का तेलुगु रूपांतर करके इन्होंने अनुवाद-कार्य का मार्ग प्रदर्शन किया।

ये संस्कृत के भी पारंगत विद्वान् थे। संस्कृत में जयदेवकृत "गीतगोविंद" की तुलना में इन्होंने "गीत-महानटनम्" ग्रन्थ का प्रणयन करके अपार यशार्जन किया। संस्कृत में विरचित इनकी अन्य कृतियों में "अक्षर-सांख्य-शास्त्र", "बिल्वनाथ-शतक" और "तनुमध्यार्यशतक" तथा तेलुगु में "अजामिलोपाख्यान" और "गीतनारायणम्" नामक गीति-प्रबन्ध विपुल प्रचार में हैं। इनकी अन्य मुद्रित कृतियों में "प्रसन्न राघवमु", "धनंजय-विजय-व्यायोगमु", "बिल्वेश्वर-शतक" और "दीक्षित-चरित्र" इनकी उत्कट प्रतिभा की परिचायिका हैं।

व्याकरण-सम्मत भाषा में घंटों भाषण देकर श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध करने की असाधारण जन्मजात् प्रतिभा इनको प्राप्त थी। तत्कालीन विद्वानों से भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी विवादों में इन्होंने अपने पक्ष का बड़ी निपुणता के साथ

समर्थन किया। "महामहोपाध्याय" की उपाधि प्राप्त करनेवालों में यही प्रथम व्यक्ति थे।

वाविलाल वासुदेव शास्त्री (ई० सन् १८५७ से १८९७ तक)

तेनाली के समीप में स्थित कारुमूरू में आपका जन्म हुआ, किन्तु आपने अपना सारा जीवन राजमहेन्द्रवरम् में व्यतीत किया। विद्यार्थी-जीवन में ही ये बड़े प्रतिभाशाली थे। बी० ए० परीक्षा में आपने "माक्डोनाल्ड" का स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया था। शेक्सपियरकृत जूलियस सीजर का आपने "सीज़र-चरित्र" नाम से तेलुगु-रूपांतर किया। "नंदकराज्य" आपका मौलिक गीति नाटक है। "ब्राह्मणीयमु" आपका प्रबन्ध-काव्य है। आपकी अन्य कृतियों में "मृच्छ कटिक", "उत्तररामचरित्र", "आन्ध्र-रघुवंश", "मुमुक्षुतारक", "गरुडाचलम्" आदि मुख्य हैं।

गुरुजाड श्रीराममूर्ति (ई० सन् १८५१ से १८९९ तक)

सर्वप्रथम तेलुगु में कवियों की जीवनियों की रचना आपने "कवि-जीवितमुलु" नाम से सन् १८८० में ही प्रकाशित करायी। वीरेशलिंगम् जी को भी इसी ग्रन्थ से प्रेरणा प्राप्त हुई। राममूर्ति के ग्रन्थ में कवियों से सम्बन्धित कथाएँ विस्तृत रूप से वर्णित हैं। आप विजयनगर के संस्थान के आस्थान कवि थे। आपने "मर्चेन्ट आफ़ वेनीस" का तेलुगु में अनुवाद किया। आपकी अन्य कृतियों में "चित्ररत्नाकरमु", "कलभाषिणी", "कलापूर्णोदय-कथा-संग्रह", "तेनाली-राम-कृष्णुनि कथलु", "अप्पय-दीक्षित-चरित्र" और "तिम्मरुसु-चरित्र" मुख्य हैं। आप एक सफल सम्पादक भी थे। आपने "राजयोगी" नामक पत्रिका का कुछ समय तक सम्पादन भी किया। "आन्ध्र-पद-पारिजात" नामक निघंटु का भी आपने संपादन कर उसे प्रकाशित कराया है।

वेदम वेंकटराय शास्त्री (ई० सन् १८५३ से १९२९ तक)

"पण्डित कवि नहीं हो सकता", इस उक्ति के श्री वेदम वेंकटराय शास्त्री सर्वथा अपवाद थे। आन्ध्र के दिग्गज विद्वानों में आपका स्थान अनुपम है।

बी० ए० तक की समस्त परीक्षाएँ आपने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। मद्रास के क्रिश्चियन कालेज में २५ वर्ष तक आपने संस्कृत के प्राध्यापक का कार्य सँभाला और आप संस्कृत तथा तेलुगु में समान प्रतिभा रखते थे। आप एक ही साथ कवि, समालोचक, नाटककार और सम्पादक थे। नाटक-रचना में पात्रोचित भाषा का प्रयोग करने वालों में आपका प्रथम स्थान माना जाता है। संस्कृत के नाटकों में निम्न पात्रों के लिए प्राकृत भाषा का व्यवहार होता था। उसकी देखा-देखी आपने तेलुगु नाटकों के निम्न पात्रों के लिए सजीव व्यावहारिक भाषा तथा ग्राम्य भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि इस प्रयत्न का प्रारम्भ में विरोध हुआ, किन्तु बाद को आपकी सुनिश्चित दृष्टि की सर्वत्र प्रशंसा ही हुई।

श्री शास्त्री ने संस्कृत से "उत्तर-रामचरित्र", "अभिज्ञान-शाकुंतल", "मालविकाग्नि-मित्र", "नागानन्द", "रत्नावली" आदि नाटकों का तेलुगु-रूपांतर भी किया और साथ ही "प्रताप-रुद्रीयमु", "बोब्बिलि-युद्धमु", "उषा-नाटक" आदि विशुद्ध मौलिक नाटकों का प्रणयन भी किया। "प्रतापरुद्रीयमु" तथा "बोब्बिलि युद्धमु" आन्ध्र देश की प्रधान ऐतिहासिक घटनाओं को सरस और मनोहर शैली में नाटक का रूप देने का श्रेय आप ही को प्राप्त है।

शास्त्रीजी के पाण्डित्य से प्रभावित हो नेल्लूर के रेड्डी वंशियों ने उन्हें आर्थिक सहायता के साथ प्रोत्साहन भी दिया। शास्त्रीजी ने प्राचीन काव्यों की विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएँ लिखकर तेलुगु पाठकों में काव्य-पठन के प्रति अभिरुचि पैदा की। आपने "शृंगार-नैषध" तथा "आमुक्त-माल्यदा" लिखी। "सर्वंकष-व्याख्या" और "संजीवनी व्याख्या" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपके पाण्डित्य का प्रबल प्रमाण हमें इन व्याख्याओं द्वारा मिल जाता है।

शास्त्रीजी की प्रतिभा और सेवा बहुमुखी थी। वे तमिल, कन्नड़ और हिन्दी भाषाएँ जानते थे। तर्क, व्याकरण और दर्शन शास्त्रों के भी पारंगत पण्डित थे। प्राचीन सम्प्रदायों के पक्षपाती होते हुए भी आपने आधुनिक तेलुगु गद्य में सुधार किया। आपने यह सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया कि कविता की भाँति गद्य में भी सर्वत्र सन्धि के नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए आपने "विसन्धि-विवेक" नाम से एक ग्रन्थ भी लिखा। इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाने के हेतु तेलुगु में इन्हीं नियमों

के आधार पर आपने "कथा-सरित्सागर" लिखा। इन्हीं कारणों से शास्त्रीजी आधुनिक तेलुगु-गद्य के निर्माताओं में गिने जाते हैं।

रीति-ग्रन्थों की रचना में भी शास्त्रीजी सिद्धहस्त थे। "प्रक्रिया-छन्दस्सु", "अलंकार-सार-संग्रह" आदि इस बात की पुष्टि करते हैं। आपने "जनविनोदिनी" नाम से एक पत्रिका का भी सफलतापूर्वक सम्पादन किया। इस पत्रिका के द्वारा शास्त्रीजी ने जो सेवा की, वह तेलुगु साहित्य में चिरस्मरणीय है। आपका अपने समकालीन पण्डितों के साथ सदा वाक्-युद्ध और लेखनी-युद्ध चलता रहा। आप प्राचीन सम्प्रदायों के पक्षपाती थे। वीरेशलिंगम् के "विधवा-विवाह" आन्दोलन का विरोध करते हुए आपने "स्त्री-पुनर्विवाह दुर्वाद निर्वापण" नाम से एक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसी प्रकार कोक्कोंड वेंकटरत्नम् पंतुलुकृत "प्रसन्नराघव" नाटक की बड़ी विशद आलोचना की। यद्यपि इसमें व्यक्तिगत दूषण खटकने वाला है, किन्तु उस अंश को हटा दें, तो यह एक उत्तम समीक्षा-ग्रन्थ कहा जा सकता है।

आपने ज्योतिष्मती नामक मुद्रणालय की स्थापना करके तेलुगु के उत्तम ग्रन्थों का टीका सहित प्रकाशन किया। "सूर्यारायान्ध्र-निघंटु" के सम्पादन का भी कार्य आपने कुछ समय तक किया। आपकी साहित्यिक सेवाओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए सन् १९२० में "आन्ध्र-महासभा" ने आपको "महोपाध्याय" उपाधि देकर १,११६ मुद्राओं से आपका सम्मान किया। सन् १९२२ में द्वारकापीठ शंकर भगवत्पाद ने आपको "महामहोपाध्याय" और "विद्यादानव्रत-महोदधि" उपाधियाँ प्रदान कीं तथा सन् १९२७ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने आपको "कलाप्रपूर्ण" उपाधि से सम्मानित किया।

धर्मवरम् कृष्णमाचार्युलु (ई० सन् १८५३ से १९१३ तक)

पाश्चात्य नाटक संप्रदायों के अनुकरण पर तेलुगु में मौलिक नाटकों की रचना करके उन्हें सफलता के साथ प्रदर्शित करने का श्रेय आप ही को है। पेशे से वकील होते हुए भी आपने मंच पर नाट्य-प्रदर्शन के लिए वेष-धारण किया और अभिनय के प्रति जो हेय भावना थी, उसको दूर किया।

आपने तेलुगु रंगमंच के विकास में नया अध्याय प्रारम्भ किया। बल्लारी

में सरस विनोदिनी सभा की स्थापना करके आपने तेलुगु के नाटकों का ही नहीं, शेक्सपियर के नाटकों का भी प्रदर्शन किया। नगर-वासियों को उस सभा का स्थायी सदस्य बनाया। इस प्रकार आपने जनता में नाटक के प्रति अभिरुचि पैदा की। तेलुगु में सर्वप्रथम आपने ही "विषाद-सारंगधर" नाम से एक दुखान्त नाटक प्रस्तुत किया तथा अंग्रेजी नाटक कला की रीति पर दृश्यों की सर्जना की।

श्री आचार्युलु ने कुल मिलाकर तेलुगु में तीस नाटक तथा कन्नड़ में दो नाटकों की रचना की। उनमें से १२ तेलुगु नाटक मुद्रित हैं। आपके नाटकों में "चित्रनलीयमु", "विषाद-सारंगधर", "प्रह्लाद", "सावित्री" और "पादुका पट्टाभिषेकमु" ने विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त की। मुक्तावली, प्रमीलार्जुनीयमु, पांचाली-स्वयंवरमु, शेषनारा, वरूधिनी आदि आपके अन्य उत्तम नाट्य-ग्रन्थ हैं। आपके नाटकों में पद्यों की बहुलता है। आपकी नाटक-साहित्य की सेवा पर मुग्ध हो गद्वाल के महाराज ने सन् १९१० में इन्हें रत्नखचित पदक के साथ "आन्ध्रनाटक कविता पितामह" उपाधि देकर विभूषित किया।

आचार्यजी न केवल नाटक-लेखक थे, अपितु वे एक कुशल अभिनेता भी थे। भावुक होने के कारण आपने अपने अभिनय-कौशल द्वारा पात्रों के प्रति न्याय किया और उन पात्रों का अभिनय कर उनके रूप में आप भी प्रेक्षकों के हृदय में अमिट स्थान बनाये हुए हैं। बाहुक, दशरथ, राजराजनरेन्द्र इत्यादि पात्रों के अभिनय में आपने अपनी लोकज्ञता, विविधता और प्रतिभा का परिचय दिया है। आपकी ज्योतिष, आयुर्वेद और विविध शास्त्रों की मर्मज्ञता आपके नाटकों में प्रतिबिम्बित हुई है।

वड्डादि सुब्बराय कवि (ई० सन् १८५४ से १९३८ तक)

व० सु० कवि नाम से विख्यात वड्डादि सुब्बाराय कवि एक सफल अध्यापक, प्रकाण्ड पण्डित और सरस कवि थे। आप राजमहेन्द्रवरम् के कॉलेज में बरसों तक संस्कृत और तेलुगु के प्राध्यापक रहे। अनेक अंग्रेज अफ़सरों को आपने तेलुगु और संस्कृत पढ़ाया। आपकी पढ़ाने की शैली ऐसी मधुर और सरस थी कि उक्त कॉलेज के प्रिंसपल ओ० जे० कूल्ड् साहब दरवाजे की ओट में खड़े हो उनका पाठ सुना करते थे।

आप एक सरस कवि और साथ ही उत्तम अनुवादक भी थे। आप आशु कविता के प्रबल विरोधी थे। जब तक अपनी कविता को माँजकर वे सन्तुष्ट नहीं होते, तब तक उसे सुनाते न थे। यों तो आपने अनेक नाटक लिखे, किन्तु "वेणीसंहारमु" आपकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगाये हुए है। आपके अन्य अनूदित नाटकों में "प्रबोध-चन्द्रोदय", "विक्रमोर्वशीयमु", "मल्लिका-मारुतमु", "अभिज्ञानशाकुन्तल" मुख्य हैं।

आपने असंख्य छात्रोपयोगी रचनाएँ भी की हैं, उनमें "सुमनोमनोज्ञम्", "सुगुण-प्रदर्शनम्" और "श्री सूक्ति वसुप्रकाशिका" विशेष लोकप्रिय हैं। "भक्त-चिन्तामणि" आपका उत्तम काव्य-ग्रन्थ है।

कोलाचलमु श्रीनिवास राव (ई० सन् १८५४ से १९१९ तक)

ये भी धर्मवरम् कृष्णमाचार्युलु की भाँति पेशे से वकील थे। वकालत के साथ ही इन्होंने अनेक नाटकों की सर्जना की है। नाटक में इन्होंने व्यावहारिक भाषा और ग्राम्य-भाषा का विरोध किया है। पाश्चात्य नाटक सम्प्रदायों के भी ये समर्थक न थे। सुखान्त नाटकों के प्रबल पक्षपाती थे। आपके नाटकों में "रामराजु-चरित्र" को वही लोकप्रियता प्राप्त हुई, जो "कृष्णमाचार्युलु" के "चित्रनलीयमु" को प्राप्त है। इस नाटक में इतिहास प्रसिद्ध सन् १५६५ के तालिकोट युद्ध में निहत अलिय रामराजु का वृत्तान्त वर्णित है। आपने "मैसूर-राज्य", "चाँद-बीबी" तथा "प्रतापाक्-बरीय" नाम से तीन और ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं।

आपके अन्य नाटकों में "श्रीराम जननमु", "पादुका-पट्टाभिषेकमु", "लंका-दहनमु", "द्रौपदी-वस्त्रापहरण", "कीचक-वध", "हरिश्चन्द्र", "रुग्मांगद", "चन्द्रहास", "शिलादित्य", "बभ्रुवाहन", "कुशलव", "मदालसा-परिणय" और "सुनन्दिनी परिणय" उल्लेखनीय हैं।

आकोंडि व्यासमूर्ति शास्त्री (ई० सन् १८६० से १९१६ तक)

शास्त्रीजी संस्कृत और तेलुगु के उद्भट विद्वान्, तर्क और अलंकार शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा उपनिषद् और वेदान्तों के निष्णात थे। यद्यपि शास्त्रीजी को

कोई उपाधि प्राप्त न थी, फिर भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा पर मुग्ध हो लोग उन्हें "ज्ञानकोश" अथवा "विश्वकोश" नाम से जानते और मानते थे। शास्त्रीजी की कविता में अन्वय काठिन्य पाया जाता है।

शास्त्रीजी ने महाभारत के तेरह पद्यों की रचना "श्रीमहाभारतनवनीतमु" नाम से की, इनमें एक ही पर्व मुद्रित है। महाभारत का सार मात्र प्रौढ़ शैली में वर्णित है। इनकी अन्य कृतियों में "अनर्घ-राववमु", "प्रबोध-चन्द्रोदयमु", "शुद्धांध्र-ऋतु-संहारमु" "गंगालहरीस्तोत्रमु", "भामिनी-विलासमु", "अध्यात्म-रामायणमु", "सूर्य-शतकमु" मुख्य हैं। "भारत-फविक" नाम से एक समीक्षा-ग्रन्थ और "पराशरस्मृति" नाम से एक गद्य-ग्रन्थ की भी आपने रचना की है, जो आपकी विद्वत्ता के परिचायक हैं।

जयन्ति रामय्या (ई० सन् १८६० से १९४१ तक)

रामय्याजी ने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, लेकिन आपने वकालत कभी नहीं की और जीवन-पर्यन्त साहित्य की ही वकालत करते रहे। आपने डिप्टी कलक्टर, प्रेसिडेन्सी मैजस्ट्रीट आदि पदों पर कार्य किया और विधान सभा के भी सदस्य हुए, किन्तु अपने व्यस्त जीवन के भीतर भी साहित्यिक अनुसन्धान कार्य को जारी रखा।

रामय्या के जीवन की अविस्मरणीय घटना "आन्ध्र-साहित्य-परिषद्" की स्थापना है। सन् १९११ में आपने तत्कालीन राजा-महाराजाओं की सहायता से उक्त परिषद् की स्थापना काकिनाड़ा में की और आप उसके अध्यक्ष रहे। इस परिषद् की तरफ़ से आपने दो महान् कार्य सम्पन्न किये, प्रथम तो यह है कि १२०० प्राचीन शिलालेखों का संग्रह करके आपने उनके पाठ तैयार किये और उनकी विशेषताओं को प्रकाश प्रदान दिया। इनमें से ४०० शिला-लेख आपने आन्ध्र-विश्वविद्यालय को प्रकशनार्थ दे दिये। उस समय की भारत सरकार ने रामय्याजी की प्रतिभा से प्रसन्न हो, आन्ध्र देश से सम्बन्धित ८०० शिलालेख उनके पास इनके पाठ तैयार करने के निमित्त भेजा। श्री रामय्या ने उनका शोध करके उनकी पीठिकाएँ तथा व्याख्याएँ तैयार कीं और उन्हें पुनः भारत सरकार को

लौटाया। इनके द्वारा शोध किये गये शिलालेखों में "युद्ध-मल्लु का बेजवाड़ा-शासन", (शिलालेख) तथा "तोत्तरमूडि-शासन" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

परिषद् द्वारा दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संपादन, संशोधन एवं मुद्रण कार्य है। रामय्या को इस कार्य में पिठापुरम्, बोब्बिलि और वेंकटगिरि के राजाओं ने तथा उय्यूर आदि के जमींदारों ने भी आर्थिक सहायता दी थी।

रामय्या ने परिषद् की ओर से तेलुगु के एक "बृहत् कोश" के निर्माण का भी संकल्प किया था और कुछ प्रसिद्ध तेलुगु विद्वानों की सहायता से आपने इसके दो भाग प्रकाशित किये। इस कोश के कृतिपति पिठापुरम् के महाराजा श्री राव वेंकटकुमार महीपति सूर्यराव बहादुर ने दो लाख रुपये का दान दिया था, किन्तु वह कोश अपूर्ण ही रहा।

रामय्याजी केवल पण्डित और अनुसन्धानकर्ता ही नहीं, एक उत्तम कवि भी थे। "मुक्तीश्वर-शतक", "आन्ध्र-चंपू-रामायण" और "अमरुक", आपकी सरस कविता-रचना के उत्तम उदाहरण हैं। आपकी अन्य कृतियों में "शासन-पद्य-मंजरी" (दो भाग), "बाल-रामायण", "आन्ध्र वाङ्मय" और विकास-वैखरि आदि विशेष प्रशंसनीय हैं। आपने आन्ध्र-साहित्य-परिषद् की पत्रिका में असंख्य गवेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित किये, जो स्थायी महत्त्व रखते हैं।

आप साहित्यिक भाषा के प्रबल पक्षपाती थे। व्यावहारिक भाषावाद के प्रवर्तक श्री गिडुगु राममूर्ति पंतुलु के साथ इनका जो भाषा-युद्ध हुआ था, वह ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इनके प्रभावशाली साहित्यिक व्यक्तित्व पर मुग्ध हो आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने इन्हें "कला-प्रपूर्ण" की उपाधि से विभूषित किया और "आन्ध्रेतिहास-परिशोधक-मण्डली" ने आपको अंग्रेजी में एक उत्तम "अभिनन्दन-ग्रन्थ" भेंट कर अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

पूंडूल रामकृष्णय्या (ई० सन् १८६० से १९०४ तक)

रामकृष्णय्या का महत्त्वपूर्ण कार्य "अमुद्रित ग्रन्थ-चिन्तामणि" नामक पत्रिका का सम्पादन है। वेंकटगिरि के महाराजा इस पत्रिका के पोषक थे। इस पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य—अमुद्रित ग्रन्थों का प्रकाशन तथा व्याकरण और छन्द

सम्बन्धी समीक्षा प्रस्तुत करना है। वेदमु वेंकटराय शास्त्री, मण्डपाक पार्वतीश्वर कवि इत्यादि की प्रतिभा को आलोक प्रदान करने का श्रेय इसी पत्रिका को प्राप्त है। पत्रिकाधिपतियों की प्रतिज्ञा थी—

"जतनमु मीरंग नमुद्रित सद्ग्रन्थमुल सेकरिंचि कडुबरि
ष्कृतमुलु गाविंचि यथामति बत्रिक गूर्चेंदमु क्रमंबु वानिनिन् ।"

अर्थात् अत्यन्त प्रयत्न के साथ उत्तम अमुद्रित ग्रन्थों का संग्रह करके उन्हें परिष्कृत करेंगे और उन्हें क्रमशः पत्रिका में प्रकाशित करेंगे ।

आगे इस सन्दर्भ में एक छन्द में यह भी कहा गया है कि सूत के धागे से सावधानी के साथ बँधी हुई जीर्णदशा को प्राप्त होनेवाली और क्रिमि-कीटकों का आहार बन नष्ट होने वाली अमुद्रित पुस्तक-पंक्ति को पत्रिका की आकृति में परिणत करेंगे ।

उन दिनों यह पत्रिका समीक्षा की अत्युत्तम कसौटी बनी हुई थी। इस पत्रिका की ओर से "राजवेंकटेश्वर-विजय-विलास", "हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान", "मित्रविंदा-परिणय", "यादव-राघव-पांडवीयमु", "वैजयन्ती-विलासमु" इत्यादि अनेक उत्कृष्ट प्राचीन प्रबन्ध काव्यों का प्रकाशन हुआ है। रामकृष्णय्या की प्रतिभा ऐसे ग्रन्थों की भूमिकाओं में तथा "मपूख" में देखी जा सकती है ।

अल्लंराजु रंगशायि कवि (ई० सन् १८६० से १९३६ तक)

तेलुगु-साहित्य में ये असाधारण प्रतिभा लेकर अवतरित हुए। उनकी कीर्ति को शाश्वत रूप से अविच्छिन्न रखने वाली कृति "श्रीमदांध्र चंपू भारत" है। इसमें कुल १२५० पद्य और गद्य हैं। यह अनन्तभट्ट कृत "भारत-चंपू" का तेलुगु रूपांतर है। इन्होंने "रामायण चंपू" की भी सर्जना की, किन्तु वह पूर्ण रूप से मुद्रित नहीं हुआ है। ये ग्यारह शतकों के प्रणेता थे, उनमें "रघुराम-शतक", "गोविंद-शतक" और "मल्लिकार्जुन-शतक" विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके संस्कृत ग्रन्थों में "नारायणानंदालहरी" और "कविमानस-रंजनी" पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं ।

चित्र-कविता करने में भी ये अद्वितीय थे। इस सन्दर्भ में एकाक्षर "कंद"-छन्द में रचित एक पद्य का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो अत्यन्त भावपूर्ण है—

मामा मीमोमौमा
मामा मिम्मोम्मु माममामामेमा
मेमोम्मु मीमैमे
मेमे मम्मोमु मोमु मिम्मौमौमा ।।

गिडुगु वेंकटराममूर्ति पंतुलु (ई० सन् १८६३ से १९४० तक)

आधुनिक युग में महान् साहित्यिक व्यक्तित्व लेकर उत्पन्न पण्डितों में राममूर्ति पंतुलु का विशिष्ट स्थान है । व्याकरण की शृंखलाओं से निबद्ध हो दम तोड़ने वाली "ग्रांथिक-शैली" (साहित्यिक शैली) का खण्डन कर उसके स्थान पर आपने व्यावहारिक भाषा-वाद को प्रतिष्ठित किया । आपका मत था कि भाषा अतिशय व्याकरण-बद्ध होने पर अपने सहज माधुर्य तथा प्रवाह को खो बैठती है । आपने अपने इन सिद्धान्तों के प्रचारार्थ कुछ समय तक "तेलुगु" नामक मासिक पत्रिका भी चलायी । प्रारम्भ में इस वाद का पण्डितों ने घोर विरोध किया, किन्तु सन् १९२५ में आन्ध्र-साहित्य-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में आपने अपने वाद की पुष्टि करते हुए प्राचीन ग्रन्थों से अनेक प्रमाण दिये तथा व्यावहारिक भाषा की आवश्यकता पर चार घंटे तक अपनी अजस्त्र धाराप्रवाह वाणी में विशद भाषण दिया, परिणामस्वरूप इनके भाषा-सिद्धान्त के समर्थन में एक प्रस्ताव भी पास किया गया । तदनन्तर "नव्य साहित्य-परिषद्", "साहिती-समिति" इत्यादि साहित्यिक संस्थाओं ने भी आपके इस वाद का समर्थन किया । फलतः आज कथा-कहानियों, उपन्यासों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी श्री राममूर्ति द्वारा प्रवर्तित व्यावहारिक शैली का प्रचलन हुआ, किन्तु काव्यों में ग्रान्थिक शैली ही व्यवहृत होती रही । परम्परागत भाषा-शैली में सुधार होते देख सनातनी पण्डित आक्रोश से भर उठे और उन्होंने श्री राममूर्ति का भीषण प्रतिरोध किया । इस प्रकार प्राचीन सम्प्रदायवादियों के साथ निरन्तर संघर्ष करते हुए आप ग्रन्थस्थ भाषा और बोलचाल की भाषा के व्यवधान को बहुत कुछ अंशों में दूर करा सके । श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु तथा श्री गुरजाड अप्पाराव का भी इन्हें समर्थन प्राप्त हुआ । अप्पाराव ने राममूर्ति द्वारा निर्दिष्ट व्यावहारिक भाषा-शैली में "कन्या-शुल्कम्" नाटक, कई कहानियाँ और अन्य रचनाएँ कीं ।

राममूर्तिजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य "सवर" (शबर) जाति की भाषा का अनुसंधान है। प्राचीन शिलालेखों की खोज करते ये सवर भाषा और उनके आचार-व्यवहारों से बहुत ही आकर्षित हुए। अपने अनवरत उद्योग से प्राचीन लिपि और सवर बोली के सीखने में सफल हुए। तदनन्तर आपने सबर जाति के आचार-व्यवहारों का एक परिचयात्मक ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रकाशित किया।

सन् १८९६ से १९११ के मध्यकाल में पर्लाकिमिडि के कॉलेज में इतिहास के प्राध्यापक के पद पर कार्य करते हुए आपने अपने अनुसन्धान को जारी रखा और इसी अवधि में आपने "सवर-तेलुगु-निघंटु", "तेलुगु-सवर-निघंटु" नाम से दो कोशों की रचना भी तेलुगु में की। साथ ही आपने तेलुगु लिपि में ही सवर-वाचन, कहानियाँ और गीत भी लिखे। तत्कालीन मद्रास सरकार ने ये सब कृतियाँ प्रकाशित कीं और उन्हें "राव साहब" की उपाधि से विभूषित किया। इनके अतिरिक्त श्री राममूर्तिकृत अंग्रेजी-ग्रन्थों "सवर मेन्युअल एण्ड रीडर", "सवर-इंग्लीश डिक्शनरी" तथा "इंग्लीश सवर डिक्शनरी" का भी प्रकाशन मद्रास सरकार ने किया और "कैजर-इ-हिन्द" नामक स्वर्णपदक द्वारा इन्हें सम्मानित किया।

आपने तेलुगु में "बाल-कवि शरण्यमु", "व्यास-मंजरी", "पण्डित-भिषक्कुल-भाषा-भेषजमु" तथा "गद्य-चिन्तामणि" आदि की भी रचना की।

काशीभट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री (ई० सन् १८६३ से १९४० तक)

ब्रह्मय्या शास्त्रीजी कलक्टर के कार्यालय में कारिन्दे का कार्य करते थे और अपना बाकी समय अनुसंधान में लगाते थे। भाषा-शास्त्र इनका प्रिय विषय था। "आर्यमत-बोधिनी" नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते हुए आपने अनेक अनुसन्धानपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किये। हिन्दू-धर्म की विशिष्टता का प्रचार करते हुए आपने वीरेशलिंगम् पंतुलु के सुधारवादी आन्दोलन का बड़ी निर्भीकता और तीव्रता के साथ खण्डन किया।

श्री शास्त्री की प्रतिभा बहुमुखी थी। आपने "आर्य-बृंदानंद-संधायिनी" नामक नाटक-समाज की स्थापना करके वीरेशलिंगमूकृत "शाकुन्तल" तथा स्वरचित "त्रिपुरासुर-विजय-व्यायोग" नामक नाटकों का प्रदर्शन कराया।

"विवेकानन्द-पुस्तक-भाण्डार" तथा "भक्त-समाज" के आप ही जन्मदाता थे। "पेद्दापुर-संस्थान-चरित्र" आपके इतिहास सम्बन्धी सामग्रियों के अनुसन्धान का सुन्दर उदाहरण है। "माधव-विद्यारण्य" "भास्करोदन्तमु", "नाचनसोमना", "नारायण-भट्ट", शिष्टु-कृष्णमूर्ति आदि की प्रामाणिक जीवनियाँ भी आपने प्रस्तुत कीं। इनके अतिरिक्त, आपने साहित्य, आध्यात्म, धर्म, प्रकृति-शास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर दर्जनों प्रामाणिक एवं अनुसन्धानपूर्ण निबन्ध लिखे। ये "कुरु-पांडव-दाय-भाग-निर्णय", "मंगतायि", "सैंधव-वध" आदि नाटकों के प्रणेता भी थे। तत्कालीन विशिष्ट मासिक पत्र भारती, शारदा, आन्ध्र पत्रिका, उदय-लक्ष्मी, सुजाता आदि में भी लगभग दो सौ लेख प्रकाशित कर आपने तेलुगु-साहित्य और समाज का बड़ा उपकार किया। आपकी सेवाओं से प्रसन्न हो जनता तथा संस्थाओं ने भी आपको "विमर्शकाग्रेसर", "महोपाध्याय" और "उपन्यास-पंचानन" आदि उपाधियाँ प्रदान कीं।

शास्त्रीजी के जीवन में एक मजेदार घटना घटी। सन् १९३० सितम्बर में काशीभट्ट लिंगमूर्ति नामक व्यक्ति का देहान्त हुआ। अंग्रेजी दैनिक "हिन्दू" पत्रिका के संवाददाता ने असावधानी से समाचार भेजा कि काशीभट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री का देहावसान हो गया। उस पत्रिका की देखादेखी "आन्ध्र-पत्रिका" ने भी यह समाचार प्रकाशित किया। फिर क्या था, अनेक पत्रिकाओं ने शास्त्रीजी की सेवाओं की प्रस्तुति करते अग्रलेख लिखे, कई संस्थाओं ने शोक-सभाएँ कीं, उनके परिवार को सांत्वना देते हुए पत्र और तार भेजे गये। शास्त्रीजी विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे। उक्त समाचार को "नाविबुध-लोक-सन्दर्शन" नामक काव्य में बड़ी मनोहर शैली में चित्रित करके आपने अपनी चमत्कार बुद्धि का परिचय दिया।

वाविलि कोलनु सुब्बराय कवि (ई० सन् १८६३ से १९३९ तक)

ये कड़पा के निवासी थे। ये 'वासु-दास' नाम से विख्यात थे। आपने कड़पा जिले में कुछ समय तक रेविन्यू इन्स्पेक्टर का कार्य किया, तदनन्तर मद्रास के प्रेसिडेन्सी कॉलेज में तेलुगु पण्डित के पद पर रहे। ये भागवत-भक्त, पण्डित तथा

कवि थे। पोतना की कविता इनके लिए आदर्श थी। ओंटिमिट्टा में स्थित कोदण्ड रामस्वामी के मन्दिर का पुनरुद्धार करने के हेतु आपने आन्ध्र में अपने निवेदन पर हजारों रुपये वसूल किये।

आपकी प्रसिद्ध रचना वाल्मीकिकृत "रामायण" का यथामातृक रूपांतर है। यह अत्यन्त प्रौढ़ काव्य है। इस काव्य को भी आपने कोदण्ड रामस्वामी के श्रीचरणों में समर्पित किया है। रामायण के अतिरिक्त सुब्बराय की प्रसिद्ध कृतियाँ—"कुमाराभ्युदय", "कौशल्या-परिणय" और "सुभद्र-विजय", "भगवद्-गीता", "आर्य-कथा-निधि" (छः भाग), "कृष्ण-लीलामृत", "नल-चरित्र", "हरिश्चन्द्र-चरित्र", "हनुमन्त-चरित्र", "एकशिला नगर-द्वय-विवाद-संग्रह" आदि हैं। "आन्ध्र-वाल्मीकि" आपकी उपाधि हैं। आपने कुछ समय तक "भक्त-संजीवनी" नामक पत्रिका का संपादन भी किया।

नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि (ई० सन् १८६३ से १९३८ तक)

पुरुषोत्तम एक उत्तम कवि, नाटककार और सम्पादक के रूप में हमारे सामने आते हैं। आपने कोश और अन्यान्य शास्त्र-ग्रन्थों का प्रणयन किया है। मछली पट्टणम् (बन्दर) में स्थापित "नेशनल-थियेट्रिकल-सोसाइटी" नामक एक नाटक-समाज ने सन् १८८४ में आपको प्रोत्साहित किया और इनसे हिन्दी में ३२ मौलिक नाटक लिखाया। ८० वर्ष पूर्व हिन्दी में मौलिक नाटक लिख कर आपने आन्ध्र में हिन्दी-प्रचार का श्रीगणेश किया। उस समय तक राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की भी स्थापना नहीं हुई थी।

आपने "बुधविधेयिनी" नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते हुए जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रशंसनीय प्रचार किया। आप एक उत्तम कवि थे और आप चित्र-कविता, बन्ध, गर्भ-कविता करने में विशेष प्रसिद्ध थे। आपकी कविता की रमणीयता "चतुमुखी-कंदपद्य-रामायण" तथा शतकों में देखते ही बनती है। "अद्भुतोत्तर रामायण", "यादवाद्रीशोपाख्यान", "माहेन्द्र-पुराण", "रंगदासीयमु", "यामिनी-विनोदमु", "बभ्रुवाहन-चरित्र", "कृष्णनदी-माहात्म्य" आदि आपके काव्य-ग्रन्थ हैं। आपके नाटकों में "पारिजातापहरण",

"हरिश्चन्द्र" और "सारंगधर" प्रसिद्ध हैं। "सीताराम-शतक", "मल्लिकार्जुन-शतक", "पूर्वकर्म-शतक" आदि शतकों के भी आप प्रणेता थे।

दासु श्रीराम कवि (ई० सन् १८६४ से १९०८ तक)

श्रीराम कवि जन्मजात प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। १२ वर्ष की अवस्था में प्रौढ़ शैली में "सोमलिंगेश्वर-शतक" की रचना करके आपने बड़े-बड़े विद्वानों को चकित कर दिया। इस अल्प अवस्था में ही शतावधान करके अपनी कविता-धारा और कुशाग्र बुद्धि से पण्डितों की प्रशंसा प्राप्त की। नूजिवीडु के आस्थान कवि माडभूषि वेंकटाचार्युलु ने, जो अपने समय के प्रकाण्ड पण्डित थे, इस बालक की मेधा पर प्रसन्न हो उसकी प्रस्तुति की—"पदिरेंडेडुल यीडुनं गवित जेप्पंजोच्चि व्यस्ताक्षरी"—अर्थात् बारह वर्ष की वय में इस कुशाग्रबुद्धि बालक ने व्यस्ताक्षरी जैसी असाधारण कविता सुनायी। सन् १८८० में आपने "कल्पवल्ली" नामक एक पत्रिका का भी संपादन किया। समाज-सुधार, संप्रदाय, धर्म-नीति इत्यादि गम्भीर विषयों पर आपने दर्जनों विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे। वकालत पेशे से आपने प्रचुर मात्रा में धनार्जन किया था, जिसका बहुत बड़ा अंश कवियों का सम्मान करने और दान देने में व्यय कर आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है।

ठेठ तेलुगु में आपने अभिज्ञान-शाकुन्तल, रत्नावली, मुद्राराक्षस, उत्तर राम-चरित, मालती-माधव, महावीर-चरित, मालविकाग्नि-मित्र इत्यादि नाटकों का भाषांतरीकरण किया। आपके काव्यों में देवी भागवत विशेष विख्यात है। १८ हजार श्लोकों का पाँच महीनों में चंपू शैली में तेलुगु-काव्य में रूपांतर करके आपने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। आपकी अन्य कृतियों में "अभिनव-दर्पण", "आन्ध्र-वीथी", "वैश्यधर्म-दीपिका", "तेलुगुनाडु", "संगीत-रस-तरंगिणी", "मंजरी-मधुकरीयमु" और "सत्राजिती-विलास", प्रख्यात हैं।

पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंह राव (ई० सन् १८६५ से १९४० तक)

अंग्रेजी-साहित्य के "एडिसन" कृत स्पेक्टेटर (Spectator) के नमूने पर लक्ष्मीनरसिंह राव ने "साक्षी" नाम से समाज, जाति, साहित्य, सम्प्रदाय,

तथा अन्यान्य दुराचारों का खंडन-मण्डन करते हुए बीसों निबन्ध लिखे, जो छः भागों में प्रकाशित हैं। इन निबन्धों में प्रयुक्त शब्द-वैचित्र्य, व्यंग्य और परिहास भावना, आक्षेप-पद्धति, आन्तरिक विचारों का सूक्तियों के रूप में अभिव्यक्तिकरण प्रशंसनीय है। ये निबन्ध तेलुगु गद्य-साहित्य की निधियाँ हैं। इनकी शैली सरस और प्रवाहपूर्ण है।

"साक्षी" लेखक द्वारा सृजित जंघाल-शास्त्री नामक एक विलक्षण व्यक्ति (पात्र) के भाषणों का संग्रह है और जंघाल शास्त्री श्री लक्ष्मीनरसिंह राव की अपूर्व सृष्टि है।

श्री राव अंग्रेजी और संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। तेलुगु में वे एक कुशल कवि, नाटककार और निबन्ध-लेखक के रूप में विख्यात हैं। गद्य-लेखन में ये अद्वितीय थे और इनके नाटकों में "कंठाभरण" वास्तव में नाटक-साहित्य का कंठाभरण बना हुआ है। उसका प्रदर्शन आन्ध्र के कोने-कोने में हुआ। इनके अन्य नाटकों में "राधा-कृष्ण", "विजय-राघवम्", "कल्याण-राघवम्", "विप्र-नारायण-चरित्र", "सारंगधर-चरित्र", "वृद्ध-विवाह", "कोकिल", "पूर्णिमा", "वीरमती", "सरस्वती", "दुष्ट प्रधानी" आदि प्रसिद्ध हैं। "बुद्ध-बोध-सुधा" लेखक की बौद्ध-वाङ्मय के प्रति अभिरुचि का परिचायक है। प्रचण्डचाणक्य और चूड़ामणि इनके सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं। इन्होंने शेक्सपियर के समान उतनी ही संख्या के नाटकों की रचना करने का संकल्प किया था और इस प्रयास में वे सफलीभूत भी हुए, क्योंकि उनके नाटकों की संख्या शेक्सपीयर के नाटकों से एकाध ही कम होगी।

आपने कुछ समय तक "आनेगोंदि", "उर्लामु" आदि आस्थानों में दीवान (मंत्री) का कार्य किया। आपकी साहित्य-सेवा और पाण्डित्य पर प्रसन्न हो, पिठापुरम् के राजा ने लेखक को ११६ रुपयों का मासिक पुरस्कार जीवन-पर्यन्त देने का प्रबन्ध किया।

श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री (ई० सन् १८६६ से १९६१ तक)

निसर्ग प्रतिभा लेकर अवतरित श्रीपाद कृष्णमूर्ति की साहित्य-सेवा का मूल्यांकन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अपने जीवन-काल में २००

ग्रन्थों की रचना करके आपने जो सम्मान प्राप्त किये, वे अन्य आधुनिक कवियों में "तिरुपति वेंकट कविद्वय" को छोड़ किसी और को नहीं प्राप्त हुए। आपकी असाधारण प्रतिभा का परिचय हमें आपके द्वारा रचित "श्रीकृष्ण-महाभारत", "श्रीकृष्ण रामायण" तथा "श्रीकृष्ण-भागवत" से मिलता है। महर्षि व्यासकृत महाभारत का सम्पूर्ण काव्यानुवाद आपने २३ वर्षों में समाप्त किया। एक ही व्यक्ति द्वारा तीनों काव्यों का प्रणयन भारत के इतिहास में एक अपूर्व वृत्तान्त कहा जा सकता है। एक व्यक्ति द्वारा "महाभारत" का सम्पूर्ण कृतित्व तेलुगु-साहित्य के इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। तेलुगु में कवित्रय "महाभारत" के पश्चात् यही काव्य अत्यन्त प्रामाणिक है। मूल महाभारत का समग्र रूपांतर इसकी विशेषता है। शास्त्रीजी ने अपना आत्म-विश्वास यहाँ तक व्यक्त किया है कि काव्य में औचित्य का पोषण कवित्रय से भी अधिक हुआ है। तेलुगु के आदि महाकाव्य "महाभारत" का प्रणयन राजमहेन्द्रवरम् में प्रारम्भ हुआ। शास्त्रीजी ने राजमहेन्द्रवरम् में ही सम्पूर्ण महाभारत का प्रणयन किया।

महाभारत के रचना-काल में शास्त्री जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वन-पर्व के समय तो वे विचलित ही हो गये थे। द्रोणपर्व के रचना-काल में कवि-पुत्र "सुधर्शनसुधि" का देहान्त हो गया था। इन विषाद के क्षणों का भी आपने दृढ़ता के साथ सामना किया था और यह इनके साहस का ही प्रमाण है कि ऐसे कष्टों से उपर उठकर उन्होंने अपना रचना-क्रम अनवरत रखा।

शास्त्रीजी संस्कृत और तेलुगु के पारंगत विद्वान् और महाकवि थे। आपके सैकड़ों शिष्य और प्रशिष्य हुए हैं। उनमें चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री भी एक थे, जो बाद को आधुनिक तेलुगु कविता के युग-प्रवर्तक कवि तथा मद्रास-सरकार के प्रथम राजकवि हुए थे।

शास्त्रीजी के अन्य काव्य-ग्रन्थों में "गौतमी-माहात्म्य", "सत्यनारायणोपाख्यान", "श्रीकृष्ण-कवि-राजीयमु", "सावित्री-चरित्रं" आदि अन्य प्रबन्ध काव्य मुख्य हैं। "ब्रह्मानन्द" नाम से आपने एक ठेठ तेलुगु-काव्य की भी रचना की। गद्य-रचना में भी आपने अपनी एक नवीन शैली का प्रचलन किया। "संस्कृत

कवि-जीवितमुलु", "कालिदास-विलासमु" और "तेनालि-रामकृष्ण-चरित्र" आपके सुन्दर गद्य-ग्रन्थ हैं ।

आप एक कुशल नाटककार एवं संपादक भी रहे । आपके नाटकों में "बोब्बिलि-युद्ध" विशेष लोकप्रिय है, जिसका आन्ध्र-प्रदेश के सभी शहरों और गाँवों में प्रदर्शन हुआ । आपके अन्य नाटकों में "वेणी-संहारमु", "कलभाषिणी", "भोजराजीयमु", "राजभक्ति" और "श्रीनाथ-कवि राजीयमु" गणनीय हैं । संस्कृत में आपने भारतरत्न राजेन्द्र प्रसाद की जीवनी प्रस्तुत की है । आपने "वज्रायुध", "गौतमी", "मानवसेव", "वंदे-मातरम्" इत्यादि पत्रिकाओं का कुशलपूर्वक संपादन कर तेलुगु वाङमय की अभूतपूर्व सेवा की ।

आपने अनेक नगरों और राज-दरबारों में जाकर शतावधान, अष्टावधान, आशुकविता करके सम्मान प्राप्त किया । बंगाल के "मयूर भंजी" (मौरोमंजी) के राजा के समक्ष संस्कृत में शतावधान करके आपने अनेक पुरस्कार प्राप्त किये थे ।

आपकी साहित्यिक सेवाओं से प्रभावित हो सन् १९३३ में राजमहेन्द्रवरम् की एक विद्वत्सभा में आपके वामपाद में स्वर्ण गंडपेंडेर पहना कर आपका सम्मान किया । इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी आपका स्वर्णाभिषेक हुआ और गजारोहण कराकर आपका सम्मान किया गया । जनता ने आपको "कवि-सार्वभौम" की उपाधि दी । आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने "कलाप्रपूर्ण" तथा सरकार ने "महा-महोपाध्याय" आदि उपाधियों से आपको विभूषित किया । "आन्ध्र-व्यास" नाम तो आपके लिए पूरे प्रदेश में प्रचलित और सार्थक रहा है ।

चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् (ई० सन् १८६७ से १९४६ तक)

श्री लक्ष्मीनरसिंहम् प्रतिभा के बड़े धनी थे । चालीस वर्ष की अवस्था तक आपकी दृष्टि धुंधली बनी रही, उसके पश्चात् आप पूर्ण रूप से अंधे हो गये, किन्तु मिल्टन, सूरदास, होमर आदि की भाँति ये ज्ञानचक्षु-सम्पन्न व्यक्ति थे । अपनी प्रतिभा के बल पर इन्होंने प्रकृति के रहस्यों का दर्पण की तरह साक्षात्कार कर उन्हें प्रत्यक्ष रूप से अपनी कविता में साक्षात् किया । वे अपनी कविता को पहले कल्पना-लोक में अंकित करते, फिर कभी किसी लेखक के मिलने पर उसे लिखाते । इस

प्रकार आपने काव्य, नाटक, उपन्यास, प्रहसन, निबन्ध तो लिखे ही, "देश माता", "मनोरमा" आदि पत्रों का भी सफलतापूर्वक संपादन किया। श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु ने उत्तम मौलिक रचनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए जो प्रतियोगिता चलायी, उसमें आपके "रामचन्द्र-विजय" नामक उपन्यास को "चिंतामणि" पुरस्कार प्राप्त हुआ।

आप मौलिक उपन्यासकारों में अपना अनुपम स्थान रखते हैं। "अहल्या बाई", "हेमलता" आदि ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त "गणपति" नाम से एक हास्यरस-प्रधान उपन्यास भी आपने लिखा है। "सौन्दर्य-तिलक", "कर्पूर-मंजरी" आपके अन्य उपन्यास हैं।

आप प्रथम श्रेणी के नाटककार माने जाते हैं। आपके द्वारा विरचित "गयोपाख्यान" नाटक इतना लोकप्रिय हुआ कि अब तक उसकी डेढ़ लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं। आपके अन्य नाटकों में "कीचक-वध", "द्रौपदी-परिणय", "श्रीराम-जननमु", "पारिजातापहरण", "नल-चरित्र" और "सीता-कल्याण" मुख्य हैं। आपके लगभग सभी नाटक मंच पर सफलतापूर्वक प्रदर्शित हुए हैं।

भासकृत समस्त नाटकों का श्री लक्ष्मीनरसिंहम् ने तेलुगु रूपांतर किया। आपने "ऋग्वेद" का अनुवाद भी प्रारम्भ किया था, किन्तु वह अपूर्ण ही रह गया। आप "आन्ध्र मिटल्न" और "आन्ध्र-स्काट" नाम से भी प्रसिद्ध हैं। आपने अपनी "आत्म-कथा" भी लिखी है, किन्तु उसे मात्र आत्म-कथा न कह कर आन्ध्र का इतिहास भी कह सकते हैं। आपने केवल रचनाओं के द्वारा अपने जीवन-काल में एक लाख से अधिक रुपये कमाये। पुस्तक-रचना द्वारा तेलुगु में इतना धनोपार्जन करनेवाला शायद ही कोई और हुआ हो। आपकी सभी पुस्तकें आपकी षष्टिपूर्ति के समय दस मोटी जिल्दों में प्रकाशित की गयीं।

आप एक महान् देशभक्त थे। विपिन चन्द्रपाल की अध्यक्षता में आयोजित "गोदावरी मण्डल महा सभा" में आपने जो आशु कविता सुनायी थी, वह देश-भक्ति से ओतप्रोत थी। उसका एक अंश इस प्रकार है—

भरत खण्डंबु चक्कनि पाडियावु
हिन्दुवुलु लेग दूडलै येड्चुचुंड

तेल्लवारनु गडुसरि गोल्लवारु
गिडुकु चुन्नारु मूतुलु बिगिय गट्टि ।

अर्थात्—भारतवर्ष एक सुन्दर दुधारु गाय है, समस्त हिन्दू उसके बछड़े हैं और गोरे निर्दयी ग्वाले की भाँति इन बछड़ों का मुँह बन्द कर दूध दुह रहे हैं, अतः हिन्दू रूपी बछड़े रोदन कर रहे हैं ।

आन्ध्र विश्वविद्यालय ने सन् १९४३ में "कलाप्रपूर्ण" उपाधि देकर आपका सत्कार किया ।

चिलकूरि वीरभद्र राव (ई० सन् १८७२ से १९३९ तक)

तणुकु के समीप स्थित रेलंगी इनका जन्म-स्थान है और राजमहेन्द्रवरम् निवास-स्थान । "आन्ध्रुल-चरित्र" (आन्ध्रवासियों का इतिहास) प्रस्तुत कर आपने आन्ध्र देश का बड़ा उपकार किया है । आपने इतिहास के अनुसन्धान में अपना सारा जीवन लगाया । आपके अनुसन्धान के परिणामस्वरूप "जीर्ण कर्णाट-राज्य-चरित्रमु" और "राजमहेन्द्रपुर-चरित्र" की रचना सम्भव हुई । इन्हीं ग्रन्थों के कारण आप अमर हो गये । उपर्युक्त ग्रन्थ तेलुगु-गद्य-साहित्य की अमूल्य निधि हैं । तिक्कन-सोमयाजी, तिम्मरुसु-मंत्री, श्रीनाथ-कवि, शिवाजी-चरित्र, कर्ण-साम्राज्यमु, नवरसिक-मनोल्लासिनी, स्वयं-संहारमु, वरलक्ष्मी-विलासमु, हास्य-तरंगिणी, अलिय-रामराजुलु और नायकुरालि दर्पमु आपकी अन्य कृतियाँ हैं ।

इस प्रकार आपने तेलुगु गद्य-साहित्य के विकास तथा आन्ध्र के इतिहास के अनुसन्धान की दिशा में सराहनीय सेवा की है । राजमहेन्द्रवरम् में स्थापित "आन्ध्र-चरित्र-परिशोधक सभा" (आन्ध्र इतिहास की अनुसन्धान सभा) के जन्मदाताओं में आपका विशिष्ट स्थान है । आपकी इस महती सेवा का ध्यान रखते हुए सन् १९२८ में नंद्याल में डॉ० सर्वपल्लि राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में आयोजित "आन्ध्र महासभा" के अधिवेशन में आपको "आन्ध्र-चरित्र-चतुरानन" की उपाधि से विभूषित कर आपका सम्मान और सत्कार किया गया ।

कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मण कवि (ई० सन् १८७७ से १९२३ तक)

इनका जन्म-स्थान कृष्णा जिलान्तर्गत पेनुगंचिप्रोलु है। आपने नागपुर से बी० ए० तथा कलकत्ते से एम० ए० किया। बचपन से ही आप में अनुसन्धान के प्रति अभिरुचि थी। आपने तेलुगु-भाषा को विविध शास्त्र-ग्रन्थों द्वारा समृद्ध करने के अभिप्राय से "विज्ञान-चन्द्रिका-मण्डली" नामक एक ग्रन्थ-माला का प्रकाशन शुरू किया। इस ग्रन्थ-माला की ओर से आपने पदार्थ-विज्ञान, भौतिक, रसायन, प्रकृति-शास्त्र, वृक्ष, जीव तथा वैद्य-शास्त्रों से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। तत्सम्बन्धी विषयों के विशेषज्ञों द्वारा ये ग्रन्थ लिखवाये। इनमें चिलूरि वीरभद्रराव का "आन्धुल-चरित्र", कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी का "अर्थ-शास्त्र" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मण रावजी मुनगाल राजा रंगराय के यहाँ दीवान के पद पर कार्य करते थे। इस कार्य में व्यस्त रहते हुए भी आपने भाषा तथा शास्त्रों के अनुसन्धान को जारी रखा। आपका बचपन महाराष्ट्र में व्यतीत हुआ। महाराष्ट्र भाषा पर भी आपने अच्छा अधिकार प्राप्त किया था और "महाराष्ट्र-विजृंभण" इसका उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।

आपने सर्वप्रथम सन् १९१३ में तेलुगु में "विश्वकोश" (Encyclopaedia) के निर्माण का श्रीगणेश किया। आपके जीवन-काल में इसका केवल प्रथम भाग ही प्रकाशित हो पाया था, किन्तु आपके निधन के पश्चात् काशीनाथुनि नागेश्वर-राव पंतुलु ने इसका दूसरा भाग भी प्रकाशित किया। शेष भाग अधूरे ही रह गये। तदनन्तर "तेलुगु-भाषा-समिति" ने अधुनातन शैली में इसके आठ भाग प्रकाशित किये।

इतिहास सम्बन्धी इनके ग्रन्थों में "हिन्दू-मुहम्मदीय-युगमुलु", "शिवाजी-चरित्र", "हिन्दू-देश-कथा-संग्रहमु" उल्लेखनीय हैं। "लक्ष्मणराय-व्यासावली" आपके आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है। शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रणयन के लिए आवश्यक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण कर आपने तेलुगु-भाषा की स्तुत्य सेवा की है।

काशीनाथुनि नागेश्वर राव (ई० सन् १८६७ से १९३८ तक)

तेलुगु में सर्वप्रथम दैनिक पत्रिका निकालने का श्रेय आप ही को प्राप्त है। आपने "अमृतांजन" नामक औषधि का आविष्कार कर उसके प्रचारार्थ बम्बई से "आन्ध्र-पत्रिका" नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और बाद को सन् १९१४ से मद्रास से वह दैनिक के रूप में परिवर्तित हुआ। इस पत्रिका द्वारा नागेश्वरराव जी ने तेलुगु-साहित्य और आन्ध्र-संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। सन् १९२४ में आपने "भारती" नाम से एक साहित्यिक तेलुगु मासिक निकाला। यह आज भी तेलुगु के सुप्रसिद्ध मासिक पत्रों में अपना प्रथम स्थान बनाये हुए हैं। इन दोनों पत्रिकाओं द्वारा आन्ध्र-वासियों का जो उपकार हुआ, वह अविस्मरणीय है।

नागेश्वर रावजी ने "आन्ध्र-वाङमय-चरित्र" नाम से एक छोटा-सा तेलुगु-साहित्य का इतिहास भी लिखा है। आप बहुत बड़े दानी थे। उनकी दानशीलता पर मुग्ध हो महात्मा गान्धीजी ने उन्हें "विश्वदाता" और "देशोद्धारक" नामक उपाधियाँ प्रदान की थीं। "कलाप्रपूर्ण" आपकी एक और उपाधि है। आपने पण्डितों, कवियों तथा लेखकों को प्रोत्साहित ही नहीं किया; अपितु पुरस्कार देकर भी उनका सम्मान किया।

तंजनगरमु तेवप्पेरुमाल्लय्या (ई० सन् १८७२ से १९२१ तक)

आपका जन्म और निवास-स्थान मद्रास है। आप तेलुगु, तमिल और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। आपने गद्य-साहित्य की अपूर्व सेवा की। "आनन्द-मुद्रणालय" के अधिपतियों की प्रेरणा से आपने "महाभारत", "रामायण" और "भागवत" की गद्य में रचना की। इनके अतिरिक्त वसुचरित्र, मनुचरित्र आदि प्राचीन काव्यों की भूमिकाएँ तथा व्याख्याएँ लिखीं, "भगवद्गीता" की विशेषार्थ प्रतिपादक व्याख्या की और कवियों की प्रामाणिक जीवनियाँ प्रकाशित कीं। "नन्ने-चोड़" इसका उत्तम उदाहरण है। "सर्वदर्शन-संग्रह" और "कर्ण चरित्रमु" आपकी अन्य कृतियाँ हैं।

मंत्रिप्रेगड़ भुजंग राव (ई० सन् १८७६ से १९४० तक)

इनका जन्म एलूर में हुआ था। ये लक्कवरम् के जमींदार थे। आप एक ही साथ कवि, पण्डित, आलोचक और नाटककार थे। संस्कृत, तेलुगु और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। "मंजुवाणी" नामक पत्रिका का संपादन करते हुए आपने अनेक उत्तम कृतियों का प्रकाशन किया। "तत्त्वमीमांसा" नामक धर्म-सम्बन्धी काव्य की रचना ८०० पद्यों में की, जिसमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद इत्यादि के सिद्धान्तों का सहृदयता और श्रद्धा के साथ निरूपण हुआ है।

श्री पी० चेंचय्या की मदद से आपने अंग्रेजी में तेलुगु साहित्य का इतिहास (A History of Telugu literature) प्रस्तुत किया है। आपने अपनी प्रथम पुत्री के शुभ-विवाह के अवसर पर उपस्थित २३३ पण्डित कवियों की जीवनियाँ भी "आधुनिकांध्र-कवि-जीवितमुलु" नाम से प्रकाशित करायी है। दिलीप-चरित्र, स्तवराज, मैरावण, विजयांक-साहसमु, गोखले-चरित्र, आन्ध्र कथा सरित्सागरमु इत्यादि आपकी अन्य कृतियाँ हैं।

जनमंचि शेषाद्रि शर्मा (ई० सन् १८८२ से १९५० तक)

आपका जन्म-स्थान नेल्लूर जिलान्तर्गत कलुवायपुरम् है, किन्तु निवास-स्थान कड़पा रहा है। कड़पा में विद्याध्ययन में बाधा उपस्थित होते देख, ग्यारह साल की उम्र में ही आपने काशी जाने का संकल्प किया और पैदल चल कर चार वर्षों में काशी पहुँचे। वहीं पर आपने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया।

दक्षिण लौटने पर ज्योतिष-शास्त्र का भी अच्छा अभ्यास किया और स्थायी रूप से कड़पा में बस गये। आध्यात्म में आपकी विशेष अभिरुचि थी। आपने ब्रह्म-पुराण, ब्रह्मांड-पुराण तथा स्कन्ध-पुराण के कौमारिका खण्ड और केदारु-णचल-खण्डों का तेलुगु रूपांतर किया। श्रीमद्रामायण को भी आपने सुबोध शैली में, प्रत्येक श्लोक का पद्य-रूपांतर करते हुए अनूदित किया। "सर्वमंगला-परिणय" नाम से एक महाकाव्य का सृजन किया और "हृदयानन्द" नाम से एक कल्पना-प्रधान प्रबन्ध-काव्य लिखा, जिसकी पद्य-संख्या तीन हजार है। श्रीशंकर

गुरुवर-चरित्र और उदयगिरि-सुट्टडि नाम से दो ऐतिहासिक ग्रन्थ भी आपने प्रस्तुत किये। आपकी अन्य कृतियाँ हैं—संग्रह-रामायण, विचित्र-पादुका-पट्टाभिषेकमु, पांडवाज्ञातवासमु, दैवज्ञ-सार्वभौम-विजयमु, सीतास्वयंवरमु, सुव्रता, कीरवाणी, यतिधर्म-प्रदीपिका, सुव्रता, सती-तिलका, कवि-विलास, श्रीरामावतार-तत्त्व (दस भाग), कृष्णावतार तत्त्व (१२ भाग) इत्यादि।

सर्जनात्मक साहित्य के साथ आप आलोचनात्मक ग्रन्थों के भी प्रणेता रहे। मनुचरित्र-हृदयाविष्करण आपकी प्रौढ़ समीक्षात्मक कृति है। आपने एक लाख से अधिक पद्यों की रचना की थी। "कलाप्रपूर्ण" उपाधि से आपको विभूषित किया गया था।

वजझल चिनसीताराम शास्त्री (ई० सन् १८७८)

शास्त्रीजी रीति-शास्त्र ग्रन्थों के प्रणेता हैं। आपने व्याकरण और रीति-शास्त्र के क्षेत्र में जो अनुसंधान किया, वह अत्यन्त प्रामाणिक एवं मूल्यवान् है। "पाणिणीयम्", "मुग्ध-बोध" इत्यादि संस्कृत के व्याकरणों का अध्ययन कर आपने तेलुगु में "बाल-व्याकरण" और "चिन्तामणि" का अनुशीलन किया। तत्पश्चात् "चिन्तामणि-विषय-परिशोधनमु" नाम से एक अनुशीलप्रधान ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया। आप द्वारा विरचित "वैयाकरण पारिजातमु" आन्ध्र-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है।

आपने व्याकरण-शास्त्र का सम्यक् अनुसंधान करके यह प्रमाणित किया कि "चिन्तामणि" प्रथम तेलुगु व्याकरण है, जो नन्नय भट्ट द्वारा विरचित है। आपने प्राचीन ग्रन्थों का संपादन करके "बाल-सरस्वतीयमु", "अथर्वण-कारिकावलि", "हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान" इत्यादि की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी लिखीं। "वीरसिंह" आपका उत्तम काव्य-ग्रन्थ है। "कर्ण-चरित्रमु", "मार्गोपदेशिका", "स्त्री वयोनियममु" इत्यादि आपकी अन्य कृतियाँ हैं।

आपने अनेक वर्षों तक विजयनगर के संस्कृत कॉलेज में कार्य किया। आन्ध्र तथा मद्रास विश्वविद्यालयों के भाषा-शास्त्र-सम्बन्धी अनुसन्धान विभाग के आप सदस्य रहे।

कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (ई० सन् १८८० से १९५१ तक)

आपका जन्मस्थान जिला चित्तूर कट्टमंचि गाँव है। ये सुब्रह्मण्यम् रेड्डी के आत्मज थे। बचपन में ही इनके मन में अपने पिता की प्रेरणा से साहित्य के प्रति अभिरुचि पैदा हुई। इनके पिता स्वयं एक अच्छे कवि और विद्वान् थे। उन्नीस वर्ष की अवस्था (सन् १८९९ ई०) में क्रिश्चियन कालेज, मद्रास में बी० ए० की कक्षा में अध्ययन करते हुए आपने "मुसलम्म मरणमु" नाम से एक खण्ड-काव्य लिखा और "आन्ध्र-भाषाभिरंजनी-समाज" द्वारा चलायी गयी काव्य-स्पर्धा में आपको प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। परम्परागत काव्य-रीतियों के विरुद्ध आपने इस काव्य को दुखान्त बनाया, जिसके दुःखान्त होने के कारण पण्डित समुदाय ने कड़ी आलोचना की, किन्तु रेड्डी महोदय अपने मत पर दृढ़ रहे और रूढ़िवादी आलोचकों की आपने परवाह नहीं की।

श्री रेड्डी शैशवावस्था से ही मेधावी छात्र थे। क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास में राजनीति, अर्थ-शास्त्र और तत्त्व-शास्त्र में ऊँची श्रेणी प्राप्त कर आपने अनेक पदक भी प्राप्त किये। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़ते समय आपने "राइट्स-पुरस्कार" प्राप्त किया और सन् १९०६ में इतिहास में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। ये "कैंब्रिज-यूनियन" नामक विद्यार्थी-संघ के उपाध्यक्ष भी रहे। इस प्रकार इंग्लैण्ड में रहते आपने अंग्रेजी-साहित्य की बारीकियों का सूक्ष्म अध्ययन किया था और उसमें अच्छी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

आन्ध्र-विश्वविद्यालय के प्रथम उपाध्यक्ष होने का गौरव भी आपको प्राप्त हुआ और उसके विकास में आपने अपनी सारी शक्ति लगायी। वे केवल आन्ध्र के नहीं, अपितु भारत भर के प्रथम श्रेणी के पाँच-छः विद्वानों और मेधावियों में समझे जाते रहे हैं। आप अच्छे वक्ता, राजनीति-विशारद, साहित्य-स्रष्टा और शिक्षाविद् थे।

रेड्डीजी एक उत्तम कवि थे। अनंतपूर के समीप स्थित बुक्कराय समुद्र नामक गाँव के तालाब की मेंड़ से सम्बन्धित दन्तकथा को इतिवृत्त बनाकर आपने "मुसलम्म मरणमु" काव्य का प्रणयन किया। इस काव्य ने तेलुगु-साहित्य में हलचल मचा दी। गाँव को बाढ़ से बचाने के निमित्त मुसलम्मा नामक एक रेड्डी

वंश की बहू अपने पति की अनुमति से जल में कूदकर अपना बलिदान करती है। इस प्रकार यह दु:खान्त-काव्य वीर-रस प्रधान हो, एक वीर नारी के नि:स्वार्थ त्याग की अविस्मरणीय गाथा बना हुआ है। परम्परागत कविता-संप्रदायों तथा वर्णना-रीतियों में आमूल परिवर्तन लाने का श्रेय श्री रेड्डी को प्राप्त हुआ है।

तेलुगु के एक उत्तम कवि व आलोचक श्री पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् ने इस काव्य की प्रस्तुति करते हुए लिखा है—"बीसवीं शदी में तेलुगु-साहित्य के गगन-मण्डल में उदित होने वाले भोर के तारे की तरह नवीन कान्तियों से आविर्भूत "मुसलम्म-मरणमु" नवीन काव्य है।" सात्त्विक करुण-रसानुभूति उत्पन्न करने में रेड्डीजी सिद्धहस्त हैं। इस प्रकार यह काव्य नवीन रीतियों का जन्मदाता है और भावी पीढ़ी का ध्रुव-तारा बना हुआ है। दो शताब्दियों के संधियुग की अवधि में प्रकाश वितीर्ण करने वाला यह काव्य, नवीन कविता-शैली, काव्य-रचना, कथा-वैचित्र्य, काव्य-पद्धति तथा विषादान्त-काव्य-रचना की रीति के लिए मार्गदर्शक बना हुआ है।

श्री रेड्डी ने सन् १९३६ में "नवयामिनी" नाम से एक और खण्ड-काव्य का सृजन किया। बिल्हणीय काव्य की कथा-वस्तु को असत्य और निसर्गजनित स्वभाव के विपरीत निर्मित बताते हुए, आपने उसमें औचित्य का समावेश कर उसे एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया है।

रेड्डीजी तेलुगु और अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपकी प्रतिभा पर सारा आन्ध्र मुग्ध है। आपके निबन्धों का संग्रह "व्यास-मंजरी" नाम से प्रकाशित हुआ है और "पूर्व-खण्ड", "अभिजन-खण्ड", "भाषा-खण्ड", "आधुनिक कविता-खण्ड" तथा "सांधिक खण्ड" नाम से वह पाँच भागों में विभक्त है। आपकी रचना में ध्वनि की मर्यादा, हास्य और विशुद्ध भाषा के प्रयोग देखते ही बनते हैं। आपने असंख्य ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी हैं, निबन्ध लिखे हैं और नवीन सिद्धान्तों का निरूपण किया है।

"कवित्व तत्त्व विचारमु" आपकी कीर्ति की अविस्मरणीय कृति है। संक्षेप में इस ग्रन्थ की विशेषता यही है कि यह तेलुगु-साहित्य का प्रामाणिक, प्रौढ़ एवं अमर प्रथम समीक्षा-ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ के कारण श्री रेड्डी भी सदा के लिए अमर बने हुए हैं। इस ग्रन्थ में श्री रेड्डीजी ने पिंगलि सूरना कृत "कलापूर्णोदय",

"प्रभावती-प्रद्युम्न" इत्यादि प्राचीन कवियों और कृतियों का अनुशीलन कर उन रचनाओं की पद्धतियों की सम्यक् व्याख्या और आलोचना की है। इस प्रकार वे नवीन समीक्षा-शास्त्र के आचार्य तथा युग-प्रवर्त्तक पुरुष कहलाये। "अर्थ-शास्त्र" आदि आपकी अन्य उत्तम रचनाएँ हैं। तेलुगु-गद्य-शैली के निर्माताओं में आपका स्थान अनुपम है। आधुनिक युग के यशस्वी कवि रायप्रोलु सुब्बाराव, अब्बूरि, दुव्वूरि रामि रेड्डी, पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् आदि को इनसे बड़ी प्रेरणा मिली। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के "ऋतु-संहार-काव्य" के आप कृतिपति हैं।

मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री (ई० सन् १८८०)

आप पूर्व गोदावरी जिला कडियम् के निवासी तथा संस्कृत और तेलुगु भाषा के प्रकाण्ड पण्डित और आचार्य हैं। "आन्ध्र-भाषानुशासनमु" नामक व्याकरण-ग्रन्थ आपके व्याकरण-सम्बन्धी अनुसन्धान का सुन्दर प्रतिफल है। यह दो भागों में प्रकाशित है। "संस्कृत-वाङमय-चरित्र" नाम से आपने संस्कृत-साहित्य का इतिहास भी दो भागों में (वैदिक और लौकिक भाग) प्रस्तुत किया है। यह आन्ध्र-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है। आपने दश रूपकों का प्रामाणिक अनुवाद "आन्ध्र-दश-रूपकमु" नाम से किया है। "आन्ध्र-भविष्य-पर्वमु" आपका मौलिक प्रबन्ध काव्य है। आपकी अन्य मौलिक एवं अनूदित रचनाओं में "भीष्म-प्रतिज्ञा", "विदुर-नीति", "भास-नाटक-कथलु" (दो भाग), "भवभूति-नाटक-वचनमु", "महाभारत-विमर्शनमु" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके संस्कृत-ग्रन्थों में "ब्रह्म-सूत्र-दीपिका" को पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ।

वेटूरि प्रभाकर शास्त्री (ई० सन् १८८३ से १९५० तक)

शास्त्रीजी उच्च कोटि के पण्डित, कवि, समालोचक और अनुसन्धानकर्ता थे। मद्रास के प्राच्य लिखित भण्डागार में तथा तदनन्तर तिरुपति में आपने अनेक वर्षों तक हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों का सम्पादन व संशोधन कर उनके लिए प्रामाणिक और शोधपूर्ण भूमिकाएँ लिखीं। "हर-विलास", "क्रीडाभिराम" इत्यादि की भूमिकाएँ शास्त्रीजी की गवेषणात्मक प्रतिभा का परिचय देती हैं।

आप एक अच्छे कवि भी थे। "कडुपुतीपु", "कपोत-कथ", "विश्वासमु" तथा "मुन्नाल्लमुच्चट" आपके सरस खण्ड-काव्य हैं। भासकृत "प्रतिमा", "कर्णभार" तथा "मध्यम व्यायोग" का आपने सुन्दर तेलुगु-रूपांतर किया है। "शृंगार-श्रीनाथमु" और "कनाकाभिषेकमु" आपके गवेषणात्मक ग्रन्थ हैं। "तेलुगु-मेरुगुलु", "मीगड-तरगलु" आपके साहित्यिक निबन्धों के संग्रह हैं।

डाक्टर चिलुकूरि नारायण राव (ई० सन् १८९० से १९५२ तक)

आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। मद्रास-विश्वविद्यालय से तेलुगु तथा कन्नड़ भाषाओं में एम० ए० की उपाधि लेने के पश्चात् आपने "डाक्टरेट" भी प्राप्त की। आपने १,२५,००० पृष्ठों में २४० ग्रन्थों की रचना की। उनमें अधिकांश पुस्तकें अमुद्रित ही रह गयी हैं। उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों में अथर्वण-वेद की व्याख्या, त्रिपिटक, जैनमत, कुरान-शरीफ, बाइबिल, आपस्तंभ-धर्म-सूत्र आदि धार्मिक ग्रन्थ हैं; "सिद्धांत-कौमुदी", "तर्क-संग्रह" आदि की तेलुगु व्याख्या आपके समीक्षा-ग्रन्थ हैं; "आन्ध्र देश," "रोम", "चीन", "जापान", "रूस" इत्यादि २० देशों के इतिहास आपके ऐतिहासिक शोध-ग्रन्थ हैं। आपने गान्धीजी सदृश महापुरुषों की आठ जीवनियाँ लिखी हैं। "संस्कृत-तेलुगु-निघंटु", "आन्ध्र-वाङ्मय-चरित्र" (दस भाग), "अंबा", "अश्वत्थामा", "अच्चि और तिम्मरुसु" नामक नाटक आपकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

डॉ० राव की ख्याति को अमर बनाये रखने वाला उनका अमूल्य बृहत् ग्रन्थ, "आन्ध्र-भाषा-चरित्र" है, जिसमें बिशप काल्डवेल के भाषा सिद्धान्त का खण्डन करते हुए इस सिद्धान्त का निरूपण किया गया है कि तेलुगु द्राविड़-परिवार की भाषा नहीं, आर्य परिवार की प्राकृत जन्य भाषा है। यह बृहत् ग्रन्थ दो भागों में मुद्रित है और अनुसन्धान-ग्रन्थों में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

आपकी प्रतिभा पर मुग्ध हो आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने आपको "कलाप्रपूर्ण" की और काशी-संस्कृत-विद्यापीठ ने "महोपाध्याय" की उपाधियाँ प्रदान कीं। आप तेलुगु भाषा-साहित्य के साथ संस्कृत और अंग्रेजी के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

(१) तेलुगु-साहित्य का सर्वेक्षण ((A survey of Telugu Literature), (२) तेलुगु-साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ (Modern trends

in Telugu literature), (३) वृष्टि-बूँदों का नृत्य (आधुनिक कविता) (The dance of the Rain-drops, Modern poetry), (४) त्यागराज के गीत (The songs of Tyagaraja) और (५) तिकन्ना और पोतन्ना के कतिपय अनुवाद (Translations frome Tikkana and Potana) आपकी अंग्रेजी की कृतियाँ हैं। संक्षेप में वे व्यक्तिरूप में एक संस्था थे।

मल्लमपल्लि सोमशेखर शर्मा (ई० सन् १८९१ से १९६३ तक)

शर्माजी अनुसन्धान कर्ताओं में अपना उत्तम स्थान रखते हैं। आपके इतिहास सम्बन्धी शोध-ग्रन्थ तेलुगु-भाषा के रत्न कहे जा सकते हैं। शिला-लेखों की खोज करके असंख्य अज्ञात विषयों को प्रकाश में लाने का आपको श्रेय प्राप्त है। आन्ध्र की संस्कृत सम्बन्धी आपके विद्वत्तापूर्ण प्रामाणिक और गवेषणात्मक निबन्ध तेलुगु-भाषा के लिए गर्व की वस्तु कहे जा सकते हैं, इनमें संकलित रूप में "आन्ध्र-वीरुलु" "प्राचीनांध्र नौका-जीवनमु", "प्राचीन-विद्यापीठमुलु", "अमरावती-स्तूपमु", "चारित्रक व्यासमुलु" (ऐतिहासिक निबन्ध), "आन्ध्र-देश-चरित्र-संग्रहमु" विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

शर्माजी के उद्भट पाण्डित्य और अनुसंधान के सुन्दर फल अंग्रेजी में भी दृष्टि-गोचर होते हैं। रेड्डी-राज्य का इतिहास तथा आन्ध्र देश का विस्मृत चरित्र (The History of Reddy kingdoms तथा Forgotten chapter of Andhra country) अंग्रेजी-ग्रन्थ उनकी कीर्ति को द्विगुणित करते हैं।

इनके अतिरिक्त "शातवाहन", "चालुक्य-वंश", "कलिंग-गंगवंश", "काकतीय-वंश" इत्यादि पर इनके अनुसन्धान, अनेक अज्ञात सत्यों का उद्घाटन कर हमें अपनी प्राचीन महत्ता का दर्शन कराते हैं।

तेलुगु के विश्वकोश के तृतीय भाग "तेलुगु-संस्कृति" के प्रधान संपादक के रूप में आपने जो कार्य किया, वह सदा अविस्मरणीय समझा जायगा। यह भाग आपकी प्रतिभा का सुन्दर उदाहरण है। "चरित्र-राजनीति" (इतिहास और राजनीति) भाग के सम्पादन में भी आपने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

वंगूरि सुब्बाराव (ई० सन् १८८६ से १९२३ तक)

तेलुगु में प्रथम "साहित्य का इतिहास" लिखने का श्रेय आप ही को प्राप्त है। पिठापुरम् के जमींदार श्री चेलिकानि लच्चाराव के निमन्त्रण पर ये वहाँ गये और "आन्ध्र-परिशोधक-मण्डली" की स्थापना की। श्री रामविलास मुद्राक्षर शाला नाम से एक प्रेस भी खोला गया, जिसमें कतिपय अमुद्रित ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया। आपके "आन्ध्र-वाङ्मय-चरित्र" में आन्ध्रवासियों का वृत्तान्त और तेलुगु-भाषा की उत्पत्ति और विकास-क्रम का परिचय है। इस ग्रन्थ की भूमिका श्री कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने लिखी है। श्री सुब्बाराव का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "शतक-कवलु-चरित्र" है। इसमें दो सौ शतक कवियों की जीवनियाँ हैं और श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव पंतुलु ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है। सुब्बारावजी की अन्य कृतियों में "प्रभातम्" (उपन्यास), "वेमन-जीवित-चरित्र", "रायलु-राजनीति", "कांचन-माला", "ललित-कुमारी", "ईसप नीति-कथलु", "अरेबियन नाइट्स कथलु" इत्यादि प्रमुख हैं।

त्रिपुरनेमि रामस्वामी चौधरी (ई० सन् १८८६ से १९४३ तक)

लन्दन से बैरिस्टरी पास करके लौटने पर आपने वकालत के साथ-साथ समाज-सुधार तथा साहित्य-रचना को अपने जीवन-कार्यों का अभिन्न अंग माना। जाति-व्यवस्था तथा कुरीतियों का खण्डन करते हुए आपने अनेक सभाओं में भाषण दिये तथा ग्रन्थ भी लिखे। आर्य और द्राविड़ समस्या को लेकर आपने कई पुस्तकें लिखीं। उनमें "शंबूक-वध", "सूत-पुराण", "पल्नाटि-युद्ध", "कुरुक्षेत्र-संग्राम" इत्यादि मुख्य हैं।

आपने वेद-पठन तथा पुरोहिताई का अधिकार किसी जाति विशेष के लिए नहीं माना। इसका बड़ी धीरता के साथ आपने खण्डन किया, विवाह-विधि इसका उत्तम उदाहरण है। अन्य धर्मों से लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित करने के लिए आपने "शुद्धि"-सम्प्रदाय का प्रचलन किया।

आप बड़े देश भक्त थे और कवि, वक्ता, आलोचक और समाज-सुधारक अनेक रूपों में प्रसिद्ध और लोकप्रिय थे।

काव्य-साहित्य

आधुनिक युग का काव्य-साहित्य अपनी परम्परागत काव्य-रीतियों तथा तत्कालीन युग-प्रवृत्तियों के नवीन गुणों को ग्रहण कर अवतरित हुआ। प्राचीन शैली में प्रबन्ध-काव्यों का प्रणयन करके उन्हें नवीनता प्रदान करनेवाले प्रमुख कवि तिरुपति वेंकटेश्वर तथा कवि द्वय (**दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री**--ई० सन् १८७१ से १९१९, **चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री**--ई० सन् १८७० से १९५०) हैं। यही कारण है कि आलोचकों की यह उक्ति इनके लिए सर्वथा उचित प्रतीत होती है कि "तिरुपति वेंकट कवि द्वय की कविता प्राचीन कविता के लिए भरत-वाक्य और नवीन कविता के लिए नांदी-वाचक समझी जाती है।"

राजदरबारों में दम तोड़ती रीति-बद्ध कविता को सर्व-साधारण के समक्ष उपस्थित करने का श्रेय उक्त कवियों को ही प्राप्त है। चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री ने अपने जन्म-धारणा का उद्देश्य बताते हुए इस सत्य को सिद्ध किया है--

"कवनार्थम्मुदयिंचितिन्
सुकविता कार्यंब नावृत्ति;
मद्भव मद्दानर्तारितु
तद्भवममद्भाग्यंब्....।"

अर्थात्--काव्य रचनार्थ मेरा उदय हुआ, उत्तम कविता करना ही मेरा धंधा है। इसी कार्य में मेरा जन्म तरे, यही मेरा भाग्य है।

आगे कविद्वय ने इस पर एक प्रश्न-चिह्न उपस्थित किया है कि--

"कविता ललतांगिकिन, धनमु प्रधानमा
रसिकताधिकता सुखतल् प्रधानमा ?"

अर्थात्--कविता लतांगी के लिए धन प्रधान है या रसिकताधिक सुख ?

इसका उत्तर भी उन्होंने अपने काव्योद्देश्य के स्पष्टीकरण में इस प्रकार दिया है--

"मारुमूल पदमुलु गुप्पिन मुच्चटगुने,
प्रतिपदम्मुन रस मुट्टुपडिन गाक !"

अर्थात्—"अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से कहीं पाठक को आनन्द की उपलब्धि हो सकती है ? इसके लिए तो प्रत्येक शब्द में रस की स्रवंती उफान लिये हुए होनी चाहिए ।"

अपनी कविता-रीतियों का उद्देश्य बड़े ही आत्म-विश्वास और अभिमान के साथ कवि घोषित करते हैं—

"कवुल मुन्पटि रुल्सुकु कट्टुबडमु
धनुलुपंडितरायादि कवुलु चूपु
त्रोवलंबट्टिपोदुमु, देवुनैन लक्ष्यपेट्टमु"

अर्थात्—पूर्ववर्ती कवियों ने जो काव्य-नियम या विधान बनाये हैं, केवल उन्हीं से हम बँधे नहीं रहेंगे, पण्डित राय आदि कवियों ने जो मार्ग दिखाया है, उसी पर हम चलेंगे । इस सम्बन्ध में हम भगवान् की भी परवाह नहीं करेंगे ।

आन्ध्र देश में कविता द्वारा एक नयी क्रान्ति उत्पन्न करने का श्रेय इसी कविद्वय को है । तत्कालीन समस्त राजदरबारों में जा शतावधान, अष्टावधान, आशु-कविता, चाटूक्ति इत्यादि द्वारा राजा-महाराजाओं को प्रसन्न कर अनुपम सत्कार और पुरस्कार भी इन्होंने प्राप्त किये और तेलुगु-कविता को राजदरबार के घेरे से विमुक्त कर साधारण प्रजा के समक्ष उपस्थित भी किया । इनके इस प्रयास ने कविता के प्रति लोगों में रुचि जगायी ।

इस सन्दर्भ में तेलुगु काव्य में प्रचलित 'शतावधान' और 'अष्टावधान' की व्याख्या देना युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि इनकी शास्त्रीय परिभाषा की जानकारी के बिना इस प्रकार की काव्य-रचना-प्रक्रिया समझना कठिन है ।

शतावधान—तेलुगु अथवा संस्कृत में सौ पृच्छकों को निर्वाचित विषय और वृत्तों की कविता में एक-एक चरण (प्रथम चरण) के अनुक्रम में सुनाना और इस प्रकार १०० पद्यों के प्रथम चरण के समाप्त होते ही पृच्छकों की माँग के अनुसार उन-उन संख्यावाले पद्यों को पूर्ण रूप से सुनाना ही "शतावधान" कहा जाता है, जिसके अन्तर्गत १०० पद्य मौखिक रूप में सुनाये जाते हैं ।

अष्टावधान—इसका अभिप्राय है चार या पाँच व्यक्तियों का क्रमशः कविता, समस्या, निषेधाक्षरी, व्यस्ताक्षरी, दत्ताक्षरी, शास्त्र-चर्चा, घंटी के बजने की चोटों

की गिनती में तथा शतरंज—नामक आठ प्रकार के कार्यों में एक ही समय एकाग्र चित्त हो सभी पर अवधान करके सुनाना अथवा समर्थन करना।

उक्त कविद्वय स्वतन्त्र कवि थे। तेलुगु की व्याकरण-रीतियाँ इनके मत में संकुचित थीं, अतः इन्होंने लक्षणों की अपेक्षा लक्ष्य को ही उपादेय और श्रेयस्कर माना है। यही नहीं, अपने को कवीन्द्र मानकर इन्होंने कवि-समाज को चुनौती भी दी कि यदि कोई उन्हें कविता में पराजित करने की क्षमता रखते हों, तो मैदान में आवें। स्वयं इस कविद्वय ने इस प्रकार की चुनौती देते हुए कहा है—

> "दोषमटंचेरिगियुनु दुंडुकोप्पग पेंचिनारमी
> मीसमुरेंडु भाषलकु मेमे कवीन्द्रलमंचु···"

अर्थात्—यह जानते हुए भी यह कहना दोष है कि हम ही दोनों भाषाओं के कवीन्द्र हैं, फिर भी हमने बड़ी उद्दण्डता के साथ मूँछें बढ़ायी हैं।

इनकी चुनौती पर वेंकट रामकृष्ण तथा कोप्परपु कविद्वय रुष्ट हो गये थे। इसके परिणामस्वरूप साहित्य में जो कलह प्रारम्भ हुआ, उसका अपना एक अलग ही इतिहास है। पोलवर जमींदार के आश्रय में रहते इन लोगों ने उनकी प्रेरणा से एडविन आर्नल्ड रचित "लाइट आफ एशिया" का "बुद्ध-चरित्र" नाम से सरस काव्यानुवाद किया। "देवी-भागवत" इनका सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है। "नानाराज सन्दर्शनमु", "जातक चर्चा" इनके अन्य पद्य-ग्रन्थ हैं। "श्रवणानंदमु" नाम से आत्माश्रयी कविता शैली में एक खण्ड काव्य की भी इन्होंने रचना की है, जिसका इतिवृत्त वेश्या के घर जाने वाले एक विट को सचेत करने वाला आत्म-बोध है। "गीरतमु" महाभारत का अधिक्षेप अथवा उपहास (पैरोडी) काव्य है। इसके पर्वों के नाम—मेकुबिगिपुपर्वमु (खूंटे कसने वाला पर्व), चप्पट्ल पर्वमु (तालियाँ बजाने वाला पर्व), शंतिपु पर्वमु (शान्त करने वाला पर्व), मंदलिपु-पर्वमु, (सावधान करने वाला पर्व) इत्यादि बड़े ही अद्भुत और रमणीय हैं। साहित्यिक दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। इस काव्य के सम्बन्ध में कवियों का कथन है—

> "गीर्षुयेतुरतास्तेवै गीरताः परिकीर्तिताः
> तानुद्दिश्यकृतं काव्यं गीरतं परिरक्षते।"

महाभारत की कथावस्तु के आधार पर मौलिक नाटक तथा संस्कृत के नाटकों के अनुवाद भी इस कविद्वय ने प्रस्तुत किये। गद्य की भी इन्होंने अच्छी सेवा की। इसका परिचय आगे कराया जाएगा।

तिरुपति वेंकट कविद्वय के साथ लोहा लेने वालों में **वेंकट रामकृष्ण कविद्वय ओलेटि वेंकट रामकृष्ण शास्त्री** (ई० सन् १८८३ से १९३९), तथा **वेदुल रामकृष्ण शास्त्री**—(ई० सन् १८८९ से १९१८ तक) का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। पिठापुरम् के राजा श्रीराव वेंकट कुमार महीपति सूर्यरायेंद्र के संस्थान में इन्होंने अपनी अवधान-कविता का पाठ कर सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त किया था। तिरुपति वेंकट कविद्वय से इनका वाक्समर भी हुआ था। तिरुपति वेंकट कवि द्वय की कृतियों में से दोष निकाल कर इन्होंने "शतघ्नि" नाम से एक खण्डन-ग्रन्थ प्रकाशित किया। यही नहीं, इस साहित्य-समर में "रामकृष्ण-भारत", "पाशुपतमु", "अट्टहास", "शृंगभंग", "कोकिल-काक" इत्यादि अनेक रचनाएँ प्रकाश में आयीं। इस कविद्वय की कृतियों का समग्र परिचय यहाँ सम्भव नहीं है।

इसी श्रेणी में गणनीय कविद्वय **वेंकटपार्वतीश (बालांत्रपु वेंकटराव**—(सन् १८८०) तथा **ओलेटि पार्वतीशम्**—(सन् १८८२) का नामोल्लेख आता है। इस कविद्वय की कीर्ति का केतु "एकान्त-सेवा" नामक काव्य है। इस काव्य ने तेलुगु-काव्य-साहित्य में नवीन रीति का बीजारोपण किया। इसकी भूमिका में तेलुगु के आधुनिक विख्यात कवि श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्रीजी लिखते हैं—"यह कृति समीक्षातीत है। बंगला-भाषा में कवीन्द्र रवीन्द्र की "गीतांजलि" का जो स्थान है, वही तेलुगु-भाषा में इन महाकवियों की इस कृति का भी है।" भावों में विलक्षणता, भाषा में माधुर्य, शैली में नवीनता इस कृति की विशेषताएँ हैं।

ये कविद्वय अंग्रेजी और बंगला बिलकुल नहीं जानते थे, फिर भी इनकी कविता में रवीन्द्र की भावना ध्वनित होती देख सबको आश्चर्य होता है। इनका "एकान्त-सेवा" प्रकृति को भी पुलकित करने वाली रीति में, भक्तों द्वारा भगवान् के प्रति गाये गये प्रणय गीतों का संकलन है।

सन् १९११ में "आन्ध्र-प्रचारिणी-ग्रन्थमाला" का समारम्भ हुआ। इस

ग्रन्थमाला को इन कवियों की कृतियों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इन लोगों ने आधे दर्जन से अधिक उपन्यास, चार-पाँच नाटक, पाँच-छ: गद्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त, "काव्य कुसुमावली" (दो भाग), "बृंदावनमु", "श्रीरामायणमु" (बाल और अयोध्याकाण्ड) नामक पद्य-काव्यों की भी रचना की है। "कविराज हंस" और "कवि कुलालंकार" उपाधियों से ये विभूषित हुए हैं।

तिरुपति वेंकट कविद्वय के शिष्यों में **अब्बारि सुब्रह्मण्यम्** और **वेलूरि शिवराम शास्त्री** के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ने गद्य, लक्षण-शास्त्र, कहानी, आलोचना आदि के क्षेत्रों में स्तुत्य कार्य किया है, जिसका परिचय सन्दर्भानुसार दिया जाएगा। इन दोनों ने 'शतावधान' भी किये हैं, पर एक साथ नहीं, अलग-अलग ही। शतावधान कविता के अतिरिक्त, अब्बारि सुब्रह्मण्य शास्त्री के "दैव-बलमु" और "मेघुडु" नवीन कविता की शैली में विरचित-खण्ड काव्य और श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री के "मुक्तालता" (प्रबन्ध-काव्य), "कृतकसूत्र" (खण्ड-काव्य) और "एकावली" (कविता संग्रह) विशेष प्रसिद्ध हैं।

राष्ट्रीय कविता

तेलुगु-साहित्य में सर्वप्रथम देश-भक्ति का प्रबोध करने वाले कवि **गुरजाड वेंकट अप्पाराव** (ई० सन् १८६५-१९१५) थे। अपनी काव्य-रचना के प्रारम्भ में कवि ने बताया है कि नवीनता और प्राचीनता की विशेषताओं के समन्वय से एक नूतन कान्ति उद्भूत होगी, लेकिन देश की दुर्दशा देख कवि का मानस कोरी कलात्मक काव्य-रचना से ऊब उठता है और उनका स्वर देश-भक्ति-पूर्ण भावों से ओत-प्रोत हो प्रकट होता है। उनका कथन है—"देशमुनु प्रेमिचुमन्ना मंचिदि-अन्नदि पेंचुमन्ना" अर्थात्—"हे भाई! देश के साथ प्यार करो, अच्छाई को बढ़ाओ।" कवि इस सन्दर्भ में उद्बोधन के स्वर में कहता है—"तुम हतास हो बैठे रहोगे, तो देश का उत्थान कैसे होगा? तुम उद्यमशील वनो, समस्त कलाओं का अध्ययन करो, देशी माल से हमारी पवित्र भूमि को भर दो। आगे क़दम बढ़ाओ, पिछड़े रह जाओगे, तो दुनियाँ की दौड़ में सदा पीछे रह जाओगे। शिक्षा में स्पर्धा और वाणिज्य में स्पर्धा रखो, किन्तु व्यर्थ कलह न बढ़ाओ।

अपने स्वार्थ को थोड़ा कम करके पड़ोसी की सहायता करो। देश की परिकल्पना केवल मिट्टी से नहीं, वहाँ के वासी मनुष्य-मात्र से की जाती है। चाहे धर्म कोई भी हो, देशवासियों का हृदय एक हो। देशरूपी सुन्दर वृक्ष को वे प्रेमरूपी पुष्पों से पुष्पित और मानव के पसीने से धरती सिक्त होकर संपदारूपी फसल पैदा करे। पत्रों की ओट से छिपकर कविता रूपी कोयल बोल उठे और उस वाणी को सुन्दर देश-प्रेमरूपी भावनाएँ जागृत हों।"

आन्ध्र के निवासियों को प्रबुद्ध करने में इस कविता का कितना श्रेष्ठ स्थान रहा है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि एक प्रकार से यह आन्ध्र का राष्ट्रीय गीत ही रहा है। उनकी दृष्टि में एक मानव का दूसरे मानव के साथ प्रेम करना अति साधारण तथा सहज जीवन-सिद्धान्त है।

कविता को सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनाने के विचार से अप्पाराव ने व्यावहारिक भाषा में अपनी रचनाएँ कीं। "मुत्याल-सरालु", "नीलगिरि-पाटलु" इनके सुन्दर गीति-काव्य हैं। इन्हीं काव्य-कृतियों द्वारा राष्ट्रीय कविता का बीजारोपण हुआ। इनकी कथा-वस्तु, छन्द, रचना-रीति इत्यादि में नवीनता पायी जाती है। "मुत्याल-सरमुलु" नामक गीत में एक साधारण परिवार की स्त्री के समाज के प्रति जो विचार हो सकते हैं, उनका चित्रण हुआ है, तो "कासुलु" में आदर्श प्रेम तथा "डामन-पिथियस" में आदर्श मैत्री का। इन गीतों का आन्ध्र में विपुल प्रचार हुआ।

इस नवीन कविता-शैली के लक्षणों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि (१) इसका इतिवृत्त संक्षिप्त और स्वतन्त्र होता था। (२) इसमें प्राचीन वृत्तों तथा अन्य छन्दों को त्याग कर लोक-गीतों की शैली में कन्नड़ के षट्पदि तथा फारसी के गजल की सुन्दर समन्वित नवीन शैली में रचना की जाती है। (३) इसका कथ्य तत्कालीन समाज से ग्रहण किया जाता है। (४) इसकी रचना में सरलता और सहजता का ध्यान रखा जाता है। और (५) इससे जातीय तथा राष्ट्रीय भावनाओं का प्राचुर्य होता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य **रायप्रोलु सुब्बाराव** (ई० सन् १८९२) का नाम उल्लेखनीय है। यों तो आप स्वच्छन्दतावादी या भाव-कविता के जनक माने

जाते हैं, किन्तु साथ ही इनकी कविता राष्ट्रीय भावना से भी ओतप्रोत हुई है। कवीन्द्र रवीन्द्र के शान्ति-निकेतन में अध्ययन करते हुए इन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया तथा प्रकृति के रहस्यों से परिचित हुए। अंग्रेजी-साहित्य के अध्ययन के साथ वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, टेनिसन इत्यादि प्रकृति प्रेमी अंग्रेजी कवियों की कृतियों से भी ये प्रभावित हुए। प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति सुब्बाराव के हृदय में अगाध भक्ति एवं श्रद्धा थी ही। राष्ट्रीय-आन्दोलन का भी इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मानवता के प्रति प्रेम ने इनकी कविता में कोमलता, मार्दवता एवं मधुरता पैदा कर दी। उपर्युक्त सभी विशेषताओं से पूर्ण रायप्रोलु की कविता को तेलुगु-वाङमय में सम्मानित स्थान प्राप्त है।

प्राचीन भारत के ऐश्वर्य के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए इन्होंने लिखा है—

> **"वेदशाखलु वेलसे निच्चट**
> **आदि काव्यंबलरे निच्चट।"**

अर्थात्—वेदों की शाखाओं तथा आदि काव्य का आविर्भाव यहीं पर, अर्थात् इसी भूमि पर हुआ है।

सुब्बाराव के गीत राष्ट्रीय-भावों से परिपूर्ण हैं। उनके राष्ट्रीय गीत आन्ध्र के निवासियों को प्रबुद्ध करने में ही नहीं, उनमें देश-प्रेम के बीज बोने में भी सफल सिद्ध हुए हैं। यहाँ उनकी ऐसी कविताओं से एक उद्धरण इस सन्दर्भ में प्रेषित है—

> **"एदेशमेगिना एडु कालिडिना**
> **ए पीठ मेक्किना एवरेदुरयिना**
> **पोगडरा नीतल्लि भूमि भारतिनि**
> **निलुपरा नी जाति निंडु गर्वम्मु**
> **लेदुरा यिटुवंटि भूदेवि येंदु**
> **लेरुरा यिटुवंटि धीरुलिकेंदु**
> **अवमानमेलरा अनुमानमेल**
> **भरत पुत्रडनंचु भक्ति तो बलुक।"**

अर्थात्—" किसी भी देश में जा, कहीं भी क़दम रख,

किसी भी आसन पर चढ़, कोई भी तेरे सम्मुख आवे,
तुम अपनी माँ भारत भूमि की प्रस्तुति कर,
अपनी जाति की प्रतिष्ठा की रक्षा कर,
ऐसी भूदेवी अन्यत्र नहीं है रे भाई !
ऐसे धीर-वीर अन्यत्र नहीं हैं रे भाई !
अपमान काहे को, संकोच किसलिए ?
भक्तिभाव से कह तू भारत का पुत्र है !"

इसी प्रकार आन्ध्र के प्राचीन वैभव का गान करते कवि थकते नहीं । एक कविता में उन्होंने लिखा है—अमरावती नगर में बौद्ध-मतावलंबियों ने जिस मुहूर्त में विश्वविद्यालयों की स्थापना की, ओरुगल्लु (वरंगल) में वहाँ के राजाओं ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए शस्त्र-शालाओं की जिस दिन स्थापना की, विद्यानगर (विजयनगर) की राजवीथियों में कविता-कन्या के परिणय के पंदल जिस दिन अलंकृत किये गये, पोट्नूरु के समीप में जिस दिन आन्ध्र-साम्राज्य ने अपने दिग्विजय-सूचक स्तम्भ की प्रतिष्ठापना की, उस दिन यह सब कुछ मिलाकर आन्ध्र-संतति की ऐसी महिमा अपनी दिव्य दीक्षा के सुख की स्फूर्ति दिलाने वाली है । आज भी उस आवेश की अभ्यर्थना करते हुए ये कहते हैं —हे आन्ध्रवासी ! आन्ध्र-भूमि पर अक्षत छिड़काओ !

सुब्बाराव की कृतियों में तृणकंकण, स्नेहलता-देवी, स्वप्न-कुमारमु, जडकुच्चुलु, तेनुगु-तोट, आन्ध्रावली, ललिता, वनमाला इत्यादि प्रमुख हैं । "रम्यालोकमु" और "माधुरी-दर्शनमु" आपके रीति-ग्रन्थ हैं ।

राष्ट्रीय-कविता करने वालों में श्री **विश्वनाथ सत्यनारायण** (सन् १८९३) की भी गणना की जाती है । "आन्ध्र-पौरुषमु" और "आन्ध्र-प्रशस्ति" में आपके राष्ट्रीय-भावों का परिचय मिलता है । इनकी कविता की भावना प्राचीन आन्ध्र राज्यों के वैभव के स्मरण मात्र से ही पुलकित हो उठती है और उनके हृदय की वृत्तियाँ आर्द्र हो जाती हैं । उनकी कविता में अपने पुरातन के प्रति कितना मोह है, जब वे इस बात की अनुभूति करते-कराते हैं कि उनकी धमनियों में कितनी पीढ़ियों का आन्ध्र-रक्त बह रहा है और आज अस्वतन्त्रता का भाव उनके शरीर

को कितना कँपा रहा है। कवि का भावोद्वेग आन्ध्र-देश को आन्दोलित करने में समर्थ है। वेगीक्षेत्र के पुरावैभव का स्मरण कर कवि का कलेजा तड़प उठता है।

सत्यनारायण जी ने "किन्नेर-सानि-पाटलु" और "कोकिलम्म-पेन्ड्लि" नाम से दो गीति-काव्यों की भी रचना की है। ये खण्ड-काव्यों के भी प्रणेता थे। इनकी कविता में प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है। "गिरिकुमारुनि-प्रेम-गीतालु", "शृंगार-वीथी", "शशिदूतमु", "ऋतुसंहार", "रामायण-कल्पवृक्ष" आदि इनके अन्य काव्य ग्रन्थ हैं। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है और आन्ध्रवासियों ने "कवि सम्राट्" नामक उपाधि से इनका सत्कार किया है।

राष्ट्रीय कवियों में **"अब्बूरि रामकृष्ण राव"** तथा **"कोडालि सुब्बाराव** ने भी आन्ध्र के प्राचीन वैभव का गुण-गान करके जनता में राष्ट्रीय जागृति पैदा की। प्राचीन वैभव के शिष्टावशेषों पर आप लोगों ने जी-भरकर आँसू बहाये हैं। **दुर्भाक राजशेखर कवि** (सन् १८८८) के काव्यों में "राणा-प्रताप-चरित्र" एक अत्यन्त देशभक्तिपूर्ण पाँच आश्वासों का काव्य है। राष्ट्रीयता से पूर्ण यह काव्य युवकों में देशभक्ति एवं उत्तेजना पैदा करने में सफल हुआ। "चंडनूपाल-चरित्र" भी इनका वीर-रस प्रधान काव्य है। "वीरमती-चरित्र", "विलय-माधुर्यमु" आपके अन्य काव्य-ग्रन्थ हैं। आपने कई नाटकों के अतिरिक्त भारत की वारांगनाएँ (The Heroiness of Hindustan) नामक एक अंग्रेजी ग्रन्थ की भी रचना की है।

श्री दुर्भाक कवि के साथ शतावधान करते विशेष प्रसिद्धि-प्राप्त कवि **गडियारमु वेंकट शास्त्रीजी** (सन् १८९७) राष्ट्रीय कवियों में अपना अनुपम स्थान रखते हैं। आपका "श्री शिव-भारतमु" आठ आश्वासों का महाकाव्य वीररस और देश-भक्ति का प्रबोध करानेवाला है। इस काव्य के सम्बन्ध में यह उक्ति भी चल पड़ी है कि "शिव-भारत" का श्रवण कर उसकी प्रशंसा में सिर न हिलानेवाला व्यक्ति ढूंढ़े भी न मिलेगा। इसमें कुल २,५०० पद्य हैं। आधुनिक युग के महाकाव्यों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। श्री शास्त्रीजी उच्चकोटि के विद्वान्, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एवं महाकवि हैं। दुर्भाक राजशेखर कवि के साथ मिलकर "राजशेखर वेंकटशेष कविद्वय" नाम से आप लोगों ने संयुक्त रूप से कई ग्रन्थों की रचना की है।

कविकोकिल नाम से **विख्यात दुव्वूरि रामिरेड्डी** (सन् १८९५ से १९४७ तक) ने राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण उत्तम खण्ड-काव्यों की रचना की। इनका कृषीवलुडु (कृषक) नामक खण्ड काव्य अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। कवि ने एक स्थान पर लिखा है—

> **प्रोद्दु पोड्डुन नीपादपूज कोरकु**
> **कविनि तेच्चिति दोसिट गन्नेरपूलु**
> **बलिवितर्दिक निरतंबु वेलुगुनट्टुल**
> **हृदयपु सुगंधदीप मर्पितु गोनुमु ॥**

अर्थात्—प्रातःकाल ही मैं (कवि) तुम्हारे चरणों की पूजा के हेतु अपनी अंजलि भर पुष्प लाया हूँ। बलिवितर्दिका को सदा प्रज्वलित रखने के लिए मैं अपना हृदयरूपी सुगन्धित दीप समर्पित कर रहा हूँ। स्वीकार करो !

ऐसे ही एक अन्य स्थान पर कवि ने कहा है—हे जननी ! प्राचीन काल में गंगा नदी की उत्ताल तरंगों पर स्वतन्त्रता के गानों का जो निनाद होता था, वह आज तुम्हारी प्रिय संतानों की आत्मारूपी वीणा-तंत्रियों में समाविष्ट सम्पूर्ण सभ्यता के संधान-सूत्र का निनाद होकर वायु-मण्डल को प्रतिध्वनित किये हुए है। तुम अपने आसन से उतर जाओ !

"नवयुग-चक्रवर्ती" नाम से प्रसिद्ध **जाषुवा कवि** (सन् १८९५) की राष्ट्रीयता का सुन्दर परिचय कराने वाले काव्य हैं "नेताजी" और "बापूजी"। इनकी कविता भारतीयता का मूर्त रूप है। विशुद्ध और मधुर तेलुगु भाषा में हृदय का स्पर्श करने वाली कविता करने में जाषुवा सिद्धहस्त हैं। "फिरदौसी", "कांदीशीकुडु" और "गब्बिलमु" आदि आपके उत्तम खण्ड-काव्य हैं। आपने कुल २१ ग्रन्थों की रचना की है।

"गौतमी कोकिल" नाम से विख्यात कवि **"वेदुल सत्यनारायण शास्त्री"** (सन् १९००) ने सुन्दर देश-भक्तिपूर्ण कविताओं की रचना की। "दीपावली", "विमुक्ति", "आराधना", "मा-तल्ली" (मारी माता) और "मुक्तावली" आपके उत्तम काव्य-ग्रन्थ हैं। मातृभूमि को दास्य-श्रृंखला से विमुक्त करने के महायज्ञ में आत्म-बलिदान करनेवाले वीरों की समाधि पर फूल का पौदा बनकर

अपने सौरभ से दिशाओं को सुगन्धमय बनाते हुए गिरने की कवि कामना करते हैं और इसी को अपना अहोभाग्य मानते हैं ।

श्री राल्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा (सन् १८९३) एक उच्चकोटि के समालोचक होने के साथ ही एक आदर्श राष्ट्रीय कवि भी हैं । "पेनुकोंडा" नामक कविता में उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना के दर्शन होते हैं ।

"अभिनव-तिक्कना" नाम से विख्यात **तम्मल सीता राममूर्ति चौधरी** (सन् १९०१) के "राष्ट्रगानमु", "आत्मार्पणमु", "धर्म-ज्योति", "अमर-ज्योति" और "आत्म-कथा" (बापूजी) आदि रचनाएँ राष्ट्रीय भावनाओं का भाण्डार कही जा सकती हैं । राष्ट्रीय भावनाओं का आपने प्रबल प्रचार किया । आपकी "भारत-माता", "पंजाब-वध", "छुआ-छूत", "गांधी" और "चरखा" इत्यादि शीर्षक कविताएँ आन्ध्र के युवकों को प्रबुद्ध करने में सफल हुई हैं । आपमें राष्ट्रीय आवेश कूट-कूट कर भरा हुआ है । आप लिखते हैं—जहाँ तकली और मथनी चलती है, वहाँ तो अकाल धूमकेतु बन जाता है । भारत के हे प्राणी ! त्याग का आश्रय ले, कर्मयोगी होकर यशस्वी बनो !

अन्य राष्ट्रीय कवियों में अडिवि बापिराजु, नायनि सुब्बाराव, पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु, जंध्याल पापय्य शास्त्री, दाशरथी, सुरवरम प्रताप रेड्डी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। एटुकूरि नरसय्या चौधरी (ई० सन् १९११ से १९४९ तक) ने भारतीय वीरों की यशस्वी गाथाओं का गुण-गान किया है । आपने जहाँ "वीर-भारतमु" में सुभाषचन्द्र बोस आदि राष्ट्रीय नेताओं की वीरता का गान किया है, वहीं "मगुव-मांचाला" तथा "अलगुराजु" में आन्ध्र के ऐतिहासिक वीरों और वीर-वनिताओं की प्रस्तुति की है । गुरजाड़ राघवराव ने "नवाखाली" तथा "बापूजी" काव्य लिख कर अपनी राष्ट्रीय भावना और देशभक्ति का अच्छा परिचय दिया है ।

भाव कविता

तेलुगु की भाव-कविता हिन्दी की छायावादी कविता के सदृश होती है और उसी श्रेणी में आती है । भाव-कविता आत्मपरक होती है । लाक्षणिक प्रयोग, भाषा-वक्रता, प्राकृतिक-आकर्षण, प्रकृति में मानवीकरण, प्राचीन काव्य-सम्प्रदायों के विरुद्ध विद्रोह की भावना तथा गेयात्मकता इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं । इसमें कवि की अनुभूति अनन्यारोपित, तीव्र और स्वाश्रय होती :

उत्कृष्ट काव्य के लिए भाव-सौन्दर्य, रीति-सौन्दर्य एवं शब्द-सौन्दर्य की आवश्यकता होती है, क्योंकि काव्य के समस्त लक्षण प्रायः इन्हीं तीन प्रक्रियाओं में निहित हैं। कवि का मनोभाव जितनी ही तीव्रता के साथ काव्य में अंकित होता है, उसका प्रभाव भी उतना ही तीव्र और गहन होता है। भाव-कवि अपने वांछित मनोधर्म के अनुरूप भाव तीव्रता का आराधक रहा है, अतः अपने मनोधर्म को प्रतिबिम्बित करनेवाली ऐसी कविता का नामकरण उसने "भाव-कविता" किया। पूर्वापर कथाओं से मुक्त हो, केवल किसी एक घटना अथवा भाव का चित्रण करने वाली गेय-कविता "भाव-गीत" कहलाती है, जो हिन्दी में गीति-काव्य माना जाता है। लौकिक जीवन से सम्बन्धित इतिवृत्त को पाठक आसानी से हृदयंगम कर पाता है, किन्तु भाव-कविता को आत्मसात् करने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक कवि की मानस-अनुभूति को भली-भाँति समझे और उससे भावात्मक तादात्म्य स्थापित करे। जब तक पाठक अनुभूति की तीव्रता और भावों की गहनता को नहीं पहचान पाता, तब तक कवि के मनोभावों को समझना सम्भव नहीं होता, और उसकी कविता भी पाठक के लिए दुरूह बनी रहती है।

भाव-कविता आत्मपरक होती है, इसलिए कवि अपनी अनिर्वाच्य मनो-दशाओं की अनन्त छायाओं को शब्दबद्ध चित्रों में जोड़ने का प्रयत्न करता है। भाव-कवि शब्दों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के साथ उनमें गंध, ध्वनि और रंगों को भी आरोपित करता है। उसका विश्वास है कि यदि हम ऐसे भावपरक गुणों को ग्रहण नहीं कर पाते, तो भावों का अन्वय हमारे लिए कठिन हो जाता है। उसका यह भी कहना है कि भावों की ऐसी अल्प अस्पष्टता भाव-कविता को सौन्दर्य एवं शोभा प्रदान करती है, जिसे बाहर से नहीं तो अन्तर से अनुभूत किया जा सकता है। इसमें कवि, संवेदना के वशीभूत हुए बिना व्यक्ताव्यक्त प्रतीत होने वाली अनुभूति को लीलात्मक [illegible] में शब्दों द्वारा व्यक्त करता [illegible] अतः उसमें थोड़ी अस्पष्टता का होना सहज है। इसके अतिरिक्त भावों को सांकेतिक शैली और नवीन बिम्ब-अनुभूति में ध्वनित करने के कारण यह कविता प्राचीन कविता-रीतियों से भिन्न होती है, जिससे पूर्व परिचय न रखने वाला पाठक इसका पूरा रसास्वाद नहीं कर पाता और कभी-कभी तो अभ्यास के अभाव में मानसिक क्लेश भी पा सकता है।

इस भाव-कविता को मार्दव, प्रौढ़ता एवं प्रशस्ति से पूर्ण करने वाले कवियों में **देवुलपल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री** (सन् १८९७) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रोमांटिक कविता को अधिक लोकप्रिय बनाने और इस आन्दोलन को स्थायित्व दिलाने में आपकी कविता बहुत सफल हुई है। इस प्रयत्न का प्रारम्भ में साहित्य-शास्त्रियों द्वारा काफी विरोध हुआ, किन्तु क्रमशः यह एक कविता-सम्प्रदाय के रूप में जनप्रिय और एक कविता-शाखा के रूप में अंगीकृत हुआ। इस सम्प्रदाय का शुभारंभ रायप्रोलु सुब्बाराव ने किया। आपकी कविता प्रधानतः दो धाराओं में प्रवाहित हुई, एक तो राष्ट्रीय धारा में, जो अविरल गति से अपना मार्ग प्रशस्त करते आगे बढ़ती जा रही थी और दूसरी भाव-कविता धारा में, जिसमें प्रणय कविता आध्यात्मिक तत्त्व-सम्बन्धी जिज्ञासा को अभिव्यक्त करते प्रस्फुटित हुई। कवि के हृदय से प्रस्फुटित ऐसा एक रहस्यात्मक भाव निम्नलिखित पंक्तियों में मुखरित हुआ है—

सच्चिदानंद कल्याण सदनमयिन
यी मनोहर जगतिकिनेगुदेंचि
प्रेमलक्षिनाराधिपवेमि यकट !

अर्थात्—यह मनोहर जगत् सच्चिदानन्द कल्याण का सदन है। इसमें आविर्भूत हो हे कवि, तुम प्रेम लक्ष्मी की आराधना क्यों नहीं करते ?

कवि का प्रणय लौकिक भावना से पूर्ण न होकर अलौकिक तत्त्व-समन्वित है। प्रेम-तत्त्व की व्याख्या सुब्बाराव ने बड़ी खूबी के साथ की है। "माधुरी दर्शनमु" में नर-नारी सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए कवि बताते हैं—"नर-नारी का सम्बन्ध दिशा-विभाग की भाँति क्रमशः पृथ्वी, जननी, भगिनी, सहचरी, कुमारी के रूप में मानना होगा।" इसी प्रकार "रम्यालोक" में कवि-पराग का पान करने के लिए मँडराने वाले भ्रमर सुमन के उन्मुक्त हास्य पर मुग्ध हो, उसका आलिंगन करने को उद्यत हो जाते हैं, इसे देख एक सुकवि ने प्रियतम और प्रेयसी का सम्बन्ध जोड़ा, तो दूसरे ने माता-पुत्र का। सुब्बाराव की कृतियों में "तृणकंकण", "कष्ट-कमला", "ललिता" इस श्रेणी की कविताओं में आती हैं।

इस परंपरा में सर्वश्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री,

अब्बूरि रामकृष्ण राव, तल्लावज्झल शिवशंकर शास्त्री, नंडूरि सुब्बाराव, काटूरि वेंकटेश्वरराव, पिंगलि लक्ष्मीकान्तम्, अडिवि बापिराजु, दुव्वूरि रामि रेड्डी, मल्लवरपु विश्वेश्वरराव, विश्वनाथन् सत्यनारायण इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री शिवशंकर शास्त्रीजी की अध्यक्षता में साहिती-समिति की स्थापना हुई। समिति की ओर से "साहिती" नामक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। इस पत्रिका ने नयी कविता, मुख्यतः भाव-कविता के विकास में अविस्मरणीय कार्य किया। समिति के सदस्यों में देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, विश्वनाथ सत्य-नारायण, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नोरि नरसिंह शास्त्री, नायिनि सुब्बाराव, चिन्ता दीक्षितुलु, नंडूरि सुब्बाराव, मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री तथा मुनि-माणिक्यम् नरसिंहराव मुख्य हैं।

देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री सौ प्रतिशत कवि हैं। व्यक्तिगत भावनाओं को सार्वजनीन बना अश्रुओं में नक्षत्रों के प्रकाश को प्रदर्शित करने वाला शिल्प है, उनकी कविता में। सुमधुर प्रेमानुभूति को सुरम्य शब्दों में व्यक्त करना, उनकी विशिष्टता है। अपूर्व मधुर रक्ति को स्फुरित करने वाले अव्यक्त मनोज्ञ भाव-गीतों के गान करने में कवि अपनी समता नहीं रखते। प्रेम की व्याख्या कैसी अनूठी उनकी निम्न उद्धृत अभिव्यंजना में ध्वनित हुई है—

"प्रेयसिकि लेदु शरीरमु
लेदु मेनु नातीयनि प्रेमकेनि;
कलदे एडबाटिक माकु ?"

अर्थात् —प्रेयसी का कोई शरीर नहीं है और मेरे मधुर प्रेम का भी तो तन नहीं है, फिर भला हम दोनों का वियोग ही क्यों होगा ?

कृष्ण शास्त्री की "पल्लकी" नामक कविता भाव और शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त उदात्त है। कवि एक स्थान पर कहते हैं—"मेरे प्राण सखा ने मेरे लिए पालकी भेजी है, पालकी का नाम सुनते ही मेरा हृदय तड़प उठा। वियोग दुःख का अनुभव करते मेरा शरीर जो ठूंठ बना हुआ है, वह पल्लवित और पुष्पित हो सुन्दर वृक्ष बना।"

कवि की कविता में बलवती भावना का उद्वेग, सुन्दर शब्द-चित्र, नवीन उप-

मानों और रूपकों का सौन्दर्य अत्यन्त रमणीक बन पड़े हैं। कवि की एक उद्-भावना देखें—

ना निवासम्मु तोलुत गंधर्व लोक
मधुर सुषमा सुधागान मंजुवाटि;
एनोक वियोग गीतिक, नेनु निद्दुर
वेन्नेललदारिनोकरेयि वेडलिपोति।

अर्थात्—मेरा निवास पहले गंधर्व-लोक की मधुर, सौन्दर्य एवं सुधासम गान की मंजुवाटिका था। मैं एक वियोग-गीतिका हूँ, एक रात्रि को मैं निद्रारूपी ज्योत्स्ना के मार्ग में कहीं भटक गयी।

कृष्ण शास्त्री की पद्य-कृतियों में "कृष्ण-पक्षमु", "प्रवासमु" और "ऊर्वशी" मुख्य हैं। "महती" (गीतों का संग्रह), "कार्तिकी", "आकलि" अन्य रचनाएँ हैं। कवि ने निराशा और विषाद आदि के भी सुन्दर चित्र खींचे हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं—"मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ, मेरी नश्वरता पर भींगने वाली पलकें नहीं हैं। स्वर्णिम किरणों से प्रादुर्भूत प्रातःकाल में ही परिणय की तैयारियों में मग्न कौन मेरी जरठांधकार मृत्यु पर द्रवीभूत होगा? इनकी कविता में भग्न प्रेम, स्वच्छन्द-प्रियता, तात्त्विक दृष्टि और निर्वेद अधिक देखा जा सकता है।

श्री नल्लवरपु विश्वेश्वरराव कृष्ण शास्त्री के अनुयायियों में से हैं। इनकी कविता में भावना की तीव्रता प्रशंसनीय है। इनके "मधुकील" और "कल्याण-किंकणी" नामक गीति-संग्रह उल्लेखनीय हैं। भाव-कविता को पुष्टि और सौन्दर्य प्रदान करने वालों में वेदुल **सत्यनारायण शास्त्री** अद्वितीय हैं। देवुलपल्लि की कविता में अंग्रेजी साहित्य का शैली-सौन्दर्य, तो वेदुला की कविता में संस्कृतवाणी की सुकुमारता पायी जाती है। उनका जीवन सुख से दूर क्लेशमय रहा है, अतः उसका प्रभाव भी हम उनकी "दीपावली" रचना में देख सकते हैं। प्रेम, सौन्दर्य, निर्वेद और करुणा वेदुला की कविता की सुरुचिकर संपदा है। वेदना की तीव्रता इनकी कविता में चरम को छूती दृष्टिगत होती है। कवि ने इस जगत् की क्रूरता पर अपना अनुभव व्यक्त करते हुए लिखा है—

प्रोक्किन कोलंदि कालितोद्रोक्कुचुन्न
यी कठिन लोकमेल्ल बहिष्कृतम्मु।

अर्थात्——ज्यों-ज्यों हम थकते जाते हैं, त्यों-त्यों यह कठिन जगत् हमें अपने पैरों से दबाता जाता है, अतः यह बहिष्कार करने योग्य, अर्थात् त्याज्य है।

"मातल्लि" नामक काव्य में कवि ने एक जगह लिखा है कि——"अनुभूति से शून्य, रस-रिक्त, विवर्ण और सुगन्धिहीन मेरे हृदयरूपी कमल में तुम अपने चरण कमलों का पराग तथा उससे पूर्ण थोड़ा-सा मधु छलका दो। हे माता! मेरे लिए यही पर्याप्त है। मैंने जो स्वप्न अपने हृदय में छिपाये हैं, वे सत्य सिद्ध होंगे और मेरा जन्म सार्थक होगा।"

इनकी कविता में सुनियोजित भावना, अभिव्यक्ति-सौन्दर्य और उत्तम शिल्प दृष्टिगोचर होता है।

अब्बूरि रामकृष्णराव की कविता में भाव-संपदा के साथ सरलता और सुघरता है। "ऊहा-गान", "पूर्व-प्रेम" तथा "मल्लिकांबा" आपके सुन्दर खण्ड-काव्य हैं। आपने वृत्तों में कविता की है। कवि अपने पवित्र प्रेम का परिचय देते हुए "मोमुन मोमुजेर्चि निनु मुद्दिडु कोरिकलेदु" नामक कविता में लिखते हैं–"हे सखी, मैं तुम्हारे मुख-मण्डल में अपना मुँह जुड़ाये चुम्बन करने की इच्छा नहीं रखता, तुम्हारी कोमल वक्षरूपी शय्या पर अपना सिर रख अपनी उंगलियों को तुम्हारे शिरोजों में फँसाये मल्लिकापुष्पों की सुगन्धि को घ्राण करने की आकांक्षा नहीं रखता, मैंने केवल इसलिए तुम्हें वर लिया है कि तुम मुझे प्रणय-पथ का निर्देश करो और मुझे प्रेम का मार्ग बता मेरा उद्धार करो।" एक गीत में कवि अपनी प्रेयसी का स्वागत करते कहते हैं——"हे प्रेयसी, उठकर चली आ! पल्लवित वृक्षों में की शीतल छाया में यौवन-रूपी वसन्त का शुभोदय हुआ है, हास-विलास करते हाथों में हाथ मिलाये हम अपनी समस्त चिन्ताओं को विस्मृत कराने वाले रागों का आलाप करते सुगंधित स्थानों में चलेंगे।"

वेंकट पार्वतीश कविद्वय ने अपनी "एकान्त-सेवा" कृति द्वारा तेलुगु-पाठकों को भाव-कविता के प्रति आकृष्ट किया और उन्होंने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को प्रेयसी-प्रियतम के परस्पर अनुराग के रूप में अति रमणीय शैली में चित्रित किया। उन्होंने प्रेयसी के रूप में आत्मा का प्रेमातिशय, अन्वेषण, निराशा, साधना तथा अन्त में मिलन या ऐक्यता-सिद्धि का सुकोमल भावनाओं में वर्णन किया है।

नायनि सुब्बाराव- -अपनी दो कृतियों "फलसृति" और "सौभद्रुनि प्रणय-यात्रा" के साथ भाव-कविता-क्षेत्र में अवतरित हुए । कृष्ण शास्त्रीजी परमात्मा के अन्वेषण में रहस्यात्मक कविता करते रहे, किन्तु नायनि सुब्बाराव अपने लक्ष्य स्थान तक पहुँच गये और साधना के अन्तिम चरण में पहुँचकर कवि ने अपने को पतंग तथा परमात्मा को सूत्रधार मान उनसे निवेदन किया—

प्रलय रुद्रुनि केलिकाराम मैन
ई भयावह शून्यमंदिट्लुनन्नु
तोलुबोम्माट लाडितुवेल प्रणय
सूत्रमुनु व्रेल्लमध्य जेर्चुकोनि उरक

अर्थात्—हे प्रियतम ! प्रलय काल के रुद्र की केलि-क्रीड़ा भूमि—इस भयावह शून्य में, मुझे पुतली की भाँति नचाते और मेरे प्रणय सूत्र को अपनी उँगलियों में कसकर रखे, तुम मुझे अपनी लीला का परिचय क्यों देते हो ?"

इसी सन्दर्भ में आगे कवि ने कहा है—"कभी सूत्र को खींचते, कभी उसे ढीला करते, तुम अपनी गम्भीर मुखमुद्रा में अव्यक्त मन्दहास दर्शा रहे हो, इसका क्या अभिप्राय है ? कहीं नखाग्रधार सूत्र को तोड़ने का विचार तो नहीं है न ? अन्तिम आशा से उड़नेवाले पतंग झंझा मारुत के आघात से कटकर कहीं उड़ जाय, तो तुम्हें क्या हाथ लगेगा ? सूत्र को लपेटते क्रमशः अपने समीप खींच हृदयालिंगन में मुझे बन्दी बनाओ, ऐसा निवेदन मैं नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मैं तो यही चाहता हूँ कि तुम अपनी उँगलियों के मध्य कसे सूत्र को तोड़ो मत ।"

तल्लवज्झुल शिवशंकर शास्त्रीजी (सन् १८९२) आधुनिक साहित्य के आचार्य पीठ पर अवस्थित हो "साहिती", "सखी" और "प्रतिभा" इत्यादि साहित्यिक पत्रों के सम्पादक के रूप में तथा "साहिती-समिति" और "नव्य-साहित्य-परिषद्" के संस्थापक के रूप में काफी लोकप्रिय हुए हैं । संस्कृत, बँगला, प्राकृत, पाली और अंग्रेजी इत्यादि अनेक भाषाओं के विद्वान् तो हैं ही, साथ ही आत्मपरक कविता और संगीत रूपकों की रचना में भी आप अद्वितीय हैं । स्वच्छन्दतावाद के पोषकों में से हैं । "हृदयेश्वरी" नामक आपकी कृति प्रणय-कविता का सागर है । कवि की दृष्टि में प्रेयसी देवी हैं । राधा-कृष्ण का प्रणय कवि का आदर्श है । शास्त्रीजी की दृष्टि में प्रेयसी अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है । ये कहते हैं—

तलचुचुन्नानु ना प्रियतमवटंचु
ऍंचुचुन्नानु निन् हृदयेश्वरिगनु
वलचुचुन्नानु जीवितेश्वरिगनिन्नु
भावनमुसेयुचुंटिनिन् देविरीति ।

अर्थात्—मैं सोचता हूँ तुम मेरी प्रियतमा हो, फिर तुम्हें हृदयेश्वरी मानता हूँ, जीवितेश्वरी के रूप में तुमसे प्रणय करता हूँ और तुम्हारी एक देवी के रूप में कल्पना करता हूँ। "हृदयेश्वरी"-काव्य के प्रारम्भ में कवि कहते हैं—"मेरे हृदय के अन्तर्गत लीन हो सुप्त विमल कविता-स्रवंती को स्रोत बना प्रकट करने वाली हे सरस्वती! इस क्षण मैं तुम्हारा वर्णन करने जा रहा हूँ, अतः तुम मेरी आराध्य देवी हो।" इस प्रकार कवि की दृष्टि में नायिका केवल उपभोग की वस्तु न रहकर आराध्य देवी बन जाती है। यही भाव कवि अन्यत्र भी अभिव्यक्त करते हैं—"हे देवि, तुम मेरे लिए निश्चय ही प्राणाधिक, सुखदायिनी देवी हो, अनुपम सरस्वती हो, वास्तव में तुम्हीं मेरे भाग्य की देवी हो, मैं सत्य ही तुम से प्रेम कर रहा हूँ, किन्तु यह प्रेम अति निर्मल है, पूर्ण हृदय के साथ मैंने इसके पूर्व ही सहर्ष अपने आपको तुम्हें अर्पित कर लिया है।"

आपने कविता को एक आन्दोलन का रूप देकर बड़ी सफलता के साथ उसका निर्वाह किया। आधुनिक कवियों के आप आचार्य हैं, इस समय तो आप संन्यास धारण कर स्वामीजी बने हुए हैं।

नंडूरि सुब्बाराव ने वृत्त छन्द को त्याग गीत-शैली में तथा साहित्यिक भाषा के स्थान पर ग्रामीण बोली में "यॆंकिपाटलु" का प्रणयन किया। श्री अचंट जानकीराम ने एक स्थान पर लिखा है—"सुब्बाराव के गीतों ने लोगों में तहलका मचा दिया। इसीलिए उन गीतों के प्रति लोगों में अभिरुचि पैदा हुई और सुब्बाराव की काव्य-नायिका 'यॆंकि' घर-घर और द्वार-द्वार प्रसिद्ध हो गयी। भाषा तो उनकी निम्न जाति वालों की है, किन्तु भाव उन्नत अनुभूतियों से पूर्ण हैं। प्रत्येक गीत किसी एक उन्नत अनुभूति का परिचय देते हुए आन्ध्रवासियों के दैनिक जीवन में कला को बड़ी निपुणता के साथ मूर्तिभूत कर देता है। मुग्धा नायिका 'यॆंकि', नायक नायुडु की छाया में महल बनाने वाली यॆंकि, कवि की कल्पना के सफल साक्षात्कार के कारण घर-घर की देवी बनी हुई है।"

सुब्बाराव के गीत अत्यन्त सरस एवं हृदय पर सीधे प्रभाव डालने वाले हैं। कवि की भावुकता और उसकी कल्पना का आवेग उसके गीतों में मूर्त रूप धारण कर लेता है। इनके प्रयोग अद्भुत एवं हृदय को फूल की भाँति खिलाने वाले हैं, जैसे—चाँदनी को चर कर नदी जुगाली कर रही है", "नदी के गर्भ में छिप कर वन सो गया है", "गले में कलेजा प्रकंपित हो रहा है" और नायक को वृक्ष ही बना रहने दे और नायिका शायद पुष्प बन जाय इत्यादि। ऐसे प्रयोग पाठकों के हृदय को छूते हैं।

बसवराजु अप्पाराव ने इसी शैली में गीतों की रचना की। कोयल को सम्बोधित कर कवि ने कहा है—"रे कोयल, बोल मत—मेरा कलेजा फट जाएगा, मीठे रागों का आलाप मत कर, उसके माधुर्य से मेरा मन कट जायगा।" कैसी सुन्दर अनुभूति है!

अडवि बापिराजु की कविता में अव्यक्त भावना मधुर पीड़ा बन-कर ही रह गयी। कवि जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि तुम और मैं—दोनों मिल कर फूल की सुगन्ध की भाँति, सुगन्ध की आकांक्षा की तरह हैं, तुम और मैं—दोनों मिलकर कोकिल के कंठ की भाँति, कंठ की कामना की तरह हैं, तुम और मैं—इस प्रकार कविता एकरसता लिये चलती है।

दुव्वूरि रामिरेड्डी की कविता में केवल प्रेयसी और प्रणय ही वस्तु बन कर न रहें, अपितु प्रकृति, समाज तथा कृषक ने भी उनको प्रेरणा प्रदान की। उनकी "बाष्प-दौत्य" नामक कविता अत्यन्त लोकप्रिय हुई। रामिरेड्डी की भाषा पर "जेम्स कजिन्स" जैसे पाश्चात्य विद्वान् मुग्ध थे। "प्रणयाध्वानमु" नामक कविता में कवि आकांक्षा प्रकट करते हैं कि "समस्त जगत् चन्द्रिका मुग्ध शर्वरी की छायाओं में सुख की निद्रा ले रहा है, किन्तु कवि के मन में प्रकृति करवटें बदल रही है। इसलिए वे अपनी कविता-कांता से अपनी कामना प्रगट कर बैठते हैं—चलो, हम भी सरोवर के तट पर स्थित झाड़ियों में चलें।"

प्राचीन कविता रीति के समर्थक होते हुए भी नवीनता के प्रभाव में कविद्वय सर्वश्री **पिंगलि लक्ष्मीकांतम्** (सन् १८९४) तथा **काटूरि वेंकटेश्वरराव** (सन् १८९५) ने अपने "तोलकरि" काव्य द्वारा नये स्वर का आलाप किया। एक स्थान पर कवि लिखते हैं—

वेलदि ! यी रागलतलु पुष्पिंचुनट्टु
लो मनोरथमुलु फलियिंचुनट्लु
दरुलोरसिपारु नी ममता स्रवंति
देलिपोदमु वेरे तलंपेल मनकु !

अर्थात्—हे रमणी ! ये राग-लताएँ पुष्पित हों, ये मनोरथ सिद्ध हों, इनकी पूर्ति के लिए दोनों तटों का स्पर्श करती प्रवाहित होनेवाली तुम्हारी ममता-रूपी स्रवंती में हम बह चलेंगे, फिर हमें अन्य विषयों की चिन्ता ही किसलिए ?

इस कविद्वय के काव्य-ग्रन्थों में "सौन्दर-नंदमु" तथा "पौलस्त्य-हृदय" विशेष उल्लेखनीय हैं। आधुनिक कवियों में ये अपना सम्माननीय स्थान रखते हैं।

श्री विश्वनाथन् सत्यनारायण ने अनेक काव्य और महाकाव्यों के साथ सुन्दर गीतों की रचना भी की। उनमें "गिरिकुमारुनि प्रेम गीतालु", "कोकिलम्म पेंड्लि" तथा "किन्नेर सानिपाटलु" बहुत ही लोकप्रिय हैं।

"ई शरत्पूर्णिमा चन्द्रिका सुधा मरीचिलोनुन्ननेनु"—नामक गीत में कवि बताते हैं कि इस शरत् पूर्णिमा की ज्योत्स्ना की सुधासम मरीचिका में स्थित मैं नवीन शंपालता की आकृति में हूँ, अतः मेरा यह अर्धांश मुझे ही दिखाई नहीं देता।

"शृंगारवीथी" नामक कृति में कवि कहते हैं—"हे प्रियतम, मैं तुम्हारी भौंहों द्वारा चालित तारका भ्रमण-रेखा, अधरों के संचालन और अर्ध-निमीलित नेत्रों में लीन हो तुम्हें एक सुन्दर मूर्ति के रूप में ग्रहण कर चुका हूँ। इस समय आप "रामायण कल्प-वृक्ष" नामक एक महाकाव्य के प्रणयन में लगे हुए हैं। आधा काव्य समाप्त हो चुका है। दो-तीन काण्ड प्रकाशित भी हुए हैं।

'जाषुवा' खण्ड-काव्यों की रचना में विशेष लोकप्रिय है। इनकी अन्य कृतियाँ—फिरदौसी, गब्बिलम्, मुमताज महल आदि भी बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। मुमताज महल में एक कोमल प्रसंग का लालित्य-दर्शन करने के लिए निम्नलिखित पद देखें—

अमवस निशीथिनी सहस्रमुल गूलि
पादुषा पाडिनाडु दुर्भर वियोग

भावगीतालु, अंदच्चुवडियेनेमो
देविमुंताजमहलु निद्रिंचुगोरि ।।

अर्थात्—अमावस्या की रात्रि में बादशाह ने दुर्भर वियोग के भाव-गीतों का गान किया। ये भाव-गीत संभवतः देवी मुमताज की चिर निद्रा प्राप्त कब्र में मुद्रित हुए हों।

इस परम्परा में अनेक कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं, जिनमें मुख्यतः इन्द्रगंटि हनुमच्छास्त्री, पिलका गणपति शास्त्री और पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अभ्युदय-काव्य

(प्रगतिशील रचना-प्रक्रिया)

भाव-कविता व्यक्ति प्रधान थी, इसलिए वह जनता और कवि के बीच भाव-तादात्म्य का सेतु न बन सकी। अमूर्त कल्पनाओं के साक्षात्कार और अज्ञात प्रेयसी की आराधना में कवि ने समाज की उपेक्षा की। 'कला—कला के लिए' सिद्धान्त प्रमुख रहा। कवि में कर्म-दीक्षा के स्थान पर नैराश्य, शोक, वेदना और अज्ञात शक्ति के हाथों में आत्म-समर्पण करने की भावनाएँ बलवती होती गयीं, इसलिए स्वभावतः भाव-कवियों की यह आत्मपरक काव्य-शैली शिथिल होने लगी। उन्होंने इस भावात्मक अनुभूति (Abstract feeling) को एक सीमा तक व्यक्त करने में सफलता पायी, किन्तु वह सर्वांगीण काव्य-सर्जन के लिए आगे चल कर समर्थ और सफल सिद्ध नहीं हो सकी।

सामाजिक दशा में भी युग-परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन आया, जब नव्य-चेतना का उदय होने लगा। प्राचीन मान्यताएँ करवटें बदलने लगीं। विज्ञान की प्रगति ने मानव को अधिवास्तविकता का बोध कराया। संसार में पूँजी-पतियों की निरंकुश नियंत्रण-शक्ति के विरुद्ध जन-स्वर मुखरित होने लगा और आर्थिक विप्लव के साथ सामाजिक समता का यह स्वर तीव्रतर होने लगा। अग्रगामी जन-शक्तियों ने पुँजीवादी नेतृत्व का विरोध किया और "फासिज्म" के विरुद्ध सभी ओर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में

भी प्राचीन सम्प्रदायों एवं रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द हो उठा। हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने "शुरू हुआ है जंग हमारा, शुरू हुआ है जंग" जैसे गीतों की रचना द्वारा तथा नजरुल इस्लाम ने अपने अनेकानेक विप्लव-गीतों द्वारा देश के नवयुवकों में नवीन चेतना जागृत की, जिसका प्रभाव आन्ध्र के युवकों पर पड़ना स्वाभाविक था। इस प्रकार उपर्युक्त सभी परिस्थितियों ने क्रमश: विकसित हो एक विराट् सामाजिक चेतना का रूप धारण किया। इन्हें साहित्य में ध्वनित करने वाले कवि देश की हर भाषा के साहित्य में द्रष्टव्य होने लगे।

देश में अकाल, दरिद्रता, गुलामी तथा जीवन की विषम परिस्थितियों ने साहित्य और कविता की गति ही बदल दी। "विश्वश्रेय: काव्यम्" आदर्श को कविता का लक्ष्य बना "अभ्युदय कविता" (प्रगतिशील कविता) का उदय हुआ। तेलुगु में इस कविता के प्रवर्तक **श्रीरंगम् श्रीनिवास राव (श्री श्री)** (सन् १९१०) हैं। "महा-प्रस्थान" गीत-संग्रह द्वारा इन नवीन जनवादी कविता का आपने सूत्रपात किया। श्री श्री ने कविता-वस्तु, भाषा, भाव, छन्द तथा रचना-संविधान में भी अपनी प्रतिभा के बल पर नवीन परिवर्तन कर तदनुरूप मार्ग-प्रशस्त किया, इसीलिए वे तेलुगु काव्य-साहित्य के विकास-क्रम में मील के पत्थर बने। प्रारम्भ में श्री श्री ने भी भाव-कविता की और उनकी ऐसी कविताएँ "प्रभवा" नाम से संकलित हैं, पर बाद में उनका दृष्टिकोण बदला और उन्होंने अनुभव किया कि पीड़ित दशा से मानव को सुख-समृद्धि की ओर ले जाना ही काव्य का आशय और उद्देश्य होना चाहिए। जन-शक्तिरूपी रथ को वे आगे खींच ले जाना चाहते हैं और मानव-समुदाय को उत्तेजित करते पुकार उठते हैं—"पदंडि मुंदुकु पदंडि तोसुकु पोदां पैपैकि", अर्थात्—"बढ़े चलो, ढकेलते चलो, आगे चले चलो।" सामाजिक-परिवर्तन का संकेत करते हुए कवि कहते हैं—"पृथ्वी माता की प्रसव वेदना नयी दुनिया के आविर्भाव का स्फुरण दिला रही है।" कवि कभी-कभी आशा-निराशाओं के द्वन्द्व में भी पड़ जाते हैं। अपने "निजंगाने निखिल लोकं निंडु हर्ष वहिस्तुंदा"—नामक गीत में कवि यह आशा व्यक्त करते हैं कि "क्या सचमुच कभी पूरे जगत् में हर्ष व्याप्त हो सकेगा ? उन्हें विश्वास है कि मानव-समुदाय के अभ्युत्थान का समय निकट ही है ? भयंकर

द्वेषाग्नि प्रज्वलित करने वाली दानवता का विनाश होकर रहेगा इत्यादि।"

कवि ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जिसमें स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृ-भाव, सौहार्द आदि भावनाओं की नींव पर मानवीय भवन उठे, जनता में शान्ति और सुख व्याप्त हो, और अन्त में शान्ति विजयिनी बने। कवि जिज्ञासा करते हैं कि क्या यह स्वप्न सत्य सिद्ध होगा और धरती पर स्वर्ग आ सकेगा? आगे शोषित साम्राज्य-नीति को चुनौती देते हुए वे कहते हैं—

ओक व्यक्तिनि इंकोक व्यक्ति
ओक जातिनि वेरोक जाति
पीडिंचे सांधिक धर्म
इकना इकपै सागदु—

अर्थात्—"एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति की और एक जाति की दूसरी जाति की शोषण करने वाली सामाजिक नीति आगे नहीं चल सकेगी।" "कविता-गीत" में कवि कहते हैं कि भावों के स्पष्ट अभिव्यक्तिकरण में व्याकरण, छन्द इत्यादि बाधक होते हैं, इसलिए काव्य को इन बन्धनों से भी मुक्त करना है। बड़े आत्म-विश्वास एवं सच्चाई के साथ वे अपने हृदय को व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

मैंने जो देखा, सुना,
अभिव्यक्तिकरण के लिए शब्दों की खोज करूँ,
तो लगा कि कैसे भावनाओं का तीव्र आवेग—
श्मशान-जैसे शब्दकोशों को लांघ कर,
व्याकरण की शृंखलाओं को तोड़ कर,
छन्दों के सर्प-परिष्वंग को त्याग—
वेग से, अतिवेग से—
दौड़ हृदय-तल पर जग धरे!

कवि अपने कर्तव्य और अपनी आहुति का परिचय देते हुए भी कहते हैं—

मैंने भी तो विश्वाग्नि में आहुति दी है, मैंने भी एक समिधा
विश्व-वृष्टि में दान दी है और मैंने भी तो
भुवन-घोष में कंठ मिला एक गान किया है।

एक गीत में कवि अपना आत्म-परिचय देते कहते हैं—

भूत हूँ, यज्ञोपवीत हूँ,
विप्लवगीत हूँ, मैं—
सुनाऊँ तो पद्य हूँ,
चिल्लाऊँ तो वाद्य हूँ,
अनल-वेदिका समक्ष अस्त्र नैवेद्य हूँ, मैं।[1]

अनिशेट्टि सुब्बाराव (सन् १९२२)—ये अत्यन्त भावुक व्यक्ति हैं। प्रगतिवादी कविता में भी कलात्मकता की दृष्टि स्थापित करने वालों में ये गणनीय हैं। इनकी कविताएँ "अग्नि-वीणा" नाम से संकलित हैं। "प्रति-ओकडु-शिवुडु नेडु" (आज प्रत्येक व्यक्ति शिव ही है) नामक इनकी कविता अत्यन्त ही मनोहर और लोकप्रिय है। "नव-भारती", "अणुबम" आदि कविताएँ भी उत्तमोत्तम हैं। पृथ्वी और पुरुष के बीच विभाजन-रेखा डाल शासन करने वालों के विरुद्ध कृषक-समाज को उत्तेजित करते आपने जो भाव व्यक्त किये हैं, वे अत्यन्त ही रमणीय और उत्तेजक हैं।

आरुद्र (भागवतुल शंकर शास्त्री) की कविताएँ "त्वमेवाहम्" में संकलित हैं। इनकी कविता में चमत्कार और वैचित्र्य पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। आरुद्र कविता की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"पथविहीन दग्ध मरुभूमि में शीतल जल और मधुर फल प्रदान कर आशा एवं आकांक्षाओं को जाग्रत करनेवाला शस्यश्यामल प्रदेश ही कविता है।"

आरुद्र वास्तविकता के विशेष समर्थक एवं अभ्युदय के आकांक्षी हैं। "विष्कंभ" नामक कविता में बताते हैं—

निर्देशिचिन भावालनु वाक्यालु बट्वाड़ा चेय्यवु
पदे पदे वागिन ग्रामफोनु रिकार्डुलमादिरि माटलु अर्थ प्रेरण चेयवु

अर्थात्—निदृष्ट भावों को वाक्य संचालित नहीं करते। बार-बार ध्वनित

---

१. **विस्तृत परिचय के लिए इन पंक्तियों के लेखक द्वारा लिखित "आन्ध्र-भारती" और "तेलुगु का प्रगतिशील साहित्य", "प्रवाह" प्रगतिशील विशेषांक—अप्रैल-मई ५३-देखें।**

होनेवाले 'ग्रामोफोन' के 'रिकार्डों' की भाँति शब्द सर्वदा अर्थ-प्रेरणा नहीं प्रदान करते। कवि इस विशाल विश्व को एक 'सर्कस' मानते हैं—अधिकार (शासन)-रूपी चुंबक के क्षेत्र में विज्ञान घड़ी की भाँति नहीं घूमता, गणित अधिक खाद्य-पदार्थ उत्पन्न नहीं करता··आदि आदि।

प्रगतिशील कवियों में **श्रीरंगम् नारायण बाबू** अपना अच्छा स्थान रखते हैं। आपकी कविताएँ "रुधिर-ज्योति" नाम से संकलित हैं। कवि ने अपने काव्य में अपना आत्म-परिचय दिया है। "मैं रुधिर-ज्योति नामक काव्य-कामिनी का प्रिय हूँ, विप्लव पैदा करनेवाला ऋषिपुंगव और विद्रोह पैदा करनेवाला कविवर हूँ।" "देश माता" नामक कविता में उन्होंने भिखारिन का चित्र उपस्थित किया है—

क्षुधा न मिटानेवाले
नग्नता न ढकनेवाले
देश के वास्ते, मिट्टी के दीपक में—
मानिनी, बत्ती बनकर जल उठी।

"कपाल मोक्षम्" और "किटिकी लो दीपमु" आपकी अन्य कृतियाँ हैं।

पट्टाभि (पट्टाभि रामा रेड्डी) कृत "फिडेल-रागालु-डजन" आधुनिक काव्यों में विशेष लोकप्रिय हुआ है। आज के समाज की कुरीतियों का प्रक्षालन करने के हेतु आपने कलम उठायी। नवीन रीति में परंपरागत सम्प्रदायों से भिन्न विचित्र पद्धति में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। पट्टाभि की उपमाएँ अत्यन्त नवीन हैं, जिनमें उदाहरणस्वरूप एक प्रस्तुत है—

क्रास्वर्ड् पजिल्स लागुन्न
नी कन्नुलनु साल्वु चेसे
महाभाग्यं ए मानवुनिदो कदा!

अर्थात्—'क्रासवर्ड पजिल' जैसी तुम्हारी आँखों की समस्याओं को सुलझाने का महोभाग्य किस मानव को प्राप्त है?

आगे वेश्या की वेदना का चित्र प्रस्तुत करते कहते हैं—

ओ बोगम्‌चाना
संघानिकि नीवो
वेस्टुपेपरु बास्कटुवा

"ओ वेश्या ! तुम समाज के लिए एक "वेस्टपेपर बास्कट" (रद्दी की टोकरी) तो नहीं ?"

शिष्ट्ला उमामहेश्वरराव सुन्दर गीतों के प्रणेता हैं। वे "प्रेम" नामक कविता में आधुनिक नारी को सीता के रूप में चित्रित करते हैं—

"समस्त मानव समुदाय के
समष्टिगत उत्तरदायित्व को
अमूल्य रीढ़ पर ढो रही है सीता।"

इसी समय "न्यागारा" नाम से तीन भिन्न कविताओं का संकलन प्रकाशित हुआ, जिसमें श्री श्री का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। साथ ही इसमें प्रयोगों में भी नवीनता दर्शित होती है। शब्द-चित्र और भाव-चित्र इसकी विशेषताएँ हैं। ये तीनों कवि क्रमशः **बेल्लम् कोंड रामदास, एल्चूरि सुब्रह्मण्यम्** और **कुंदुर्ति आंजनेयुलु** हैं। रामदास कहते हैं—"मानव मेधा पर बेड़ियों को लगाने वाले गत सामाजिक शिला-शासन को तोड़ने के लिए मेरा अग्नि कंठ फट पड़ा है।" इसी प्रकार एल्चूरि उद्घोष करते हैं—"बंदीकृत धनिक-शक्ति धुँए (पोग गोट्टं) सी कनकन में उड़ती जा रही है और फिर आ रही है महाशक्ति, प्रजा-शक्ति।" कंदुर्ति भी ऐसी ही एक हुंकृति करते हैं—"दस-बारह स्वार्थी शासन करते हैं हम पर, हमें तो मतदान (वोट) का अधिकार नहीं, किन्तु हम हैं नब्बे प्रतिशत और यदि शासन करना उनसे नहीं बन पड़ता हो, तो हम बहुसंख्यक ही सरकार चलायेंगे।"

इस परम्परा में **बैरागी** बहुत विश्वास के साथ आगे बढ़ रहे हैं। "पलायनमु' और "नूतिलोनि-गोंतुकलु" उनकी कविताओं के संग्रह हैं। अनेक सुन्दर फुटकल कविताएँ आपने लिखी हैं। कवि का कथन है—"अनन्त सागर में झंझावात का विलय-तांडव हो रहा है। फटी नौका है, अन्धकार से पूर्ण रात्रि में जीवन की यात्रा चल रही है, न उषा का आगमन होता है और न बैठने की

गुंजाइश है। अकेले एकाकी हो विदग्ध ज्वालाओं में यात्रा कर रहा है मानव, लक्ष्यहीन दिशा की ओर!"

अजंता की ऐसी एक प्रगतिशील कविता की ओर दृष्टि डालिए—

"जहाँ आसमान दिखाई न देता हो,
अँधेरा फाँसी के तख्ते की भाँति खड़ा हो,
काल (समय) जहाँ शव की भाँति लटकता हो,
वहाँ की नीरवता पर आसीन हो मैं—
वायु में प्रकंपित दीपों पर अपना गीत रचूंगा!
मेरा निलय नहीं, मेरा विलय नहीं,
मेरा रूप ही मेरा गीत है, मेरा जगत ही मेरा संगीत है।

तेलंगाने के कवियों में **दाशरथी** और **कालोजी नारायण राव** इस परंपरा में अधिक लोकप्रिय हुए हैं। दाशरथी की "अग्नि-धारा" और "रुद्रवीणा" विशेष प्रचारित हुई हैं और कालोजी की "नागोडव" नामक कृति विशेष प्रशंसित हुई है। अधिक्षेप-काव्यों की रचना में कालोजी सिद्धहस्त हैं। अपने गीतों द्वारा इन दोनों कवियों ने तेलंगाने में नयी जागृति पैदा की है। दाशरथी अपने प्रज्वलित प्रगतिशील स्वर में कहते हैं—"मेरी गीतावली जितनी दूर तक यात्रा करेगी, उतनी दूर तक इस भूमण्डल में मैं आग लगा दूंगा। अग्नि-कण डाल हेमन्त भामा के साथ गन्धर्व विवाह करूँगा।"

अभ्युदय कविता के पोषक कवियों में श्री के० वी० रमणारेड्डी, सोम-सुन्दर, गंगिनेनि-वेंकटेश्वरराव, रेन्टाल गोपाल कृष्ण, नारपु रेड्डी, बाल गंगाधर तिलक, शशांक, तुम्मल, रोणंकि, वट्टिकोंडा, पुरिपण्डा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विस्तार के भय से इनका नामोल्लेख मात्र करके सन्तोष करना पड़ रहा है।

अति नवीन कविता

सुविधा की दृष्टि से हमने कविता का उक्त विभाजन किया, किन्तु अनेक कवि ऐसे हैं, जिनमें युग-परिवर्तन के साथ कविता के स्वर का भी परिवर्तन देखा जा सकता है। यों तो कविता सदा नवीन होती है और उत्तम कविता कभी

पुरानी नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें गति (प्रगति) के लक्षण विद्यमान होते हैं। यहाँ हमारा अभिप्राय अभ्युदय-काव्य के अनन्तर की कविता-धारा से है, जिसमें सभी प्रकार के ऐसे कवि आते हैं, जो किसी प्रकार के वाद-विशेष के समर्थक न थे और जो स्वतन्त्र रूप से अपनी अनुभूतियों को काव्य का रूप देते थे। सन् १९५३ में आन्ध्र का अपना अलग राज्य बना। निरन्तर ४० वर्षों से भाषा-सिद्धान्त के आधार पर अलग आन्ध्र-राज्य बनाने का आन्दोलन चलता रहा, जो सन् १९५६ में सफलीभूत हुआ, जब आन्ध्र-प्रदेश का अवतरण हुआ। इस उपलब्धि का प्रभाव आन्ध्र के कवियों पर ऐसा पड़ा कि उनका स्वर अतिशय आनन्द के साथ मुखरित हो उठा। साथ ही जीवन को नव्यता के साथ भव्यता प्रदान करने की बलवती प्रवृत्ति तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों के समकक्ष अपने राष्ट्र को भी सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से समुन्नत देखने की प्रबल आकांक्षा सभी ओर अभिव्यक्त होने लगी।

मधुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री ने "आन्ध्र-पुराण" नाम से एक बृहत् काव्य का प्रणयन किया, जिसमें आन्ध्रवासियों के प्राचीन वैभव तथा स्वर्णिम इतिहास का चित्रण हुआ है। **दाशरथी** ने भी तेलंगाने की कीर्ति का गान किया—"मेरी तेलंगाना कोटि रत्नों की वीणा है", किन्तु वे मात्र इससे सन्तुष्ट नहीं रहे और उन्होंने कृष्णा, गोदावरी, तुंगभद्रा नदियों से पवित्र विशाल आन्ध्र भूमि की व्यापक कल्पना की। जब कृष्णवेणी ने अपने आँसू पोंछते कवि पर वात्सल्य दृष्टि डाली तो गोदावरी ने कवि को मुख-प्रक्षालन के हेतु जल दिया और तुंगभद्रा ने अपने आँचल से कवि का मुँह पोंछकर उसकी तंद्रा दूर की तथा पेन्ना नदी माता ने अपने पय-रूपी पियूष का पान कराकर कवि की क्षुधा मिटायी। ऐसे में तीन खण्डों में बिखरे तीन करोड़ आन्ध्रवासी एक स्नेह-सूत्र में बँधे नजर आये और उसी समय रथ पर आरूढ़ हो समस्त मानव-मात्र को प्रसन्न करती उषा का वसुधा पर आगमन हुआ। कैसी भव्य कल्पना है। आगे कवि लिखते हैं—

"कोटि तम्मुल कड़ रेंडु कोट्ल तेल्गु
टन्नलनुगूर्चि वृत्तान्त मंदजेसि

मूडु कोट्ल नोक्कटे मुडि बिगिंचि
पाडिनाड महान्ध्र सौभाग्य गीति।

अर्थात्—तेलंगाने के एक करोड़ छोटे भाइयों को शेष आन्ध्र के (सरकार जिले और रायलसीमा) दो करोड़ बड़े भाइयों का वृत्तान्त सुना कर तीनों करोड़ भाइयों को एक सूत्र में बांध मैंने महान्ध्र (विशाल आन्ध्र) की सौभाग्य गीतिका का गान किया है। "महान्ध्रोदय" आपका अनुपम काव्य ग्रन्थ है।

पुट्टपर्ति नारायणाचार्य प्रतिभाशाली पण्डित, महाकवि और बहुमुखी प्रज्ञाशाली हैं। आप प्राचीन और नवीन कविता-रीतियों को भलीभाँति हृदयंगम करके भावों को मोम की भाँति वांछित रूप प्रदान करने की क्षमता रखनेवाले शब्द-शिल्पी हैं। "पेनुगोंड लक्ष्मी" की रचना द्वारा आपने अपना राष्ट्र-प्रेम अभिव्यक्त किया, तो "मेघदूत" के प्रणयन से जातीय-शक्ति के पुनः विकास पर बल दिया। "मेघदूत" के स्मरण मात्र से कालिदास का स्मरण हो आना सहज है, किन्तु ये अपर कालिदास हैं। इन्होंने मेघ को दूत अवश्य बनाया, किन्तु इनकी कविता का आधार आन्ध्र-भूमि है। इसमें मेघ आन्ध्र देश के वैभव का परिचय देता है। यह नवीन उद्भावना कवि को अपार यशस्वी बनाने में सफल हुई।

पुट्टपर्ति के अन्य काव्यों में "षाजी", "शिवतांडवमु" और "पंडरि-भागवतमु" विशेष विख्यात हैं। शिवतांडवमु महाकवि में अपूर्व वाक्-शिल्प है। परम शिव के तांडव-नृत्य का देवगणों के साथ पाठकगण भी दर्शन कर पाते हैं। नटराज के नृत्य की मन में कल्पना मात्र सम्भव है, उसे वाणी द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि नृत्य के संगीत-वातावरण तथा लय अनुभवगम्य मात्र हैं, किन्तु ये कवि उनका आंतरिक अर्थ अपने कविता-शिल्प द्वारा हमें दर्शाने में सफलीकृत हुए हैं।

सी० नारायण रेड्डीकृत "नागार्जुन-सागरम्" आन्ध्र के प्राचीन वैभव का स्मरण दिलाता है। आचार्य नागार्जुन की निवास-भूमि—श्री पर्वत, वहाँ के स्तूप, विद्यालय, शिल्प, चित्र आदि की कथा के साथ "पद्मदेव" और "शान्ति श्री" की प्रणय गाथा भी इसमें वर्णित है। कवि सौन्दर्य और शिल्प की

व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"प्रकृति के प्रत्येक अणु में परम अद्भुत शोभान्वित सौन्दर्य निर्लिप्तावस्था में निद्रित होता रहता है, यथा—

> **"सौन्दर्य ही अपनों के**
> **कला-मन्दिर का मूल स्तम्भ है,**
> **सौन्दर्य के अन्वेषण में ही साकार होते हैं**
> **स्वप्न-मधुर परिरंभ,**
> **हृदय-कंपन में ही**
> **उदित होते हैं चित्र**
> **मधुर कल्पना में ही**
> **निर्मित होते हैं शिल्प !"**

कवि की कल्पना मधुराति-मधुर है। तीव्र भावोद्वेग, सुन्दर शब्द-चयन कवि की विशेषताएँ हैं। परायों की व्यथा को अपनी व्यथा मान हाथ बँटाने वाला और परायों के सुख से सन्तुष्ट होनेवाला व्यक्ति ही कवि है। यह उदात्त स्वर कवि की कीर्ति में चार चाँद लगाते हैं। आपके काव्य ग्रन्थ में "कर्पूर-वसंत रायलु", "नारायण-रेड्डी-गेयाल" और "जलपातमु" विशेष प्रसिद्ध हैं।

पल्ला दुर्गय्या का "पालवेल्लि" और "गंगिरेद्दु", **विद्वान् विश्वम्** का "पेन्नेटि पाट"; **बोइ भीमन्ना** की "दीप-सभा", **के० वी० रमणा रेड्डी** का "भुवन-घोष", "अडवि" और "अंगारवल्लरी", **जंध्याल पापय्या शास्त्री** की "करुण-श्री" और "विजयश्री" इत्यादि रचनाएँ विशिष्ट जनादर प्राप्त करने में समर्थ हुई हैं।

श्री नार्ल वेंकटेश्वर राव की कृतियों में "जगन्नाटकमु" और "नार्लवारि-माट" नवीन भावना, उदात्त दृष्टिकोण और हृदय की सरल और सरस कल्पनाओं के लिए प्रख्यात हैं। कवि जिज्ञासु बन कर प्रश्न करते हैं—

> **"विभावरी-प्रभातों के**
> **प्रत्यह परिवर्तन की**
> **संधिस्थल बनी कालोदधि के**
> **उस पार होगा क्या ?**

एक स्थान पर ये मन को छूकर कह उठते हैं—"यदि रोटी के पैर होते तो चार दाने को छटपटाने वाले दीन-हीन मानव के घर क्या न पहुँच पाती ?"

जास्ति वेंकट नरसय्या और डि० वि० सुब्रह्मण्यम् अपनी उत्तम कृतियों द्वारा प्रकाश में आ रहे हैं ।

तेलुगु नाटक साहित्य और रंगमंच

समस्त काव्यों में नाटक का स्थान सर्वोपरि माना जाता है । "काव्येषु नाटकम् रम्यम्" और "नाटकांतंहि साहित्यम्" इत्यादि उक्तियाँ उक्त कथन की पुष्टि करती हैं । नाट्य-शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने भी इस तथ्य के समर्थन में लिखा है—

> **नाट्य वेदम् ततश्चक्रे, चतुर्वेदांग संभवम्,**
> **जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात्, सामभ्योगीतमेवच**
> **यजुर्वेदादभिनयान्, रसानाथर्वणादपि ।** (१-१६, १७)

अर्थात्—ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्वण-वेद से रस को ग्रहण कर नाट्य-वेद की सृष्टि हुई है । नाट्य-शास्त्र में उल्लिखित दशविध रूपकों में उपर्युक्त गुणों की आवश्यकता पर बल दिया गया है । नृत्य, गीत, नाट्य और अभिनय भारत में अनादिकाल से देखा जा सकता है । निश्चित रूप से हम नहीं कह सकते कि इनका आविर्भाव कब हुआ ? हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि मानव-जाति की उत्पत्ति के साथ-साथ इनका भी जन्म हुआ होगा । महाकवि कालिदास ने कहा है—

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनं", यहाँ पर नाट्य शब्द नायक का उपलक्षण मात्र है । भारत में प्राचीनकाल में संस्कृत के लाक्षणिकों द्वारा निर्णीत दशविध रूपकों के अतिरिक्त देशी नाटक भी विद्यमान थे, परन्तु ये देशी नाटक विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न रूपों में पाये जाते हैं । उदाहरण के लिए उत्तर भारत में "रामलीला", बंगाल में "जात्रा", केरल में "कथक्कली", आन्ध्र, तमिलनाड और कर्नाटक में "कुरविंजी" और "यक्षगान" आदि उन प्रदेशों व जातियों की अभिरुचियों के अनुरूप निर्मित हुए हैं ।

आन्ध्र देश में "कुरविंजी", "यक्षगान", "वीथी-नाटक" और "वीथी भागवत" आदि देशी रूपक जनपदों में अत्यन्त प्राचीन काल से ही लोकप्रिय हो चुके थे ।

इन देशी नाटकों द्वारा लोगों का मनोरंजन होता था। यही कारण है कि तेलुगु-नाटक जगत् में यह जागृति देर से दिखाई पड़ी।

तेलुगु-वाङ्मय के आदि कवि नन्नयभट्ट ने अपने "महाभारत" की भूमिका में ११वीं शदी में ही उल्लेख किया है कि "मैंने असंख्य उदात्त रस समन्वित काव्य नाटक देखे हैं।" इसके उपरान्त १३-१४वीं शताब्दियों में वरंगल के काकतीय नरेश-कोंडवीडु के रेड्डी राजाओं के राज्याश्रय में रंगमंच का अच्छा विकास हुआ है। जादव सेनापतिकृत "नृत्त-रत्नावली" इसका प्रबल प्रमाण है। इस युग के अन्य संस्कृत व तेलुगु नाटक व नाटक लक्षण-ग्रन्थों में "प्रताप-रुद्रयशो-भूषणम्", "क्रीड़ाभिरामम्", "प्रेमाभिरामम्", "वीरनारायण-चरित्र-बाणम्" आदि उल्लेखनीय हैं। किन्तु तेलुगु का प्रथम नाटक कवि सार्वभौम श्रीनाथ-कृत "क्रीड़ाभिरामम्" माना जाता है। यह नाटक पन्द्रहवीं शताब्दी का है।

१३वीं शदी के पूर्व आन्ध्र में जो नृत्य एवं नाटक विशेष रूप से प्रचार में थे, उनका वर्णन पालकुरि के सोमनाथ कवि ने अपने "पण्डिताराध्य-चरित्र" में किया है। १५ व १६वीं शताब्दियों में विजयनगर, नाट्य-कला के अत्युत्तम केन्द्र के रूप में वर्णित है। उस समय के रंगमंच का देशी विद्वानों ने ही नहीं, अपितु विदेशी इतिहासकारों, राजदूतों एवं यात्रियों ने अपने यात्रा-वृत्तान्तों तथा इतिहास-ग्रन्थों में बड़ा विशद वर्णन किया है। ई० सन् १४४३ में फारस के राजदूत अब्दुल रजाक़ ने महानवमी के उत्सवों का वर्णन करते हुए उस समय के रंगमंच का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है और लिखा है कि "वह एक विशाल मैदान था। उसके मध्य भाग में सुन्दर तोरणों, विभिन्न वर्णों के दीपकों तथा नक्काशी किये हुए संगमरमर के पत्थरों के स्तंभों से शोभायमान एक मण्डप है। उसके सामने रेशम की एक चमकदार यवनिका है। मण्डप के सम्मुख अनतिदूरी पर एक नौ मंजिल वाला विशाल महल है। उसकी सातवीं मंजिल पर बैठे सम्राट् मण्डप की ओर दृष्टि प्रसारित किये हुए हैं। यवनिका दो भागों में अलग हो जाती है और नाटक का समारम्भ होता है। उन नटों का गान-माधुर्य और नटना-सौन्दर्य देख मैं विस्मित हो उठा। मैं उस अभिनय में खो गया·····।"[१]

१. **इलियट्स इंडिया, चौथी जिल्द।**

पेकिप्टा नामक एक मुस्लिम इतिहासकर्ता ने भी विजयनगर के चक्रवर्तियों के नटना-कार्य-कलापों का हृदयग्राही चित्रण अपने ग्रन्थों में किया है ।

१६ और १७वीं शताब्दियों में तेलुगु नाटक एवं रंगमंच का विकास तंजाऊर में हुआ । इस अवधि में करीब ४०० यक्षगानों की रचना हुई, जिनमें अधिकांश नाटक मंच पर अभिनीत हुए हैं । उस समय के नाटकों में "मन्नारदास-विलास" तथा "गरुड़ाचल" नाटक विशेष रूप से विख्यात हैं । तंजाऊर में स्थित "सरस्वती-महल" नामक पुस्तकालय में केवल अभिनेताओं पर रचित "नाटक-पात्रलु" (नाटक के पात्र) नामक एक ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है, जो अब भी वहाँ पर सुरक्षित है । उस ग्रन्थ में तत्कालीन पात्रों और अभिनेताओं का विस्तृत बिवरण दिया हुआ है । कौन अभिनेता किस पात्र के अभिनय में भाग लेता था, किस प्रकार के अभिनय के लिए वह प्रख्यात है आदि विवरण उसमें उपलब्ध हैं । इससे पता चलता है कि अभिनय-कला के प्रति उन दिनों राजाओं का कैसा प्रेम एवं प्रोत्साहन प्राप्त था तथा नाटक-कला का कैसा विकास हुआ था । वहाँ के पुस्तकालय में नाटक-कला और रंगमंच सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो आज के अनुसंधान-कर्ताओं के लिए विशेष लाभदायक हैं । इस वैज्ञानिक युग में भी हमें नाटक-कला सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर समग्र रूप में विवरण एक-साथ प्राप्त नहीं होते, पर उक्त ग्रन्थों में उसी समय नाटकों के रंगमंच का स्वरूप, रंगालंकार सम्बन्धी सामग्री, यवनिका-प्रयोग, अभिनेताओं के प्रवेश एवं निष्क्रमण आदि पर उल्लेखनीय सामग्री मिलती है ।

आन्ध्र के विख्यात अभिनेता तथा अभिनय-कला के मर्मज्ञ विद्वान् स्वर्गीय कोप्परपु सुब्बारावजी जिन्होंने रंगमंच का समग्र अध्ययन किया था, तेलुगु-नाटक और रंगमंच के विकास में स्तुत्य सेवा की है । उन्होंने अपने लेख में एक स्थान पर लिखा है कि "मध्य-प्रदेश के रामगढ़ की पहाड़ियों में एक चतुरस्र नाटचशाला खोदी गयी है । यह एक गुफ़ा में पायी गयी है । इसी प्रकार की एक चतुरस्र नाटचशाला का (चतुरस्र रंगमंच) नागार्जुन पर्वत की हाल ही की खुदाइयों में पता चला है । इनके द्वारा हम उस समय की नाटचकला को समझने में तथा उनका अध्ययन करने में सफल हो सकते हैं आदि-आदि ।" इन उदाहरणों से हम भली-भाँति यह जान सकते हैं कि प्राचीन काल में अभिनय कला का कैसा

सुन्दर विकास हुआ था तथा अभिनय-कला के प्रति लोगों की कैसी उत्कट अभिरुचि थी।

आन्ध्र देश में १६वीं शताब्दी के पूर्व अनेक नाटकों की रचना हुई और उनका अभिनय भी हुआ। "कृष्ण-लीला-तरंगिणी" के कर्ता श्री नारायण तीर्थ ने १७वीं शडी में "पारिजातापहरण" नामक एक तेलुगु नाटक लिखा था, उसकी ताड़-पत्र-लिपि आज भी विद्यमान है। इस प्रकार असंख्य नाटकों और नाटककारों की नामावली गिनायी जा सकती है, आधुनिक युग में रंगमंच का विकास जिस गति के साथ हुआ, उसका परिचय देते हुए हमें इस तथ्य पर प्रकाश डालना है कि १६वीं शदी के उत्तरार्द्ध में ही आन्ध्र में आधुनिक पद्धति पर नाटकों का अभिनय प्रारम्भ हुआ। इसी समय में धारवाड़, सांग्ली-नाटक कम्पनियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन कम्पनियों ने सन् १८८२ से १८८६ के बीच दो बार आन्ध्र के मुख्य नगरों का परिभ्रमण कर अभिनय किया। इन प्रदर्शनों के द्वारा आन्ध्र देश में भी आधुनिक पद्धति पर नाटक प्रदर्शन की अभिरुचि जागृत हुई। उपर्युक्त नाटक-समाजों के पाश्चात्य नाटक-मंच के अनुकरण पर अभिनय प्रस्तुत किया था, अतः यह श्रेय उन्हीं नाटक-समाजों को दिया जा सकता है। उनकी देखा-देखी आन्ध्र के गुंटूर, राजमहेन्द्री, मछलीपट्टणम् और बल्लारी इत्यादि प्रमुख शहरों में तेलुगु नाटक-समाजों की स्थापना हुई।

सबसे विचित्र बात यह है कि आन्ध्र में आधुनिक रंगमंच पर प्रथम बार नाटक मछलीपट्टणम् के "दि नेशनल थियेटर" में हिन्दी में खेले गये। उस समय के अभिनेता तथा नाटककारों ने अनुभव किया कि शायद हिन्दी में ही नाटकों का अभिनय हो, तो अच्छा होगा। यही कारण है कि श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम तथा ईमनि लक्ष्मण स्वामी ने हरिश्चन्द्र, रामदास, सीता का परिणय, पेशवा नारायण का वध इत्यादि नाटक अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में लिखे और उनका सफलतापूर्वक अभिनय भी किया। यद्यपि इन नाटकों की भाषा अशुद्ध और त्रुटिपूर्ण थी, तथापि अभिनेता के नटना-कौशल के कारण उपर्युक्त नाटक विशेष लोकप्रिय हुए। श्री ईमनि लक्ष्मण स्वामी ने क्रमशः "पेशवा नारायणराव का वध", "शिवाजी" तथा "विश्वामित्र का तपोभंग" में सुमेर सिंह, शिवाजी और विश्वामित्र

के पात्रों का जिस कुशलता के साथ अभिनय किया, वह आन्ध्र-रंगमंच के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है।

इसके पश्चात् विभिन्न शहरों में असंख्य नाटक-समाजों की स्थापना हुई, उनके साथ नाटककारों तथा अभिनेताओं को प्रोत्साहन और उत्साह प्राप्त हुए।

प्रारम्भ में चार-पाँच वर्षों तक मौलिक हिन्दी नाटकों का विशेष प्रचार और अभिनय हुआ। इसके उपरांत संस्कृत के उत्कृष्ट नाटकों का तेलुगु में रूपांतर हुआ। ये ही नाटक कुछ समय तक जनता के मनोरंजन के साधन बने हुए थे। इस समय के लोकप्रिय नाटकों में श्री कंदुकूरि वीरेलिंगम् पंतुलुकृत "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" और "रत्नावली", श्री वड्डादि सुब्बारायडु द्वारा विरचित "वेणी-संहार", श्री तिरुपति कविद्वयकृत "मुद्राराक्षस" और "मृच्छकटिक", श्री वलिजे-पल्लि लक्ष्मीकान्तम् का लिखा "हरिश्चन्द्र" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्राय: उपर्युक्त सभी नाटक गद्य-पद्य प्रधान हैं।

संस्कृत के नाटकों के आधार पर असंख्य नाटक रचे गये। ये सब इतने जनप्रिय हुए कि तदुपरान्त मौलिक नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसे नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटक विपुल मात्रा में गिनाये जा सकते हैं। अब तक करीब एक हजार नाटकों की रचना तेलुगु में हुई है। इस समय तो नाटकों के साथ एकांकी, संगीत-रूपक, रेडियो-रूपक भी दिन-प्रति-दिन रचे जा रहे हैं। उन सबका व्यापक परिचय कराना संभव नहीं है, अत: अति संक्षेप में कतिपय प्रमुख नाटकों, नाटककारों, अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों का यहाँ परिचय दिया जायगा।

अंग्रेजी नाटक-कला के प्रभाव से प्रेरणा लेकर श्री धर्मवरमु कृष्णमाचार्युलु-जी ने बल्लारी में "सरस-विनोदिनी-सभा" नाम से एक नाटक-समाज की स्थापना की। उन्होंने स्वयं "चित्रनलियम्" और "सारंगधर" आदि उत्तम नाटकों की रचना करके उनका अभिनय भी किया। ये "आन्ध्र-नाटक-पितामह" नाम से विख्यात हैं। इन्होंने कुल २८ नाटकों की रचना की है। "राजराज-नरेन्द्र" और "नल" पात्रों के अभिनय से आपने एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। दशरथ, बाहुक और चन्द्रहास के पात्रों का अभिनय करके प्रेक्षकों की ऐसी प्रशंसा प्राप्त की कि सुदूर प्रान्तों से भी उनका अभिनय देखने के लिए लोग आने लगे।

प्रेक्षकों की नाटक-कला के प्रति जो अभिरुचि थी, उसकी पूर्ति के लिए विपुल संख्या में नाटक-समाज स्थापित हुए। अभिनय के क्षेत्र में भी प्रतिद्वन्द्विता आ गयी। श्री कोलाचलम् नरसिंहराव ने "रसिकरंजिनी-सभा" स्थापित की। वे स्वयं एक कुशल अभिनेता थे, साथ ही अच्छे नाटककार भी। उन्होंने करीब ३० नाटक लिखे। उनमें "विजयनगर-साम्राज्य का पतन" अत्युत्तम माना जाता है।

नाटक की कथा-वस्तु सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित भी होती गयी, किन्तु कुछ ऐसे भी नाटक थे जो कि देश, काल और परिस्थितियों की सीमाओं को लांघ सार्वकालीन एवं सार्वदेशीय बन कर अपने शाश्वत प्रभाव को लिये हुए थे। ऐसे नाटक सभी समयों में, सभी समाजों में बराबर अभिनीत होते गये और होते आ रहे हैं। बीसवीं शदी के प्रारम्भ में जब कि तेलुगु में मौलिक नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, शृंगार एवं हास्य-प्रधान नाटकों और प्रहसनों की रचना अत्यधिक हुई। उनमें "गुलेबकावली" और "बिल्हणीयं" आदि उल्लेखनीय हैं। उन दिनों में आन्ध्र भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में निमग्न था। उपर्युक्त नाटकों में संगीत की प्रधानता है। सामाजिक-सुधार के विचार से लिखे गये नाटकों में महाकवि गुरजाड अप्पारावकृत "कन्याशुलकम्" विशेष प्रसिद्ध है। ई० सन् १९०६ में बंग-भंग आन्दोलन के प्रभाव से देश में जो राष्ट्रीय जागृति की लहर आयी, उससे आन्ध्र में भी काफी परिवर्तन हुआ। उस समय नेल्लूर में श्री वेदमु वेंकटराय शास्त्री ने "प्रतापरुद्रीयम्" तथा "बोब्बिलि-युद्ध" नामक दो ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। ये दोनों नाटक जनप्रिय हुए। इन नाटकों में भाग लेने वाले अभिनेता भी काफी प्रसिद्ध हुए, उनमें श्री दोरस्वामी, श्री श्रीनिवासाचारी, अपर कबीर नाम से विख्यात श्री पर्वत रेड्डी रामचन्द्र रेड्डी के नाम गणनीय हैं।

श्री चिलकर्मार्ति लक्ष्मी नरसिंहम् ने राजमहेन्द्री में "हिन्दू नाटक समाज" की स्थापना करके उस संघ के द्वारा नाटक-कला की अपूर्व सेवा की। ये नाटककार ही नहीं, बल्कि एक उत्तम अभिनेता भी थे। इनका प्रथम नाटक "कीचक-वध" है, जिसमें आन्ध्र के भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री टी० प्रकाशम पंतुलु ने, जो "आन्ध्र केसरी" नाम से विख्यात हैं, "द्रौपदी" का वेश धारण किया था।

श्री नरसिंहम् का दूसरा नाटक "गयोपाख्यान" है। इसकी लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण यही है कि अब तक इसकी डेढ़ लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं और आज भी बिक रही हैं।

"तेलुगु-रंगमंच" के इतिहास में स्पृहणीय बात तो यह है कि अभिनय को एक विशुद्ध कला मान कर समाज के सभी प्रतिष्ठित धनी-मानी सज्जन तथा वकील, जज, डाक्टर और शिक्षक इत्यादि शिक्षित समाज ने भी उसकी उपासना की। इसके पूर्व नाट्य-कला के प्रति लोगों में जो विकृत धारणा थी, वह जाती रही। समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सहयोग पाकर तेलुगु रंगमंच का आशातीत विकास होने लगा। उन दिनों में आन्ध्र के प्रायः सभी विख्यात नेताओं ने भी अभिनय में भाग लिया था। उनमें "विश्वदाता-देशोद्धारक" श्री नागेश्वरराव पंतुलु, "देशभक्त" श्री कोंडावेंकटप्पय्य पंतुलु और "आन्ध्ररत्न" श्री दुग्गिराल गोपाल कृष्णय्या विशेष उल्लेखनीय हैं।

क्रमशः नाट्य-कला में उन्नति होती गयी, साथ ही अनुभव भी बढ़ता गया। इन सबके कारण रंगमंच की सामग्री, नाटक-रचना, वेष-धारण, दृश्यालंकार, आहार्य (मेकअप) इत्यादि की दृष्टि से काफ़ी परिवर्तन किये गये। अब केवल नाटक विनोद और मनोरंजन की सामग्री मात्र नहीं रहा, अपितु कलात्मक रूप लिये विनोद के साथ ज्ञान भी प्रदान करने लगा। जाति में सुधार का वह एक जबर्दस्त साधन सिद्ध हुआ। इन्हीं दिनों में औत्साहिक (Amateur) समाजों के साथ वाणिज्य दृष्टिकोण से भी नाटक-समाजों की स्थापना हुई। ऐसे समाजों में विजयवाड़ा का मैलवरम् थियेटर, एलूर का मोतेनारायणराव थियेटर, राजमहेन्द्री की गुन्नेश्वरराव तथा नागेश्वरराव की कम्पनियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इन समाजों ने प्रारम्भ में नाटक-कला के विकास में स्तुत्य योगदान दिया, परन्तु कालान्तर में उनका व्यय-भार प्रेक्षक वहन नहीं कर सके, अतः अभिनय में प्रामाणिकता लाने के विचार से नये समाजों की स्थापना हुई। उस समय के अभिनेताओं में यडवल्लि सूर्यनारायण, मंजुलूरि कृष्णराव, डी० वी० सुब्बाराव तथा इनके साथ नारी-पात्र का वेष धारण करनेवाले जग्गराजु, संजीवराव और अंजय्या ने तेलुगु नाटक रंगमंच को एक विशिष्ट गौरव प्रदान किया।

"कला-प्रपूर्ण" उपाधि से विख्यात श्री बल्लारी राघवाचार्य के आगमन

से तेलुगु रंगमंच प्रकाशित हो उठा। वे पेशे से वकील थे। फौजदारी मुकद्दमों में अपना सारा समय लगाते थे, यही कारण है कि नाटक के अभिनय के लिए आवश्यक भावोद्रेक तथा व्यवहार दक्षता का ज्ञान उन्हें सहज ही प्राप्त हुआ, क्योंकि वकालत भी तो एक अभिनय ही है ? मुकद्दमों के सिलसिले में वे बराबर मद्रास आया करते थे। उसी समय "सगुण-विलास-सभा" के साथ उनका परिचय बढ़ा। इसके अतिरिक्त भी वे अंग्रेजी, संस्कृत, तेलुगु, कन्नड़ व हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे तथा तमिल और मराठी भाषाओं में उनका व्यावहारिक ज्ञान था। उन दिनों में तुंत्रा, शिशिरकुमार भादूरी, सम्बन्धं मुदलियार, गुब्बि वीरन्ना जैसे भारत के उत्तम श्रेणी के अभिनेताओं के समक्ष वे अपना स्तर कायम रख सके तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके अभिनय पर मुग्ध हो भारत का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता बता कर उनकी प्रशंसा भी की।

श्री राघवाचार्य ने तेलुगु के साथ असंख्य अंग्रेजी नाटकों में भी भाग लिया और नटशेखर की उपाधि प्राप्त की। उनके पात्रों में पठान, हिरण्यकश्यप, रामदास, चाणक्य, हैमलेट, ओल्ड आदम, ओथेलो, शाइलक, किंगलियर इत्यादि अविस्मरणीय हैं और अभिनय के इतिहास में वे अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाये हुए हैं।

ई० सन् १९२० में तेलुगु रंगमंच को, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए होने वाले आन्दोलन के कारण बहुत बड़ा धक्का लगा। स्वतन्त्रता-आन्दोलन सम्बन्धी भावनाओं से परिपूर्ण नाटकों के प्रदर्शन पर सरकार ने पाबन्दी लगा दी, फिर भी नाटकों का प्रदर्शन होता रहा। सन् १९२७ में श्री राघवाचार्य इंग्लैण्ड गये। वहाँ पर शेक्सपियर के प्रायः सभी नाटकों में उन्होंने भाग लिया। इंग्लैण्ड के चोटी के अभिनेताओं के साथ उनका परिचय हुआ और उन्होंने उनसे प्रशंसाएँ भी प्राप्त कीं। इंग्लैण्ड से लौटते समय उन्होंने संकल्प किया कि अभिनय के स्तर को ऊँचा बनाकर उसमें अधिक प्रामाणिकता लाने के लिए नये नाटककारों को पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी संकल्प का परिणाम, मद्रास के भूतपूर्व उच्चन्यायाधीश श्री पीराजमन्नारकृत "तप्पेवरिदि ?" (दोष किसका ?) नाटक है। ये इस समय अखिल भारत संगीत-नाटक अकादमी के अध्यक्ष भी हैं।

श्री राघवाचार्युलु ने इंग्लैण्ड से लौटने के पश्चात् इस बात की घोषणा की

कि स्त्री-पात्रों का अभिनय पुरुषों को नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे अभिनय के स्तर को धक्का ही नहीं लगता, अपितु वह कृत्रिम प्रतीत होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने सन् १९२९ में बेंगलूर में श्रीमती सरोजिनी को और सन् १९३० में श्रीमती अन्नपूर्णा को मद्रास के "म्यूजियम थियेटर" में प्रेक्षकों के सामने उपस्थित किया। इसके उपरान्त अधिकतर नाटकों में नारी-पात्रों का अभिनय नारियाँ ही करने लगीं, जिनमें श्रीमती वरदाबाई, विजमूरि सीता, पद्मावती और सरोजा के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् १९३५ में श्री राघवाचार्य ने फिल्मी जगत् में प्रवेश किया। "द्रौपदी-मान-संरक्षण" में उनका दुर्योधन का अभिनय देखते ही बनता है। इस प्रकार अपनी अथक सेवा और परिश्रम के फलस्वरूप वे सन् १९३४ में मद्रास में आयोजित "आन्ध्र-नाटक-कला-परिषद्" की तृतीय महासभा के सभापति चुने गये। यह उनकी कीर्ति का प्रबल प्रमाण है।

सन् १९३० से ४० के बीच अनेक उत्तम नाटक रचे गये और अनेकानेक अभिनेता इस क्षेत्र में आये। उस समय के नाटकों में श्री मुद्दुकृष्ण का "शोकम्", श्री चलम् के "चित्ररंगी" और "शशांक" तथा त्रिपुरनि के "खूनी" और "शंभूक-वध" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उस समय के अभिनेताओं में कुछ ऐसे हैं, जिन पर तेलुगु रंगमंच को अभिमान है। मुख्यत: श्री यडबल्लि सूर्यनारायण के दुष्यन्त, बालि, दुर्योधन तथा वत्सराज के अभिनय भुलाये भी भूल नहीं पाते। राजोचित ज्ञान व आन के अभिनय में वे अपना सानी नहीं रखते। "आन्ध्र-गन्धर्व" नाम से प्रख्यात श्री जोन्नवित्तुल शेषगिरि के कृष्ण और नारद का, श्री कपिलवर्ण्य रामनाथ शास्त्री के राम, अर्जुन एवं सारंगधर का, श्री गुरजनायडु ने भीम तथा यम का और श्री हरिप्रसादराव ने नल और हरिश्चन्द्र का ऐसा अभिनय कर तेलुगु रंगमंच को नव जीवन प्रदान किया। इसी भाँति नारी पात्रों ने भी अपने अभिनय द्वारा नाटकों की सफलता को प्राण-प्रतिष्ठा प्रदान की। श्री पत्रि गोपालराव के भीम-पात्र, श्री मन्नादि गोविन्द शास्त्री के कंस-पात्र, श्री पिल्ललमर्रि सुन्दर रामय्या के पापाराय, रायसिंह और सोहराब के पात्र, श्री बेल्लमकोंड सुब्बाराव के कृष्ण पात्र, श्री कुटुंब शास्त्री के रंगराय, श्रीकृष्ण, कर्ण व विद्यानाथ के पात्र, डा० गोविन्द राजुलु सुब्बाराव, श्री बन्दा-

कनकलिंगेश्वरराव तथा मास्टर अंजि के अन्यान्य पात्र, श्री नागबसवय्या का "मोहिनी" पात्र तथा "पद्मश्री" स्थानम् नरसिंहराव के सभी नारी पात्र तेलुगु रंगमंच के इतिहास में अपना अविस्मरणीय स्थान रखते हैं। इतनी संख्या में ऐसे उत्तम अभिनेता शायद ही और प्रदेशों में हों। कुल मिलाकर आन्ध्र देश में ख्याति प्राप्त अभिनेता एक हजार से भी अधिक हैं। प्रत्येक प्रमुख बस्ती में नाटक-समाज स्थापित हैं। प्रतिवर्ष नये-नये नाटकों का अभिनय होता रहा है।

तेलुगु-रंगमंच की ख्याति सुनकर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने जीवन-काल में नाटक देखने के अभिप्राय से तीन बार आन्ध्र में आये और उन्होंने तेलुगु-नाटक अभिनय तथा अभिनेताओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तेलुगु-रंगमंच की उच्च-दशा का यह मामूली प्रमाण नहीं है।

आन्ध्र-नाटक-कला-परिषद् की स्थापना

ई० सन् १९२९ में देशोद्धारक श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव पंतुलु, "कला-प्रपूर्ण" श्री वेदमु वेंकटराय शास्त्री, महामहोपाध्याय श्री आचंट वेंकट सांख्यायन शर्मा, "नाटक-कलोद्धारक" गोविन्दराव, "नाटक-कला-प्रपूर्ण" श्री बल्लारी राघवाचार्य इत्यादि ने "आन्ध्र-नाटक-कला-परिषद्" की स्थापना की, जिसका उद्देश्य नाटक से सम्बन्धित समस्त प्रकार की शाखाओं एवं उपशाखाओं में कार्य करने वाले कलाकारों का इस संघ के द्वारा सम्पर्क स्थापित कर नाटक-कला की वृद्धि करना रहा है। इसके साथ उत्साही नाटक समाजों को प्रोत्साहन प्रदान कर नाटक-कला की उन्नति करना भी इस संघ का आशय है। इस आशय के हेतु परिषद् कार्य करती आ रही है।

परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष नाटक एवं एकांकी प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं, उनमें से उत्तम नाटकों, एकांकियों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों और नाटककारों को पुरस्कार, पदक, 'शील्ड', प्रशंसा-पत्र इत्यादि प्रदान किये जाते हैं। विशेष परिस्थितियों में समुचित आर्थिक सहायता भी देने की व्यवस्था की गयी है।

अब तक इस परिषद् के साथ किसी-न-किसी रूप में सम्पर्क स्थापित करने

वालों में कई उत्तम अभिनेता, अभिनेत्री और नाटककार प्रकाश में आये हैं। इस परिषद् से सम्बद्ध श्रीमती अंजली, सावित्री, तिलकम् इत्यादि अभिनेत्रियाँ, श्रीएन० टी० रामराव, रामशर्मा, चलम्, नागभूषण, कुटुंबराव, पेरुमाल्लु, अच्ययया, रामन्नपंतुलु, रामचन्द्र कश्यप इत्यादि अभिनेता, श्री पिंगलि नागेन्द्रराव, गोपाल-राय शर्मा, आचार्य आत्रेय, डी० नरसराजु, पिनिशेट्टी, श्रीराममूर्ति, अनिशेट्टी सुब्बाराव, रावूरु, तोलेटी आदि नाटककार आज तेलुगु-फिल्म-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए हैं।

नाटक-कला-परिषद् ने आन्ध्र देश के प्रायः सभी विख्यात दर्शकों, गायकों, तथा अन्यान्य कलाकारों का समुचित स्वागत कर उनका सत्कार ही नहीं किया, उन्होंने पूरे भारत के एवं विश्व के विख्यात कलाकारों का भी यथासाध्य स्वागत कर उनके भाषण कराये गये और उन्हें सम्मानित भी किया। ऐसे कलाकारों के सम्मान-क्रम में इन संस्था ने श्री वी० शान्ताराम, महान् अभिनेता—श्री पृथ्वीराज, श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख अभिनेताओं और नाटककारों का अभिनन्दन किया है।

आन्ध्र-नाटक-कला-परिषद् ने अपने अथक परिश्रम से नाटक पर लगने वाले मनोरंजन-कर को उठवा दिया। अब प्रत्येक नगरपालिका में अभिनय के लिए आधुनिक नाट्यकला के प्रदर्शन के अनुरूप एक थियेटर का निर्माण कराने का यह संस्था प्रयत्न कर रही है। इसके साथ ही यह संस्था "नाट्य-कला" नामक पत्रिका (जो इस समय बन्द है) के पुनरुद्धार का प्रयत्न भी कर रही है।

समस्त आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न एक नाट्य-गृह के निर्माण के हेतु काफ़ी प्रयत्न हुआ और सन् १९४८ में विजयवाड़ा में "श्रीराघव-कला मन्दिर" की प्रख्यात दिग्दर्शक श्री वी० शान्ताराम ने नींव डाली, परन्तु किन्हीं कारणों से उसका निर्माण पूरा नहीं हो सका। हाँ, अन्यान्य संस्थाओं, समाजों तथा संगीत-नाटक-अकादमी की तरफ से भी आन्ध्र के कुछ प्रमुख नगरों में नाट्य-गृहों के निर्माण की व्यवस्था हुई है और हो रही है।

नाटकों के प्रकार

तेलुगु नाटक साहित्य को हम प्रधानतः सात भागों में विभक्त कर सकते हैं, वे क्रमशः संस्कृत नाटकों के अनुवाद, अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद, पौराणिक

नाटक, ऐतिहासिक नाटक, सामाजिक नाटक, प्रगतिशील नाटक तथा समस्या-प्रधान नाटक कहे जा सकते हैं । प्रारम्भ में तेलुगु नाटक दो रात्रियों में प्रदर्शित होता रहा, पर वह क्रमशः एक रात्रि के लिए सीमित हुआ और तदनन्तर जनता की अभिरुचि तथा अन्यान्य कारणों से क्रमशः छः घण्टे और चार घण्टे में सीमित होते-होते आज केवल दो घण्टे की अवधि में समाप्त हो जाता है । प्रारम्भ में गद्य नाटक, तदनन्तर पद्य और गीतों से पूर्ण चंपू और फिर संगीत-नाटक आये । आज गद्य-नाटक ही अधिक हैं ।

इस समय तेलुगु में नाटकों की संख्या दो हजार से भी अधिक है । उन सबका परिचय यहाँ सम्भव नहीं है । तेलुगु का नाटक-साहित्य इतना व्यापक और वैविध्यपूर्ण रहा है कि केवल उसकी कतिपय प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय मात्र कराया जा सकता है ।

आन्ध्र के कवियों ने संस्कृत में भी नाटकों की रचना की है, जिसमें प्रताप-रुद्र के दरबारी कवि गंगाधर का महाभारत नाटक मुख्य है । अन्य कवियों में से विश्वनाथ कवि ने "सौगंधिका-हरण", नरसिंह कवि ने "कादंबरी", रवि-पाटि त्रिपुरांतक ने "प्रेमाभिराम", वामन भट्ट ने "पार्वती-परिणय" और "शृंगार-भूषण", राव सर्वज्ञसिंग भूपाल ने "रत्नपांचालिका" तथा कृष्णदेवराय ने "जांबवती-परिणय" का प्रणयन किया है ।

संस्कृत के प्रायः समस्त नाटकों का तेलुगु रूपांतर भी हुआ है, जिनमें कालिदास का "अभिज्ञान-शाकुंतलम्", "मालविकाग्निमित्र" तथा "विक्रमोर्व-शीयम्", शूद्रक का "मृच्छकटिक", हर्षकृत "प्रियदर्शिका", "रत्नावली" और "नागानंद", भवभूति का "मालती-माधव", "उत्तर-रामचरित्र" और "महावीर-चरित्र", विशाख दत्ता का "मुद्राराक्षस", भट्ट नारायण का "वेणी-संहार", मुरारी का "अनर्घराघव", राजशेखर का "कर्पूर-मंजरी" तथा "विद्धसाल-भंजिका" तथा जयदेव का "प्रसन्न राघव" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । कालिदास-कृत "अभिज्ञान-शाकुंतल" के तेलुगु में लगभग दस अनुवाद हुए हैं ।

अंग्रेजी के नाटकों का तेलुगु-रूपांतर १९वीं शदी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारम्भ हुआ । उनमें वाविलाल वासुदेव शास्त्री द्वारा अनूदित "जूलियस-सीजर" सन् १८७५ में ही प्रकाशित हुआ । तेलुगु में यही अंग्रेजी नाटक का प्रथम रूपांतर

है। फिर सन् १८८० में ही गुरजाड़ा श्री राममूर्ति ने "मर्चेण्ट ऑव वेनीस" का रूपान्तर "चमत्कार रत्नावली" नाम से किया और राजमहेन्द्रवरम् के कॉलेज के विद्यार्थियों द्वारा उसका प्रदर्शन भी कराया। पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंहराव ने "ट्वल्त नाइट" प्रकाशित किया। तदनन्तर क्रमशः गोल्डस्मिथ, शारिडान, हेनरी गिब्ब्सन, आस्कार वाइल्ड, मोलियर और बर्नार्डशॉ के नाटक भी अनूदित हुए। हाल ही में अन्य पाश्चात्य नाटककार गोगोल, चेकोव, वुडहाउस आदि के भी नाटक अनूदित रूप में तेलुगु में आये हैं।

पौराणिक नाटकों की संख्या बहुत अधिक है। हमने कतिपय नाटककार और नाटकों का परिचय आधुनिक युग के प्रारम्भ में कुछ विशिष्ट लेखकों के परिचय के साथ कराया है। प्रथम तेलुगु पौराणिक नाटक सन् १८७० में वे० तिरुनारायणाचार्युलु विरचित "प्रह्लाद" नाटक है। "रामायण", "महाभारत" तथा "भागवत" के उपाख्यानों को इतिवृत्त बना कर प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति सम्पन्न भावुक लेखकों ने नाटकों की रचना की, जिनमें श्री धर्मवरम् कृष्णाचार्युलु, कोलाचलम् श्रीनिवासराव, चिलकर्मात लक्ष्मीनरसिंहराव, पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंहराव, बलिजेपल्लि लक्ष्मीकांतम्, दासु श्रीराममुलु, श्रीराजा मंत्रिप्रेगड भुजङ्ग राव के नाम उल्लेखनीय हैं। तिरुपति वेंकट कवि द्वय ने "पाण्डव जनन", "पाण्डव-प्रवास", "पाण्डवोद्योग", "पाण्डव-विजय" तथा "पाण्डवाश्वमेध" नाम से सम्पूर्ण महाभारत को पाँच भागों में नाटक का रूप दिया। इनमें पद्यों की भरमार है। ये नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। विश्वनाथ सत्यनारायण ने "वेनराजु", "नर्तन-शाला" और "त्रिशूल" आदि नाटकों की रचना की।

ऐतिहासिक नाटककारों में धर्मवरम् कृष्णमाचार्युलु, वेदमु वेंकटराय शास्त्री, कोक्कोंड वेंकटरत्नम् पंतुलु, कोलाचलम् श्रीनिवास राव, श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री का परिचय हमने काव्य-प्रकरण में कराया है। अन्य नाटककार और नाटकों में इच्छापुरपु यज्ञ नारायण का "रसपुत्र-विजय", गुंडिमेड वेंकट सुब्बारावकृत "खिलजी-राज्य-पतन", कोप्परपु सुब्बाराव का "रोषनारा" और वाविलाल सोमयाजुलु का "नायकुरालु" बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं।

सामाजिक नाटकों में प्रथम स्थान गुरजाड अप्पारावकृत "कन्या-शुल्कमु"

को प्राप्त है। अन्य नाटकों में पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंहकृत "कंठा-भरणमु", काल्लकूरि नारायण द्वारा विरचित "चिन्तामणि", "वर-विक्रयमु", तथा "मधु सेवा" और सोमराजु रामानुजरावकृत "रंगून रौड़ी" कभी विस्मृत नहीं किये जा सकते।

प्रगतिशील नाटकों में पी० वी० राजमन्नार कृत "तप्पेवरिदि" (दोष किस का), मुद्दु कृष्णा का "अशोक", गुडिपाटि वेंकटचलमकृत "हरिश्चन्द्र", "शशांक और चित्रांगी", त्रिपुरनेनि रामस्वामी चौधरी द्वारा रचित "शंबूक-वध", गवनु वेंकट कृष्णाराव का "भिक्षा-पात्र", "आदर्श-शिखरालु" और "यादव-प्रलय", आमंचर्ल गोपाल राव का "हिरण्यकश्यप", श्रीनिवास चक्रवर्ती का "पतित-जीवुलु", शुंकर और वासिरेड्डी के "माभूमि" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तेलुगु रंगमंच के विकास में अच्छा प्रयत्न किया गया है और निरन्तर चल रहा है। उधर नाटक-क्षेत्र में वस्तु, शिल्प, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य, पात्रों की सृष्टि में भी परिवर्तन होता आ रहा है। विदेशों में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई, उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समस्त भारतीय साहित्य के साथ तेलुगु-साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। हमारी आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था तथा दासता की ओर भी लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इस कारण जमींदारी-प्रथा, गरीब कृषक एवं मजदूर वर्ग की कठिनाइयाँ, बाल-विवाह, अनमेल विवाह इत्यादि को कथा-वस्तु बना कर तेलुगु में कई नाटक रचे गये। ये प्रगतिशील नाटक माने जाते हैं। उनमें श्री वासिरेड्डी भास्कर राव और सुंकर सत्यनारायण के "मुंदडुगु" (आगे कदम) तथा "माभूमि" (जमीन हमारी) काफ़ी जनप्रिय हुए। "मुंदडुगु" में जमींदारी समस्या का चित्रण है और "माभूमि" में किसानों की समस्या का। श्री आचार्य आत्रेय के "परिवर्तन", "विश्वशान्ति", "पोरुगु", "एन० जी० ओ०", "कप्पलु" (मेंढकें) आदि इसी प्रकार के नाटक हैं।

श्री अनिशेट्टी का "गालि मेडलु", श्री श्रीवात्सव का "तीरनि कोरिकलु", श्री डी० नरसराजु का "नाटक", श्री सुब्बाराव का "इनुपतेरलु" आदि उल्लेखनीय हैं। अन्य असंख्य विख्यात नाटककार एवं अभिनेता तेलुगु रंगमंच के विकास में स्पृहणीय योगदान कर रहे हैं, जिन सबका नामोल्लेख करना भी संभव नहीं है।

नाटकों के इस विकास-क्रम देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि तेलुगु-रंगमंच का भविष्य अत्यन्त उज्वल है ।

एकांकी

तेलुगु साहित्य में "एकांकी" प्रहसन के रूप में अवतरित हुआ । कंदुकूरि वीरेशलिंगम् प्रहसनों के जनक हैं । इन्होंने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों के प्रक्षालन के हेतु उपहासात्मक प्रहसन रचे, जो अंग्रेजी-साहित्य के "सटायर" की श्रेणी के हैं । इन्होंने इस प्रक्रिया को केवल नाटक-लक्षणों के अनुरूप ही नहीं बनाया, अपितु तीस प्रहसनों की रचना करके एकांकी-साहित्य का पथ भी प्रशस्त किया । मुख्यत: अन्धविश्वासों का खण्डन, नारी-स्वातन्त्र्य, नारी-पुनर्विवाह, सामाजिक-चेतना लाने वाले अन्य विषय इनके इतिवृत्त थे । तिरुपति वेंकट कविद्वय ने "पल्लेटूल्ल पट्टुदललु" (गाँवों की मान्यताएँ) नाम से एक सुन्दर प्रहसन प्रस्तुत किया ।

परिवार तथा समस्या प्रधान एकांकी लिखने वालों में श्री नलिवेंकटेश्वर-राव अद्वितीय हैं । "कोत्त गड्डु" (नई धरती) इनका १६ एकांकियों का संग्रह है ।[१]

इस प्रक्रिया को पुष्ट करने वालों में मुनिमाणिक्यम् नरसिंहराव तथा भमिडिपाटि कामेश्वरराव के नाम उल्लेखनीय हैं । भमिडिपाटि ने फ्रेंच-लेखक मोलियर की रचनाओं से प्रेरणा ग्रहण की तथा उनके अनुकरण में "वद्दंटे पेल्लि" (जबर्दस्ती का ब्याह) इत्यादि हास्य-रस-प्रधान एकांकी लिखे । हास्य-रस-प्रधान एकांकी-रचना में आप सिद्धहस्त हैं । आपकी अन्य कृतियों में "काल-क्षेप", "इप्पुडु", "अवुनु", "निजं", "अप्पुडु", "रेंडुरेल्ल" (दो + दो) आदि कृतियाँ तेलुगु पाठकों एवं प्रेक्षकों द्वारा प्रशंसा-प्राप्त कर चुकी हैं ।

आधुनिक एकांकी के प्रवर्तकों में श्री चिन्ता दीक्षितुलु मुख्य हैं । "वरूथिनी", "शर्मिष्ठा", "खड्ग-तिक्कना" तथा "चक्रवाक-मिथुनमु" आपके सुन्दर एकांकी

---

१. यह एकांकी संग्रह "नई धरती" नाम से इन पंक्तियों के लेखक द्वारा अनूदित हो "भारतीय ज्ञानपीठ, काशी" द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

हैं। श्री गुडिपाटि वेंकटचलम् ने परंपरागत विचारों का खण्डन करते हुए "सत्य हरिश्चन्द्र", "भानुमती", "सीता का अग्नि-प्रवेश", "द्रौपदी", "मृत्युवु" आदि एकांकी रचे, जिनकी उत्तेजनापूर्ण शैली तथा चमत्कारपूर्ण भाषा तेलुगु-साहित्य की अनुपम देन है।

मल्लादी अवधानी ने "दोंगाटकमु", "बालचन्द्र", श्री गवन वेंकट कृष्णराव ने "भिक्षा पात्र" उपस्थित करके तेलुगु पाठकों में एकांकी के प्रति विशेष अभिरुचि पैदा की।

श्री मुद्दुकृष्ण ने "टीकप्पु लो तूफ़ान" (चाय के प्याले में तूफ़ान), "अशोक-वनमु", "मोक्कुबडि" इत्यादि विचारपूर्ण एकांकी लिखे हैं। ये आन्ध्र के कोने-कोने में प्रदर्शित और लोकप्रिय हुए हैं। इनमें हेतुवाद का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

ग्रामीण जीवन तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने वाली एकांकी-रचना में श्री नार्ल वेंकटेश्वरराव सिद्धहस्त हैं। "पैपंट", "वंतेन", "दोंगादोरा" और "प्रारब्दम्" आदि आपके सुन्दर एकांकी हैं।

श्री पी० वी० राजमन्नार के तार्किक दृष्टिकोण से पूर्ण एकांकी भी पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। आपके एकांकियों में "श्वेतनाग", "एमि मगवाल्लु" (कैसे मर्द हैं) और "निष्फल" आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। श्री इन्द्रगंटि हनुमच्छास्त्रीकृत "वेदमूर्तुलु", "हेममाली" तथा श्रीपाद गोपाल कृष्णमूर्ति रचित "नटीमणि का सवाल" इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

यथार्थवादी एकांकियों में श्री आत्रेय रचित "एवरु दोंग", "प्रगति" आदि अविस्मरणीय हैं। श्री सुकर सत्यनारायण ने कई एकांकी लिखे, जिनमें "गित्तल बेरमु", "पीटलमीद पेंडिल" आदि काफ़ी जनप्रिय हुए हैं और अन्य भाषाओं में भी अनूदित हुए हैं।

श्री शिवराजु वेंकट सुब्बाराव (बुच्चिबाबू) ने अनेक सुन्दर एकांकी लिखे हैं। उनमें "दारिनपोये दानय्या", "उमरखय्याम" प्रख्यात हुए हैं। पाल-गुम्मि पद्मराजु ने भी कई एकांकी लिखे हैं। अन्य एकांकीकारों में अनिशेट्टि सुब्बाराव, पिनिशेट्टि श्रीराममूर्ति, प्रख्य श्री राममूर्ति, कोडवटिगंटि कुटुंबराव, सत्यनारायण, श्रीवात्सव, जी० वी० कृष्णराव, हितश्री, मल्लादि वेंकटकृष्ण

शर्मा, बुद्धवरपु नागराजु, रावि कोंडल राव, अंगर सूर्याराव, बेल्लमकोंड रामदास, रेंटाल गोपाल कृष्ण, अवसराल सूर्याराव, डी० वी० नरसराजु मुख्य हैं ।

संगीत रूपक

संगीत रूपकों की रचना में तल्लावज्झल (स्वामी) शिवशंकर शास्त्री, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, सी० नारायण रेड्डी आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं । कोप्परपु सुब्बाराव का "अल्लीमुठा", कृष्णमाचार्य—नंडूरि का "तेनुगु गड्डा", आरुद्रकृत "साल भंजिका", रजनीकान्तरावकृत "चन्दी दास" और "सुभद्रा" तथा श्री-जलसूत्रं रुक्मिणी नाथ शास्त्री का लिखा "तेल तेलवारे" विशेष जनप्रिय हो चुके हैं ।

रेडियो रूपक

आज नित्य प्रति रेडियो द्वारा विविध लेखकों के रूपक प्रसारित होते हैं । संख्या तथा उत्तमता की दृष्टि से भी तेलुगु रूपक विकास के इस पथ पर अग्रसर हैं । रेडियो रूपकों में अब्बूरी रामकृष्णरावकृत "नदी सुन्दरी", पालगुम्मि पद्मराजु रचित "हत्या", गोरा शास्त्रीकृत "आश खरीदु अणा" तथा "सेलवुल्लो", श्री श्रीकृत "चतुरस्त्रम्", "मरो प्रपंचम्" और "टोपिया" आदि तथा जनमंचि का "भावांकुर" मुख्य हैं । अन्य श्रेष्ठ रूपककारों में देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, सी० नारायण रेड्डी, दाशरथी, आमंचर्ल, जलसूत्रं रुक्मिणीनाथ शास्त्री, पद्मराजु, रजनी कांतराव, आरुद्र, श्रीवात्सव, राचकोंडा, अय्यगारि वीरभद्रराव, पालंकि रामचन्द्रमूर्ति, आत्रेय आदि के नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं ।

गद्य-साहित्य

आधुनिक गद्य का शुभारंभ श्री चिन्नय सूरिकृत "नीति चन्द्रिका" के आविर्भाव से हुआ । यही तेलुगु का प्रथम प्रामाणिक गद्य-ग्रन्थ माना गया । गद्य-साहित्य के विकास में योग देने वाले उद्भट विद्वानों एवं साहित्यकारों का परिचय हमने आधुनिक युग के प्रारम्भ में कराया है । वे सब ऐसे विशिष्ट साहित्यिक हैं कि अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा तेलुगु-साहित्य के विभिन्न अंगों तथा उपांगों की पुष्टि में उन्होंने अनवरत श्रम किया है और अपनी समुन्नत प्रतिभा को विविध प्रकार

के ग्रन्थों के रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके साहित्यिक परिचय-क्रम में गद्य के विकास-क्रम का परिचय भी मिल जाता है। मील-पत्थर जैसे गद्य के निर्माताओं की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय प्रारम्भ में इसीलिए दिया गया है कि वे न केवल गद्य के सृजन में लगे रहे, अपितु कविता, नाटक, समीक्षा, जीवनी आदि अन्यान्य विधाओं के सृजन और विकास में भी हाथ बँटाते रहे।

इस सन्दर्भ में यह भी बताना आवश्यक है कि किसी साहित्यिक विधा के निश्चित प्रामाणिक रूप प्राप्त करने के पूर्व उसके निर्माण की अनेक प्रक्रियाएँ हुआ करती हैं। १६वीं शती में गद्य के उत्तम ग्रन्थ "रायवाचकमु" और "जैमिनी भारतमु" इत्यादि आये, किन्तु यह भी सत्य है कि तेलुगु का प्रथम काव्य "महाभारत" चंपू होने के कारण गद्य-पद्य की धाराएँ उसीके रचना-काल में समान रूप से प्रवाहित होती आयीं और आधुनिक युग में प्राचीन शैली में रचित गद्य-ग्रन्थ भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। सन् १७४६ में "नूरु-ज्ञान-वचनालु" सदृश पुस्तक आयी। सन् १८१२ में "न्यूटेस्टमेंट", सन् १८१२ में "आन्ध्र-दीपिका", सन् १८१५ में "आध्यात्म-रामायण" तथा "मुकुन्द विलास" प्रकाशित हुए। तदनन्तर क्रमशः "वासुदेवमनन" और "व्यवहार-दर्पण" (भूपालीय) आदि गद्य पुस्तकें रची गयीं।

प्रारम्भ में पाठकों में गद्य के प्रति अभिरुचि पैदा करने के विचार से "पंचतंत्र", "हितोपदेश", "विक्रमार्क की कहानियाँ", "कथा-सरित्सागर", "चार पर्वीस", "शुकसप्तशती", "बेताल पंचविंशति", "तेनालि-रामुनि-कथलु", "ताताचार्युलु कथलु", "पंचाक्षितलु" आदि ग्रन्थ सुन्दर गद्य में रचे गये।

स्कूल-कालेजों में पढ़ाने के लिए गद्य-पुस्तकें लिखायी गयीं। सन् १८४० में सिंगराजु दत्तात्रेयुलु तथा वेंकट सुब्बय्या ने "रंगनाथ रामायण" काव्य-गद्य में प्रस्तुत किया। इस परम्परा में अनेक प्राचीन काव्य साधारण पाठक के उपयोगार्थ गद्य में रचे गये। इस युग के गद्य-ग्रन्थों में एनुगुल वीरास्वामीकृत "काशी-यात्रा" विशेष उल्लेखनीय है। अंग्रेजी के विशिष्ट निबन्धों का तेलुगु रूपांतर भी हुआ। सी० पी० ब्राउन महोदय के निबन्ध १० जिल्दों में तैयार किये गये हैं।

इस समय के अन्य गद्य-ग्रन्थों में कावलि वेंकट बोर्रय्याकृत "कांचीपुर-

माहात्म्य", कारुमंचि सुब्बरायकृत "दशावतार-चरित्र" उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त "सुजन-रंजनी", "शारदा", "आन्ध्र-भाषा-संजीवनी", "चिन्तामणि" इत्यादि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में अनेक विषयों पर ज्ञानवर्द्धक निबन्ध प्रकाशित होते रहे हैं।

आधुनिक गद्य-लेखकों में कंदुकूरि वीरेशलिंगम्, वेदमु वेंकटराय शास्त्री, कोक्कोंड वेंकटरत्नम् पंतुलु, जयन्ति रामय्या, चिलकूरि वीरभद्रराव, मल्लमपल्लि सोमशेखर शर्मा, वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, गिडुगु वेंकटराममूर्ति, गुरजाड, श्रीराम-मूर्ति, चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम्, चिलकूरि नारायण राव आदि के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। इन सबका परिचय इस युग के वर्णन में आरम्भ में दिया गया है।

तेलुगु-गद्य के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन लाने वाले श्री पानुगंटि लक्ष्मी-नरसिंहरावकृत "साक्षी" निबन्ध संग्रह (छः भाग) हैं। इनका भी हमने परिचय दिया है। अन्य निबन्धों में सर्वश्री राल्लपल्लि अनन्त कृष्ण शर्मा के "सारस्वतो-पन्यासमुलु", श्री कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डीकृत "व्यास-मंजरी" (पाँच खण्ड), साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। अन्य लेखकों में अडवि बापिराजुकृत "तीर्थ-यात्रा", श्री मल्लंपल्लि सोमशेखर शर्माकृत "चारित्रक व्यासमुलु", श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्रीकृत "मीगड-तरगलु" और "तेलुगु-मेरुगुलु", श्री तापी धर्मारावकृत "कोत्तपाली", श्री पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् के विविध निबन्ध, कोमराजु लक्ष्मणरावकृत "लक्ष्मणराय व्यासावलि", पल्लपर्मारि हनुमन्तराव के "महत्त्वपूर्ण निबन्ध संग्रह" पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु के अनेक निबन्ध, भूपति लक्ष्मीनारायण, विद्वान् विश्वम्, काटूरि वेंकटेश्वरराव के निबन्ध भी इस दिशा में उल्लेखनीय हैं।

श्री नार्ल वेंकटेश्वरराव के गद्य-संग्रहों में "माटा मंती" और "पिच्चापाटी" विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इनके ग्रन्थ जेकराज्य-विच्छेद, नेंटि-रष्या (आज का रूस), पालस्तीना आदि तथा गोपीचन्द के गद्य-ग्रन्थ "पोस्टु-चेय्यनि-उत्तरालु" तेलुगु पाठकों में बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं।

आलोचना-साहित्य के अन्तर्गत हमने अनेक प्रमुख गद्य-ग्रन्थों का परिचय

दिया है। वे आलोचनात्मक होते हुए भी आधुनिक तेलुगु-गद्य-विकास के परिचायक एवं ग्रन्थ भी हैं।

कोराड रामकृष्णय्या, गंटि जोगेश्वर सोमयाजी, दिवाकर्ल वेंकटावधानी, गोपवूरि वेंकटानन्दराघव राव, श्रीवात्सव, संपत, वड्लमूडि गोपाल कृष्णय्या, जम्मलमडक रमणय्या, निडदवोलु वेंकटराव, वसन्तराव वेंकटराव, मामिडिपूडि वेंकट रंगय्या, ति रुज्झल कोदण्ड रामय्या, देवुलपल्लि रामानुज राव, सुखरम प्रताप रेड्डी, बी० रामराजु, चर्ल नारायण शास्त्री, चल्ला राधाकृष्ण शर्मा, पंचग्नुल आदि नारायण शास्त्री, विस्सा अप्पाराव, नोरि नरसिंह शास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण इत्यादि असंख्य विद्वानों ने अपने निबन्धों द्वारा तेलुगु गद्य-साहित्य को समृद्ध बनाया है। ग्रन्थ-विस्तार के भय से केवल हमने इन विद्वानों का नामोल्लेख मात्र किया है, इनके निबन्ध-संग्रहों तथा उनकी विशेषताओं की समीक्षा चाहते हुए भी यहाँ हम नहीं दे पाये। अनेक दर्जनों लेखकों तथा उनके द्वारा रचित विपुल ज्ञानवर्द्धक भूमिकाओं का परिचय देना भी यहाँ सम्भव नहीं हो सका।

उपन्यास

तेलुगु का प्रथम उपन्यास श्री वीरेशलिंगम् पंतुलुकृत "राजशेखर-चरित्र" है, जिसका विपुल परिचय हमने प्रारम्भ में ही कराया। पंतुलु के अनुयायी श्री चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् ने "हेमलता", "कर्पूर-मंजरी", "अहल्याबाई" और "सौन्दर्य-तिलक" इत्यादि ऐतिहासिक उपन्यास रचे। उनका "रामचन्द्र-विजयमु" आन्ध्र देश के जन-जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाला है। अंग्रेजी भाषा के "स्काट" से इनकी तुलना की जाती है। इनकी भाषा निर्दोष, शैली प्रवाहयुक्त तथा स्फुट हास्य को लिये होती है। बंगाल के रमेशदत्तकृत "लेक ऑव पाम्स" नामक उपन्यास का आपने "सुधा-शरत्चन्द्र" नाम से तेलुगु रूपांतर किया।

इन्हीं दिनों में अनेक प्रकाशन-संस्थाओं का जन्म हुआ। उनमें "विज्ञान-चन्द्रिका-मण्डली", "सरस्वती-ग्रन्थ-मण्डली", "आन्ध्र-प्रचारिणी-ग्रन्थ-मण्डली" तथा "रामविलास-ग्रन्थ-माला" उल्लेखनीय हैं इन ग्रन्थ-मालाओं की ओर

से अनेक अंग्रेजी और बंगला के उपन्यासों का रूपांतर भी हुआ और साथ ही उत्तम ऐतिहासिक और सामाजिक, मौलिक उपन्यासों का प्रणयन भी। इस परम्परा में भोगराजु नारायणमूर्तिकृत "विमला देवी" और "अस्तमयम्", वेलाल सुब्बरावकृत "रानी संयुक्ता", केतवरपु वेंकट शास्त्री रचित "रायचूरु-युद्धमु", दुग्गिराल राघवचन्द्रय्या का लिखा "विजय-नगर-साम्राज्यमु" उत्तम उपन्यास हैं। इनमें शिल्प की प्रधानता है, शैली मनोहर तथा भाषा रमणीय है।

देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की साहित्य में जो प्रतिक्रिया हुई, उसके अन्तर्गत महात्माजी के आदर्शों के अनुकरण पर उन्नव लक्ष्मीनारायण पंतुलु ने "मालपल्ली" प्रस्तुत किया। इसमें दलित जाति हरिजनों के उद्धार, उच्चवर्ण वालों के अत्याचार और दुखियों की सहिष्णुता आदि प्रभावशाली शैली में चित्रित हैं।

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने अनेक उपन्यास लिखे, जिनमें "वेयि-पडगलु" (सहस्र फण) आन्ध्र की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषताओं का परिचय कराने वाला है। मानवता को जिस कुशलता के साथ लेखक ने अपने पात्रों में प्रतिबिम्बित किया है, वह स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है। आपका "एकवीरा" ऐतिहासिक उपन्यास है। यह कलात्मक होने के साथ-ही-साथ प्रभावोत्पादक भी है। आपके अन्य उपन्यासों में "चेलियलि कट्ट", "धर्म-चक्र", "तेरचि-राजु", "हा-हा-हूहू", "स्वर्गानिकिनिच्चेनलु", "जेबुदोंगा", "माबाबू" उल्लेखनीय हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में स्वर्गीय अडवि बापिराजु तथा श्री नोरि नरसिंह शास्त्री सिद्धहस्त हैं। "हिम-बिन्दु" और "गोन-गन्ना-रेड्डी" बापिराजु के उत्तम ऐतिहासिक उपन्यास हैं। "हिमबिन्दु" सातवाहनकालीन समाज का तथा गोनगन्नारेड्डी काकतीय युग का प्रतिबिम्ब है। नोरि नरसिंह-राव ने "नारायण भट्टु", "रुद्रम-देवी" तथा "मल्लारेड्डी" नामक तीन ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत किये, जो क्रमशः चालुक्य, काकतीय तथा रेड्डी राजाओं के युगों के इतिहास, समाज, रीति-नीति, धर्म-कर्म का सुन्दर परिचय देने वाले हैं। बापिराजु का "नारायण राव" एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें वर्तमान आन्ध्र का जन-जीवन अंकित है। "जाजिमल्लि", "कोनंगि" और "तूफानु" आपके अन्य सुन्दर सामाजिक उपन्यास हैं। उपर्युक्त सभी उपन्यास

बृहत्कथा के रूप में हैं। "बद्दन्न सेनानी" और "कडिमि चेट्टु" विश्वनाथ सत्यनारायणकृत ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

तेलुगु-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों की अपनी गरिमामयी परम्परा है। इस शृंखला में डा० नेलटूरि वेंकटरमणय्या के "मधुमावती" और "छत्र-ग्राही", तेन्नेटि सूरिकृत "चेंधिजखाँन", मल्लादि वसुंधरा का रचा "तंजाऊरि पतनमु", श्री धूलिपाल श्रीराममूर्ति द्वारा विरचित "भुवन-विजयमु", कोर्ल-पाटि श्री राममूर्ति का "चित्रशाला", पिलका गणपति शास्त्री द्वारा प्रणीत "मीनां-बिका" सुप्रसिद्ध हैं।

इन दिनों से बंगाल के विख्यात कथाकार शरत्चन्द्र, प्रभातकुमार मुखो-पाध्याय और रवीन्द्र आदि के उपन्यासों का चक्रपाणि, शिवशंकर शास्त्री, वेंकट पार्वतीश्वर कविद्वय आदि ने अनुवाद किये। उनकी संख्या दर्जनों है। वेंकट पार्वतीश कवियों के उपन्यासों में "प्रमदावनमु", "मातृमंदिर", "श्यामला" आदि मौलिक हैं। इस श्रेणी में टेकुमल्ल रामचन्द्रराव के "क्षमार्पण", "प्रणय-चांचल्य", श्री शिवशंकर शास्त्रीकृत "कुंकुम-भरणि" चरित्र-चित्रण तथा प्रवाह-पूर्ण शैली के लिए विख्यात हैं।

श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम् के आगमन से तेलुगु उपन्यास के क्षेत्र में एक झंझावात उठ खड़ा हुआ। इन्होंने सामाजिक रीति-नीति, अन्धविश्वास, गुलामी, यौनदासता, परतन्त्रता, नारी की स्वेच्छाहीनता इत्यादि का बड़ी निर्भीकता के साथ भण्डाफोड़ करते हुए कलम चलायी तथा उन्मुक्त प्रणय का प्रचार किया। इन सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने के लिए आपने "मैदानमु", दैवमिच्चिन-भार्य" (ईश्वर प्रदत्त पत्नी), "कन्नीटि कालुव" (अश्रु-धारा), "माकर्म-इट्ला-कालिंदि" (हमारा भाग्य ही खोटा है), "शशिरेखा" आदि उपन्यास लिखे, जिनमें आप अपनी भाषा-शैली के अद्भुत निखार के लिए विशेष विख्यात हैं।

आन्ध्र देश की पृष्ठभूमि को कथा-वस्तु बनाकर श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री ने "रक्षा-बन्धमु", "वड्ल-गिंजलु", "आत्मबलि", "अनाथ बालिका", "मिथुन-रागमु" और "धर्मचक्रमु" आदि सुन्दर उपन्यास रचे। मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री का "एकोदरुलु" भी एक सुन्दर सामाजिक उपन्यास है।

हास्यरस पूर्ण उपन्यासों के प्रणेताओं में चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री,

मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री, मुनिमानिक्यम् नरसिंहराव तथा जलसूत्रं रुक्मिणी-नाथ शास्त्री उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यास क्रमशः "गणपति", "बारिस्टर पार्वतीशम", "उपाध्यायुडु" तथा "देवय्या" नाम से प्रकाशित हैं और शिष्ट हास्य के द्योतक हैं।

राजनीतिक समस्याओं का चित्रण करने वाले उपन्यासों में श्री कोडवटिगंटि कुटुंबरावकृत "चदुवु" (शिक्षा), महीधर जगन्मोहन राव का रचा "रथचक्रालु" वट्टिकोट्ट आल्वार स्वामी का "प्रजल मनिषि" और आरुद्र का "ग्रामायण" विशेप प्रसिद्ध हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी तेलुगु में कम नहीं आये। ऐसे उपन्यासों में कुटुंबरावकृत "आड जन्म" (नारी जन्म), "लेचिपोइन मनिषि", "कुलंलेनि पिल्ल" और "मारुमेरुलु", श्री गोपीचन्दकृत "परिवर्तन", "असमर्थुनि जीव-यात्रा" तथा "परमेश्वर शास्त्री का "वीलुनामा", श्री जी० वी० कृष्णराव का "कीलु बोम्मलु", बुच्चिबाबूकृत "चिवरकु मिगिलेदि", "राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री का "अल्प जीवि" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डायरी प्रणाली में रचित मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में श्री उत्पल लक्ष्मण राव रचित "अतडु-आमे" (वह और उसकी स्त्री) और श्री मुनिमाणिक्यम् का "तिरुमालिग" अधिक प्रसिद्ध हैं।

मध्यवर्ग का चित्रण करनेवाले उपन्यासकारों में "श्री पिनिशेट्टि श्रीराम-मूर्ति" तथा "शारदा" अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। पिनिशेट्टि के उपन्यासों में "दत्तता" और "ममता" हृदयों का स्पर्श करने वाले हैं। धनी और दरिद्र परिवारों के व्यक्तियों का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व भी इनमें बड़ी कुशलता के साथ चित्रित हुआ है। "शारदा" (नटराजन्) ने "एदि सत्यं ?" (कौन सत्य), "मंची-चेडु" और "अपस्वरालु" आदि उत्तम सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किये हैं।

अन्य उपन्यासों में मल्लादि वसुंधरा का "दूरपु कोंडलु" (दूर के पहाड़) "मुप्पाल रंगनायकम्मा का "कृष्णवेणी", कोडूरि कौशल्यादेवी का "चक्र-भ्रमणमु", कंदुकूरि लिंगराजु का "मनमु मिगिलें" मुख्य हैं। धनिकोंड हनुमंतराव, आरुद्र, जोन्नलगड्ड आदि उपन्यासों के प्रणयन में लगे हुए हैं। इसी बीच जासूसी उपन्यासों का ऊफान आया, पर सौभाग्य से वह थम गया।

बंगला, अंग्रेजी और हिन्दी के प्रायः सभी श्रेष्ठ उपन्यासों का रूपांतर तेलुगु

में हो चुका है। "विश्वसाहित्य-माला" नामक प्रकाशन संस्था ने रूस के विख्यात कथाकारों की कृतियों का भी अनुवाद प्रकाशित किया है। उनमें मैक्सिम गोर्की कृत "मदर" का "अम्मा" रूपांतर अति उत्तम बन पड़ा है। आज तो उर्दू तथा अन्य भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ उपन्यासों के रूपांतर का प्रकाशन विभिन्न प्रकाशकों तथा साहित्य अकादमी, "साउथ इण्डियन बुक ट्रस्ट" इत्यादि सरकारी एवं अर्द्धसरकारी संस्थाओं द्वारा हो रहा है। विजयवाड़ा में स्थित "प्रेमचन्द-पब्लिकेशनस्" नामक एक प्रकाशन-संस्था ने प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार, राहुल सांकृत्यायन, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा के प्रायः सभी उपन्यासों का अनुवाद प्रकाशित किया है। आन्ध्र में उक्त लेखक बहुत ही लोकप्रिय हो रहे हैं।

आज तो पत्र-पत्रिकाएँ और संस्थाओं द्वारा उपन्यासों की स्पर्धाएँ चलायी जा रही हैं। उनसे प्रोत्साहन पाकर उत्साही युवक लेखक इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दे, तेलुगु साहित्य के भण्डार को भर रहे हैं। ऐसे उपन्यासों की संख्या भी दर्जन से ऊपर हो गयी है।

टेकनिक, भाषा, शैली तथा अन्यान्य दृष्टियों से तेलुगु उपन्यास ने आशातीत प्रगति की है। हम कह सकते हैं कि अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यास-साहित्य की तुलना में तेलुगु-उपन्यास पिछड़ा नहीं है, वह भी उनके कदम में क़दम मिलाते आगे बढ़ रहा है।

कहानी-साहित्य

गद्य की विभिन्न विधाओं में लघु कथा का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि लघुकथा पाश्चात्य साहित्य की देन है, फिर भी वह भारतीय वातावरण में खूब पनपी। समस्त भारतीय भाषाओं में बड़ी तेजी के साथ इसका विकास हुआ। बंगला में यह "गल्प" नाम से व्यवहृत है, तो हिन्दी में "कहानी" और तेलुगु में "कथा" नाम से। परन्तु प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शती के प्रथम चरण में "छोटी कहानी" का जन्म और विकास हुआ।

सांस्कृतिक रूप से पूरा भारत अभिन्न है। प्रादेशिक विशेषताओं के कारण इसमें थोड़ी विभिन्नता दिखाई देने पर भी, उनके मूल में एकता की एक विराट्

भावना निहित है। अतः भारतीय जन-जीवन को जिस किसी भी घटना ने अनुप्राणित किया, उसका प्रभाव सभी भाषाओं के साहित्यों पर भी पड़ा। इसलिए इन विभिन्न भाषा-साहित्यों की प्रधान प्रवृत्तियों के भीतर विशेष अन्तर नहीं दीखता।

तेलुगु भाषा में कहानी की रचना का आरम्भ उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ और तेलुगु कहानी के प्रथम लेखक स्व० गुरजाड़ अप्पाराव हैं। अप्पा-रावजी के पूर्व भी कुछ कहानियाँ लिखी गयीं, किन्तु वे "छोटी कहानी" की परिभाषा के उपयुक्त नहीं हैं। अप्पाराव ने सामाजिक सुधार को लक्ष्य बनाकर "मी पेरेमिटि", "दिद्दु बाटु" तथा "संस्कृतं हृदयं" नामक केवल तीन कहानियाँ लिखीं। अतः हम कह सकते हैं कि तेलुगु में लघु-कथा का प्रारम्भ सामाजिक कहानियों से हुआ।

इसके उपरान्त कथा-वस्तु और वर्ण्य-विषय में काफी परिवर्तन हुआ। विभिन्न विषयों पर कहानियाँ लिखी जाने लगीं। उनमें मुख्यतः पौराणिक, भावात्मक, ऐतिहासिक तथा चरित्र-प्रधान कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री पौराणिक तथा सामाजिक कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। 'कृति', 'तन्मयता', 'क्षमार्पण' इनकी उत्तमोत्तम कहानियाँ मानी जाती हैं।

श्री चिन्ता दीक्षितुलु की कहानियों में शिल्प की प्रधानता है। बच्चों के मनोविज्ञान का आपने गहरा अध्ययन किया है। आपकी कहानियों में शिष्ट हास्य का चमत्कार है। तेलुगु कहानी में लचीलापन और मार्दव लाने का श्रेय आपको ही प्राप्त है। आपके "वटीरात्रु-कथलु" और "एकादशी-संग्रह" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

महात्मा गांधीजी ने ग्रामोत्थान आन्दोलन का, जिसके अनुसार उन्होंने ग्राम की उन्नति को ही देख की उन्नति माना, समग्र देश में ऐसा व्यापक प्रभाव पड़ा कि उसने भारत के जन-जीवन को ही नहीं, अपितु भारतीय साहित्यों को भी अनु-प्राणित किया। इस आन्दोलन का परिणाम यह भी हुआ कि हमारे देशवासियों में अपनी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति प्रेम, रुचि व आस्था पैदा हुई। यही कारण है कि तेलुगु के लोक-साहित्य और लोक-गीतों की सुरक्षा का प्रयत्न आरम्भ हुआ। ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्त्व रखने वाले स्थानों का चित्रण

भी साहित्य में स्थान पाने लगा। इस वर्ग के कहानीकारों में श्री कविकोंडर वेंकटराव का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। इनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का चित्रण सर्वत्र देखा जा सकता है। ग्रामीण जीवन की चिरंतन समस्याओं का समाधान भले ही उनमें उपलब्ध न हो, परन्तु उनका स्वरूप अवश्य देखा जा सकता है।

तेलुगु-कहानी-साहित्य में नये अध्याय का श्रीगणेश करने वाला एक और आन्दोलन चल पड़ा, जिसने तेलुगु कहानी में थोड़े समय के लिए आमूल क्रान्ति उत्पन्न की और उसे ऐसा आलोड़ित किया कि पाठकों के हृदयों में तहलका मच गया और साथ ही उसने लेखकों पर भी अपनी धाक जमा दी। इस आन्दोलन का भावना-श्रोत यह रहा कि स्त्री को पुरुष की भाँति समस्त क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हो, स्त्री पुरुष की दासी न हो, बल्कि संगिनी बने, सुख-दुःखों में उसका व्यवहार मित्र-का-सा हो तथा यौन-सम्बन्धी ज्ञान युवकों-युवतियों को पूर्ण रूप से प्राप्त हो। जीवन का सुख और आनन्द स्वस्थ समाज में ही सम्भव है, नारी को पुरुष की भाँति इतनी स्वतन्त्रता अवश्य हो कि वह अपने पति को किसी सामाजिक दबाव के बिना चुन सके इत्यादि भावनाओं को तेलुगु साहित्य में सर्वप्रथम प्रधानता देनेवाले श्री गुडिपाटि वेंकटचलम् का साहित्य-जगत् में प्रवेश हुआ और उन्होंने उपर्युक्त विषयों को कथा-वस्तु बना कर दर्जनों कहानियाँ लिखीं। वे सब प्रायः संग्रहों में संकलित कर प्रकाशित की गयी हैं, जिनमें "कन्नीटि कालव" (अश्रुधारा), "अदृष्टम्" (किस्मत), "हंपी कन्याएँ" और "वेंकटचलम् कथलु" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यौन-सम्बन्धी समस्याओं पर श्री धनिकोंड हनुमन्तराव तथा भरद्वाज ने सुन्दर कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। कहानी में शिल्प को प्रधानता, कल्पना और भावना को प्रमुखता देने वाले कहानीकारों में श्री अडवि बापिराजु, सुरवरम् प्रताप रेड्डी और जमदग्नि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियों में कला और सौन्दर्य का उच्च कोटि का चित्रण पाया जाता है। तेलुगु-कहानी में कोमलता और सरसता लाने का श्रेय इन्हीं लोगों को प्राप्त है।

मानव-जीवन में हम जैसा वैविध्य पाते हैं, उसके दर्शन हम कला में भी करते हैं। जीवन के प्रति दृष्टिकोण की विभिन्नता और रुचि के कारण ही हम

रचनाओं में विविधता देखते हैं। यह विविधता वस्तु में ही नहीं, भाव में, वाक्य-रचना में, भाषा में, शैली में तथा रस में भी दृष्टिगोचर होती है। कुछ रचनाएँ भावात्मक होने के कारण हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं और पाठकों को रमणीय कल्पना-जगत् में विचरण कराती हैं। भावात्मक कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि उनसे हृदय पर विचारों की प्रतिक्रिया भी प्रकट होती है। भावात्मक कहानियाँ लिखने वालों में अडिवि बापिराजु, चिन्ता दीक्षितुलु, वेलूरि शिवराम शास्त्री, श्रीमती कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा, श्रीमती इल्लिदल्लि सरस्वती देवी, श्रीमती मालती चन्दूर और श्रीमती कोम्मूरि पद्मावती देवी आदि के नाम इस परम्परा में आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

तेलुगु कहानी-साहित्य में हास्य-रस का भी सुन्दर पोषण हुआ है। हास्य में तीखे व्यंग्य का पुट हो तो उसका सारा मजा किरकिरा हो जाता है, सामने वाला व्यक्ति खुल कर हँस नहीं पाता, बल्कि मर्म पर चोट लगने से वह तिलमिला उठता है और ऐसी हालत में व्यक्ति का हृदय स्निग्धता खो बैठता है और प्रतिकार की भावना से भर जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि सृजनात्मक साहित्य ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का पोषण करने लगता है, जो कि साहित्य के लिए अभिशाप साबित होता है। तेलुगु कहानियों में शिष्ट हास्य का चित्रण बड़ी विशेषता से हुआ है। कुछ लेखकों ने पारिवारिक क्षेत्र को मधुर और अबोध भावनाओं के पूर्ण हास्य से भर दिया है, तो कुछ लोगों ने अपना क्षेत्र व्यापक होने के कारण सारे समाज की समग्र समस्याओं के चित्रण में उनसे सम्बद्ध हास्य का संचय एवं चित्रण किया है। इनमें प्रथम वर्ग के नेता श्री मुनिमाणिक्यम् नरसिंह-राव हैं, तो दूसरे वर्ग के नेता श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री हैं।

श्री मुनिमाणिक्यम् की कहानियों में एक तरफ पति-पत्नी के मधुर गार्हस्थ्य जीवन का मृदु-मधुर कोलाहलपूर्ण हास्य सुनायी देता है, तो दूसरी तरफ फूल-जैसे बच्चों की तुतली बोली में हृदय को गुदगुदानेवाली मीठी हँसी की किल-किलाहट सुनायी पड़ती है। हाँ, वृद्धों के पोपले मुँह की अस्पष्ट हर्ष-ध्वनि यदा-कदा ही सुनायी पड़ती है। ये पारिवारिक क्षेत्र को सदा हर्षपूरित और गृहस्थ-जीवन को सदा आनन्दमय देखना चाहते हैं। उपर्युक्त विषयों को कथा-वस्तु बनाकर आपने दर्जनों कहानियाँ लिखीं। उनमें "हास्य-कथलु", "तल्लि प्रेम"

(मातृ-प्रेम), "कांतम् कापुरम्" (कांतम् का पारिवारिक जीवन), "कांतम् की कैफ़ियत" आदि कहानी-संग्रह विशेष प्रसिद्ध हैं। श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री ने शिष्ट हास्य का पोषण करते हुए कई कहानियाँ लिखीं। उनका "बैरिस्टर पार्वतीशम्" नामक उपन्यास उत्तम हास्य का सुन्दर उदाहरण है।

तेलुगु में दलित, पीड़ित एवं शोषित जनता की समस्याओं का सहृदयतापूर्ण समाधान और उनके निराकरण के लिए समुचित सुझाव प्रस्तुत करनेवालों में भी श्री कोडवटिगंटि कुटुंबराव अग्रणी हैं। ये प्राचीन रूढ़ियों के प्रबल विरोधी हैं। जनता की भाषा में वस्तु पर अधिक जोर देते हुए आप अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्राय: सभी सामाजिक समस्याओं पर आपने असंख्य कहानियाँ लिखी हैं तथा कहानियों की संख्या और श्रेष्ठता की दृष्टि से भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आपके कहानी-संग्रहों में "तल्लिलेनि पिल्ल" (अनाथ), "मोंडि-वाडु" (हठी) और "स्वागतम्" आदि उल्लेखनीय हैं।

इस श्रेणी के लेखकों में श्री करुणकुमार, श्री अनिसेट्टि सुब्बाराव, श्री माधवपेद्दि गोखले विशेष प्रसिद्ध हैं। गिडुतूरि सूर्यम् और वट्टिकोट आल्वार स्वामी आदि के नाम भी इस श्रेणी के लेखकों में गिने जा सकते हैं।

श्री गोपीचन्द ने तेलुगु-कहानी-क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टिकोण का आरम्भ किया। मानव की दुर्बलताओं का जितनी बारीकी के साथ आपने परिचय कराया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मानव-हृदय की खूबियों का भी आपने उतनी ही उदारता के साथ परिचय कराया। आपने पात्रों के चित्रण में मानसिक मन्थन और अन्तर्द्वन्द्वों का यथार्थ चित्र उपस्थित किया। साथ ही, उग्र सुधार-वादी होने के कारण आपने मानव में साहित्य के द्वारा आमूल परिवर्तन लाने का सफल प्रयत्न किया। आप जाति, धर्म व रूढ़िगत विचारों के कट्टर विरोधी थे। इन आशयों की सिद्धि के लिए आपने बीसों कहानियाँ लिखीं, जिनमें "तंडुलु-कोडुकुलु" (बाप-बेटे) और "देवुनि जीवितम्" आदि कहानी-संग्रह विशेष प्रचलित हैं। इस परम्परा के लेखकों में श्री जी० वी० कृष्णराव आदि के नाम भी गिने जा सकते हैं। कविकोंडल वेंकटराव ने अपनी कहानियों द्वारा ग्रामीण जीवन का चित्र उपस्थित किया है।

मनोवैज्ञानिक कहानियों की रचना भी तेलुगु में कम नहीं हुई है। तेलुगु

में मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों व संघर्षों का चित्रण करने वाली असंख्य कहानियाँ रची गयी हैं। कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जो मानव के सामने जटिल बन कर खड़ी हैं और जिनके हल करने में मनुष्य को केवल बाह्य संघर्ष ही नहीं करने पड़ रहे हैं, उसे नित्यप्रति आन्तरिक संघर्ष भी करना पड़ रहा है। इसका मुख्य कारण आर्थिक और सामाजिक विषमताएँ तथा परस्पर विचार-संघर्ष ही हैं। आज विश्व के सामने जितने भी वाद उपस्थित हैं, वे सब इन्हीं समस्याओं को हल करने के लिए प्रयोगात्मक रूप में अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं। अतः मानव अपनी मूलभूत समस्याओं को सफलता के साथ हल कर सकने वाले मार्ग को जब तक ढूँढ़ नहीं पायेगा, तब तक अपनी श्रेष्ठता का उद्घोष करते हुए ये वाद चलते रहेंगे और विचारों के क्षेत्र में संघर्ष पैदा करते रहेंगे। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने वाली कहानियाँ लिखने वालों में श्री बुच्चि-बाबू का नाम विशेष रूप से आदर के साथ लिया जा सकता है। "बुच्चिबाबु कथलु", "मेड-मेट्लु" और "अडवि काचिन वेन्नेल" आपके कहानी-संग्रह हैं।

श्री पालगुम्मि पद्मराजु की "तूफ़ान" नामक कहानी को विश्व-कहानी-प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। आपकी कहानियाँ "पद्म-राजु कथलु" नाम से संगृहीत हैं। अन्य लेखकों में श्री भास्करबट्ल कृष्णराव, मधु-रान्तकम् राजाराम, बोम्मिरेड्डिपल्लि सूर्याराव, हितश्री, भरद्वाज, श्री पोतुकूचि सांबशिवराव, आरुद्र, इच्चापुरम् जगन्नाथ राव, श्री वात्सव, जमदग्नि, हितश्री, श्री रामगोपालम्, अमरेन्द्र आदि सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखकर तेलुगु कथा-साहित्य का भण्डार भर रहे हैं। "शारदा" नामक उपनाम से नटराजन् ने सुन्दर कहानियाँ लिखीं। "रक्तस्पर्श" आपकी अत्युत्तम कहानी मानी जाती है।

श्री मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री तथा श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री ने आन्ध्र के वातावरण तथा आचार-विचारों को प्रतिबिम्बित करने वाली रमणीय कहानियों की सृष्टि की। सर्वश्री सी० रामचन्द्रराव, सी० वेणु, दुत्ता दुर्गा प्रसाद, कंदुकूरि लिंगमूर्ति, माचिराजु देवी प्रसाद, रामचन्द, अवसराल सूर्याराव, बोड्डु बापिराजु, मालती चन्दूर, कविकोंडल वेंकटराव, के० रामलक्ष्मी, शार्वरी और केतिनीडि भास्कर राव तेलुगु-कहानी के विकास में अच्छा योग दे रहे हैं।

प्रगतिशील कहानियों की रचना करने वाले युवा-पीढ़ी के अनेक लेखक बहुत विश्वास के साथ आगे बढ़ रहे हैं। आज नित्यप्रति पत्र-पत्रिकाओं में प्रति-मास दर्जनों सुन्दर कहानियाँ छप रही हैं। तेलुगु में इतनी संख्या में उत्तम कहानीकार हैं कि सब की नामावली गिनाना भी सम्भव नहीं है। इन सबकी सशक्त लेखनी द्वारा तेलुगु कहानी उत्तमता, विविधता, शिल्प-वैशिष्ट्य तथा सुन्दरता से पूर्ण हो आशातीत विकास प्राप्त कर रही है।

आलोचना-साहित्य

तेलुगु-साहित्य में समालोचना का सूत्रपात सी० पी० ब्राउन, बिशप काल्डवेल आदि महोदयों ने किया, परन्तु कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु ने उसका वास्तविक मार्ग प्रशस्त किया और उसकी पुष्टि भी की। कुछ विद्वानों के मतानुसार पंतुलुजी प्रथम समालोचक हैं। तेलुगु समीक्षा-साहित्य को हम स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, पहली तेलुगु भाषा-सम्बन्धी समीक्षा और दूसरी साहित्य-सम्बन्धी।

"गद्य-ब्रह्म" नाम से विख्यात श्री वीरेशलिंगम् ने "विवेकवर्धिनी", "सती-हित-बोधिनी" और "हास्य-संजीवनी" नामक पत्रों में आलोचनात्मक लेख लिखना प्रारम्भ किया। ये तेलुगु-साहित्य के आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी कहे जा सकते हैं। इन्होंने भी द्विवेदीजी की तरह पत्र-पत्रिकाओं में अपने आलोचनात्मक लेखों द्वारा काव्य और कवियों के गुण-दोषों का निरूपण किया और अपने आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित किये। इनका प्रथम समीक्षा-ग्रन्थ "कोक्कोंड वेंकटरत्न कविकृत विग्रहतंत्र विमर्शनम्" है। इसमें साहित्यिक समीक्षा-रीतियों का अभाव नहीं, परन्तु इसमें कहीं-कहीं व्यक्ति दूषण खटकता है।

तेलुगु में समीक्षा-साहित्य का प्रारम्भिक समय पत्र-पत्रिकाओं में आलो-चनात्मक लेख प्रकाशित करने तक सीमित रहा है। उसमें "विवेकवर्धिनी", "अमुद्रित ग्रन्थ-चिन्तामणि", "कलावती" और "आन्ध्र-भाषा-संजीवनी" आदि पत्रिकाओं में विशेष रूप से समीक्षा प्रधान निबन्ध प्रकाशित हुए। श्री गोपाल-राव नायुडु के तेलुगु भाषा के अनुसन्धान के परिणामस्वरूप "आन्ध्र-भाषा-

चरित्र संग्रहम्" (तेलुगु भाषा का इतिहास संग्रह) प्रकाश में आया। श्री ए० वरदाचारी ने "तेलुगु वचन (गद्य)-रचना" नाम से गद्य-साहित्य पर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ उपस्थित किया। श्री परवस्तुरंगाचार्युलुकृत "वर्ण-निर्णय" भी एक उत्तम कृति है। श्री काशीभट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री ने भास्कर कवि पर "भास्कररोदंतम्" नामक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा, जिसमें काव्य के आमुख अत्यन्त मूल्यवान् व उपयोगी सावित हुए। ये आमुख ५० पृष्ठों से लेकर सौ-डेढ़ सौ पृष्ठ के हैं। हिन्दी के श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और लाला भगवानदीनजी ने इस प्रकार की भूमिकाएँ लिखी हैं। इसी काल में श्री वेन्नेटि रामचन्द्र रावजी ने "मनु-वसु-चरित्र-रचना विमर्शनम्" नामक तेलुगु-साहित्य के उत्तम महाकाव्य "मनुचरित्र" और "वसुचरित्र" पर समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखा।

तेलुगु-साहित्य में पाश्चात्य समीक्षा पद्धति पर प्रथम ग्रन्थ-रचना करने वाले श्री कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डीजी थे। इन्होंने महाकवि पिंगलि सूरन्ना की कविता-शक्ति का निरूपण करने के अभिप्राय से "कवित्वतत्त्व विचारम्" नामक एक सुन्दर समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह अपने ढंग का अद्वितीय है। इसमें समीक्षा सम्बन्धी कई नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ ने तेलुगु-साहित्य में तहलका मचा दिया। इससे नये आलोचकों को प्रोत्साहन एवं मार्ग-दर्शन उपलब्ध हुआ। श्री वंगूरि सुब्बाराव ने तेलुगु साहित्य का अच्छी तरह से अनुसन्धान करके "आन्ध्र-वाङमय-चरित्र" (तेलुगु साहित्य का इतिहास), "शतक-कवुल-चरित्र" और "वेमना" आदि अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किये। इस दिशा में श्री के० वेंकटनारायण का "आन्ध्र-वाङमय-चरित्र-संग्रहम्", श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव पंतुलुकृत "आन्ध्र-वाङमय-चरित्र", श्री खंडवल्लि लक्ष्मीरंजनम्कृत "तेलुगु-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" (आन्ध्र साहित्य चरित्र संग्रहम्) मुख्य हैं। श्री मधुनापंतुल सत्यनारायणकृत "आन्ध्र-रचयितलु" और श्री गंडमूरि सत्यनारायणराव द्वारा विरचित "उष: किरणालु" तेलुगु के साहित्य सम्बन्धी उत्तम आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं। कतिपय आलोचकों ने तेलुगु-वाङमय के एकाध युग अथवा गद्य या पद्य सम्बन्धी किसी एक शाखा की खोज की और उस पर सम्बन्धित समीक्षा-ग्रन्थ प्रस्तुत किये। ऐसे लोगों में टेकुमल्ल अच्युत राव प्रथम हैं। इन्होंने तेलुगु-साहित्य के स्वर्ण-युग

विजयनगर साम्राज्य के समय के साहित्य पर शोध-कार्य किया और "विजय-नगर-साम्राज्य-मंदलि-आन्ध्र-वाङ्मय-चरित्र" नाम से एक उत्तम आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। श्री गोब्बूरि वेंकटानन्द राघवरावजी ने गद्य-साहित्य की खोज की और "आन्ध्र-गद्य-वाङ्मय चरित्र" लिखा। इसमें केवल प्राचीन समय के गद्य लेखकों की आलोचना हुई। श्री भोगराजु नारायण मूर्ति ने "आन्ध्र-कवित्व-चरित्र" नामक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ तैयार किया है।

मद्रास विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष श्री निडदवोलु वेंकटराव अनुसन्धान का अच्छा कार्य कर रहे हैं। इनके अनुसन्धान के फलस्वरूप अब तक "तेलुगु-कवुल-चरित्र" (तेलुगु कवियों का इतिहास), "आन्ध्र वचन (गद्य)-वाङ्मयम्" और दाक्षिणात्यांध्र साहित्य-चरित्र" उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु के समीक्षा-साहित्य को समृद्ध करने में अनेक अनुसन्धानकर्ता लगे हुए हैं। श्री चागंटि शेषय्याजी तेलुगु-वाङ्मय के समस्त कवियों का समय परिचय अपने एक बृहत् समीक्षा-ग्रन्थ "आन्ध्र-कवितरंगिणि" में प्रस्तुत कर चुके हैं। कवियों की जीवनियाँ व परिचय अनेक लोगों ने प्रकाशित किया है। श्री वीरेलिंगम्जी ने "तेलुगु-कवुल-चरित्र" नाम से तेलुगु कवियों का पूर्ण परिचय (इतिहास) तीन भागों में प्रकाशित किया है। यह अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। श्रीमती ऊटुकूरि लक्ष्मीकान्तम्मा ने "आन्ध्र कवयित्रुलु" (आन्ध्र कवयित्रियाँ) नामक समीक्षा ग्रन्थ लिखा, जिसे "तेलुगु-भाषा-समिति" का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। डाक्टर नेलटूरि वेंकटरमणय्या ने मधुरा और तंजाऊर के नायक राजाओं के समय के आन्ध्र वाङ्मय की समीक्षा करते हुए उस युग की समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला और "दक्षिण आन्ध्र-वाङ्मय-चरित्र" नामक एक सुन्दर समीक्षा ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ आन्ध्र वाङ्मय के केवल एक युग पर प्रकाश डालने वाला है। श्री वेंकटरमणय्या ने इस युग के साहित्य की बड़ी छानबीन की और अनेक अज्ञात ग्रन्थों एवं कवियों का परिचय आन्ध्र जगत् को कराया।

स्वर्गीय श्री सुरवरम् प्रताप रेड्डीजी ने आन्ध्रवासियों के सामाजिक जीवन का परिचय देनेवाला एक बृहत् ग्रन्थ "आन्ध्रुल सांघिक चरित्र" (आन्ध्र-वासियों का सामाजिक इतिहास) प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ को (सन् १९५५)

में साहित्य अकादमी से ५००० रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनका "रामायण-विशेषालु" एक अत्युत्तम तथा प्रामाणिक समालोचनात्मक ग्रन्थ है। श्री जनमंचि शेषाद्रि शर्माकृत "मनुचरित्र-हृदयाविष्करण" प्राचीन काव्यों के समीक्षा-ग्रन्थों में अपना अनुपम स्थान रखता है। श्री हरि आदि शेषुवुजी ने "जानपदगेय विमर्श" (लोक गीतों की समीक्षा) नाम से एक उत्तम आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया और श्री मट्नूरि संगमेशमजी ने भी "तेलुगु-साहित्य में हास्यरस" नामक एक समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखा, इन दोनों ग्रन्थों को तेलुगु-भाषा-समिति का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। समीक्षा-साहित्य को इस समय तेलुगु-भाषा-समिति द्वारा खूब प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। सन् १९५५ में तेलुगु भाषा समिति से "दक्षिणत्युल नाट्य-कला-चरित्र" (दक्षिणात्य की नृत्यकला का इतिहास), जिसे श्री नटराज रामकृष्ण ने लिखा था, पुरस्कार मिला है। प्रतिवर्ष तेलुगु-भाषा-समिति तथा आन्ध्र-प्रदेश साहित्य-अकादमी ऐसे विषयों पर ग्रन्थ लिखवाकर पुरस्कार दे रही है, जिनका तेलुगु में अभाव है और जिनकी पूर्ति करनी आवश्यक है।

तेलुगु-साहित्य के अनुसन्धानकर्ताओं में श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, श्री कोमर्राजु लक्ष्मण राव पंतुलु, श्री मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री, श्री राल्लपल्लि अनन्त कृष्ण शर्मा, श्री नेलटूरि वेंकट रमणय्या, श्री पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे हैं, जो बाद को पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। उनके द्वारा तेलुगु-वाङमय व इतिहास का अच्छा परिचय मिलता है। श्री प्रभाकर शास्त्री का "कविसार्वभौम", श्रीनाथ रचित "शृंगार-नैषध" और "शृंगार श्रीनाथम्" तथा श्री अनन्त कृष्ण शर्मा का "वेमना" उत्तम कोटि के समीक्षा-ग्रन्थ हैं। इन्होंने नाटक-साहित्य पर जो भाषण दिये (नाटकोपन्यासमुलु), वे भी समीक्षा-साहित्य का स्थायी मूल्य रखते हैं। श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु "प्रबन्ध-नायिकलु" आलोचना के क्षेत्र में सदा अविस्मरणीय होंगे। प्राचीन काव्यों के पात्रों के गुण-विशेषों की आपने सम्यक् विवेचन करते हुए जो आलोचना की, वह पद्धति बहुत कम लोगों में पायी जाती है।

उपर्युक्त आलोचनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त समय-समय पर कुछ विद्वानों

ने प्राचीन समय के काव्य की समीक्षा करते हुए बड़ी-बड़ी पुस्तकें ही लिख डाली हैं, जिनमें वस्तु, रस, अलंकार आदि काव्य तत्त्वों की समीक्षा हुई। इस प्रकार के ग्रन्थों में श्री वज्झल सीतारामस्वामी शास्त्री कृत "वसुचरित्र-विमर्शनम्," श्री भूपति लक्ष्मीनारायण रचित "भारतमु-तिक्कन-रचना", श्री वेमूरि वेंकट-रामनाथम्कृत "सौन्दर्य-समीक्षा", श्री कोराड रामकृष्णय्या प्रणीत "आन्ध्र भारत-कविता-विमर्शनम्", श्री गडियारम् वेंकटशास्त्रीकृत "श्रीनाथुनि-कविता-साम्राज्यमु" और श्री दुव्वूरि रामिरेड्डी के "साहित्योपन्यासमुलु" तेलुगु-आलोचना-साहित्य के रत्न कहे जा सकते हैं। तेलुगु-भाषा पर भी समीक्षा-ग्रन्थ समय-समय पर रचे गये। देशी विद्वानों के साथ विदेशी पण्डितों ने भी इस कार्य में हाथ बँटाया। श्री बिशप काल्डवेल ने "द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण" (Comparative Grammar of Dravidian Languages) लिख कर तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति का श्रीगणेश किया। यह ग्रन्थ अपने क्षेत्र में अकेला है। श्री कोराड रामकृष्णय्याजी ने "भाषोत्पत्तिक्रमम्—भाषा चरितम्" नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा। "सन्धि" नामक इनका एक दूसरा ग्रन्थ भी इसी कोटि का है। डाक्टर चिलकूरि नारायण रावजी ने "आन्ध्र-भाषा-चरित्र" नाम से एक बृहत् समीक्षा-ग्रन्थ (दो भागों में) लिखा। इसमें आपने तेलुगु-भाषा को आर्य-भाषा परिवार की भाषा सिद्ध किया है। इस पर वाद-विवाद एवं चर्चाएँ वहुत चलीं। इस ग्रन्थ के उत्तर के रूप में श्री गंटि सोमयाजी ने "आन्ध्र-भाषा-विकासम्" और "द्राविड़-भाषलु" (द्रविड़ भाषाएँ) नामक दो विमर्शकात्मक ग्रन्थों की सृष्टि की। आपने तेलुगु को द्राविड़ भाषा-परिवार की करार दिया। आज भी यह विषय विवादास्पद रहा है।

तेलुगु के आधुनिक साहित्य पर भी सुन्दर समीक्षा ग्रन्थ निकल रहे हैं। श्री कुरुगंटि सीतारामय्या और श्री पिल्ललमर्रि हनुमंतराव ने "नव्ययांध्र-साहित्य-वीथुलु" (आधुनिक तेलुगु-साहित्य की रीतियाँ), श्री देवलपल्लि रामानुजरावजी ने "नव्य-कविता-नीरांजनम्", श्री उमाकान्तम् कवि ने "नेटि-कालपु कवित्वम्" (आज की कविता), श्री जयन्ति रामय्या पंतुलु ने "आधुनिक आन्ध्र-विकास-वैखरि", श्री जोन्नलगड्ड सत्यनारायणमूर्ति ने "साहित्य-तत्त्व-विमर्श", श्री जी० वी० कृष्णारावजी ने "काव्य-जगत्तु" और श्री बसवराजु

अप्पारावजी ने "आन्ध्र-कवित्व-चरित्र" नाम से आधुनिक कविता पर श्रेष्ठ समीक्षा-ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं।

गद्य-साहित्य की शाखाओं पर भी आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। श्री मोहम्मद कासिमखाँ ने "कथानिका-रचना" (कहानी की रचना) लिखी। श्री गोरेंपाटि वेंकट सुब्बय्या ने कहानीकारों पर सुन्दर समीक्षात्मक ग्रन्थ "अक्षराभिषेकम्" नाम से तैयार किया है। श्री शोंठि कृष्णमूर्ति ने "कथलु व्रायडमेला" (कहनी कैसे लिखी जाय) नाम से कहानी-रचना पर एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी। श्री श्रीनिवास चक्रवर्ती द्वारा विरचित "नाटय-शाला-नटना" तथा श्री पुराणम् सूरि शास्त्रीकृत "नाटयोत्पलम्", "रूपक रसालमु" और "विमर्शक पारिजातम्" नाटक तथा अन्य विषयों पर सुन्दर समीक्षा-ग्रन्थ हैं।

तेलुगु में आज कहानी, उपन्यास और नाटक इत्यादि सभी विषयों पर समीक्षात्मक लेख व ग्रन्थ प्रकाशित होते जा रहे हैं। तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका "भारती", "आन्ध्र प्रभा", "आन्ध्र पत्रिका", "आन्ध्र ज्योति," "विशालांध्र", "गोलकोंडा," "आन्ध्रभूमि", "प्रजामित्र", "स्रवंति" और "कृष्णा-पत्रिका" आदि में ऐसे लेख आ रहे हैं।

श्री मल्लमपल्लि सोमशेखर शर्माजी ने इतिहास सम्बन्धी अच्छी खोज की है और उन पर अनेक ग्रन्थ भी लिखे हैं। श्री पुट्टपर्ति श्रीनिवासाचार्युलु, श्री चिल्लुकूरि वीरभद्र राव, श्रीराल्लपल्लि अनन्तकृष्ण शर्मा, श्री कोत्तपल्लि वीरभद्रराव, श्री खण्डवल्लि लक्ष्मीरंजनम्, श्री दिवाकर्ल वेंकटावधानी, श्री निडदवोल वेंकटराव, श्री बुलुसु वेंकटरामय्या, श्री कोराड रामकृष्णय्या और श्री येंडमूरि सत्यनारायण "श्रीवात्सव" आदि अनेक गण्यमान्य विद्वान् इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालयों में तथा अन्य संस्थाओं में ही नहीं, व्यक्तिगत रूप से भी अनेक लोग इस शोध-कार्य में लगे हुए हैं। सम्पूर्ण तेलुगु भाषा-समिति "विज्ञान सर्वस्वमु" नाम से सम्पूर्ण "विश्वकोश" (१२ भागों में) प्रकाशित करने में संलग्न हैं। इस समय तक इसके सात भाग प्रकाशित हो चुके हैं, उनमें "तेलुगु संस्कृति तथा विश्वसाहिती" नामक भाग तेलुगु समालोचना की निधि कहा जा सकता है। साहित्य, संस्कृति, कवि और इतिहास की समग्र

समीक्षा इन खण्डों में एकत्रित की गयी है। तेलुगु-आलोचना-साहित्य इन दो गवेषणात्मक, परिचयात्मक एवं प्रामाणिक ग्रन्थों पर गर्व कर सकता है।

हैदराबाद में स्थित "आन्ध्र-साहित्य-परिषद्" तथा "तेलुगु-साहित्य-अकादमी" ने असंख्य उत्तम श्रेणी के आलोचनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। विश्वविद्यालयों के तत्त्वावधान में होने वाले अनुसन्धान के फलस्वरूप प्रकाश में आने वाले शोध-प्रबन्ध भी स्थायी साहित्यिक महत्त्व रखने वाले समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं। इस समय होने वाले कार्य को देखते हुए हम यह कहते हैं कि तेलुगु का आलोचनात्मक साहित्य उज्ज्वल है।

जीवनी

तेलुगु साहित्य में सर्वप्रथम जीवनियाँ लिखने का प्रवर्तन स्व० कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु ने किया। उन्होंने आदर्श एवं अनुकरणीय महापुरुषों तथा नारियों की जीवनियाँ प्रस्तुत कर, उन महान् आत्माओं से प्रेरणा ग्रहण करके मानव जीवन को आलोकमय बनाने का सत्संकल्प किया और इस आशय की पूर्ति के हेतु आपने "शंकराचार्य", "जीसस चरित्र", "बसवराजु गवर्राजु जीव-चरित्र", "विक्टोरिया महारानी-चरित्र", "सत्यवती-चरित्र" और "चन्द्रमती-चरित्र" आदि पुस्तकें प्रस्तुत कीं।

पंतुलुजी की देखादेखी अनेक लोगों ने जीवनियाँ प्रस्तुत कीं। डा० चिल-कूरि नारायणराव ने "गान्धी-चरित्र", "टालस्टाय-चरित्र" और "बसवेश्वर चरित्र" इत्यादि आठ जीवनियाँ प्रस्तुत कीं। श्री श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री ने "वीरांगनलु", "भारत रमणीमणुलु" और "महाभक्त विजयमु" में एक साथ अनेक व्यक्तियों की जीवनियाँ प्रस्तुत कीं। श्री कोमर्राजु वेंकटलक्ष्मण राव कृत "शिवाजी-चरित्र" और श्री प्रतापरेड्डी द्वारा रचित "हैंदव धर्म-वीरुलु" भी इस प्रकार की जीवनियों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस क्षेत्र में उल्लेखनीय अन्य जीवनियों में गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तमराव कृत "अब्रहाम लिंकन" तथा अन्य लेखकों की "नेपोलियन बोनापार्ट" तथा "मार्कोनी", अनन्तपंतुलु रामलिंग स्वामीकृत "श्री कृष्ण कवि-जीवितमु", श्री चिरन्तनानंद स्वामी रचित "विवेकानन्द" तथा "रामकृष्ण परमहंस" श्री वुलुसु वेंकटेश्वर्लु

कृत "विवेकानन्द चरित्र", श्री रामतीर्थ स्वामी कृत "उत्तम जीवित चरित्रलु" विशेष प्रसिद्ध हैं। विश्व तथा भारत के प्रायः समस्त महापुरुषों की जीवनियाँ तेलुगु में रची गयीं।

आत्म-कथा

तेलुगु में आत्मकथा "स्वीय चरित्र" नाम से व्यवहृत है। इस शाखा का भी सूत्रपात श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् ने अपना "स्वीय चरित्र" लिखकर किया। श्री चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् का स्वीय चरित्र भी थोड़े साल के अन्तर से प्रकाशित हुआ। इन ग्रन्थों द्वारा न केवल इन लेखकों का जीवन-परिचय ही प्राप्त होता है, अपितु तत्कालीन युग की सामाजिक एवं साहित्यिक दशा का भी सुन्दर चित्र हमारी आँखों के सामने आ जाता है।

आन्ध्र के राजनीतिक नेता स्वर्गीय श्री कोंडा वेंकटप्पय्य पंतुलु, आन्ध्र केसरी श्री टी० प्रकाशम् पंतुलु और देशोद्धारक श्री नागेश्वरराव की आत्म-कथाएं आन्ध्र के इतिहास और सामाजिक दशा का चित्र उपस्थित करती हैं। तेलुगु में ऐसी आत्म-कथाएँ आन्ध्र के अतिरथि और महारथियों की तो है ही, साथ ही बापूजी की आत्मकथा का श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री ने, पं० नेहरू की "मेरी कहानी" का श्री जग्गन्न शास्त्री ने रूपांतर किया। ये जीवन-गाथाएँ बहुत लोकप्रिय हैं।

शास्त्र-ग्रन्थ तथा वैज्ञानिक साहित्य

श्री कोमर्राजु वेंकटलक्ष्मण राव ने "विज्ञान-चन्द्रिका-ग्रन्थ-मण्डली" की स्थापना करके तकनीकी तथा वैज्ञानिक साहित्य के सृजन और प्रकाशन का सूत्रपात किया। आपने उन-उन विषयों के विशेषज्ञों द्वारा प्रामाणिक शास्त्र-ग्रन्थ लिखाकर, उन्हें प्रोत्साहित भी किया और साथ ही तेलुगु-भाषा में ऐसे ग्रन्थों के अभाव की पूर्ति भी की। यों तो इनके पूर्व ही तेलुगु में पावुलूरि मल्लना कृत गणित-शास्त्र तथा अन्य लेखकों के ज्योतिष, वैद्य, संगीत, नाट्य, शिल्प, स्वर, धर्म और शकुन शास्त्र इत्यादि पद्य में प्रकाशित हो चुके थे, किन्तु इन्होंने आधुनिक शास्त्र एवं विज्ञान का तेलुगु में लाने का सफल प्रयत्न किया।

इस ग्रन्थमाला की ओर से प्रकाशित ग्रन्थों में श्री वेमूरि विश्वनाथ शर्मा कृत "रसायन-शास्त्र", श्री मंत्रिप्रेगड सांबशिवराव द्वारा विरचित "पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र", श्री कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डीकृत "अर्थ-शास्त्र" (दो भाग), श्री गोटेटि जोगिराजु का लिखा "व्यवसाय (कृषि)-शास्त्र" तथा अन्य लेखकों के जीव (प्राणि) शास्त्र, जन्तु-शास्त्र, भौतिक शास्त्र, प्रकृति-शास्त्र, "वृक्ष-शास्त्र" (म्यान्युयल) विशेष प्रख्यात हैं। इनके अतिरिक्त "वैदिक-काल-निर्णय", "आन्ध्रुल-चरित्र", "महम्मदीय-महायुग", "हिन्दू-महायुग", "विजय नगर-साम्राज्य", "अमेरिका" आदि उत्तम इतिहास ग्रन्थ भी इस सन्दर्भ में प्रकाश में आये।

अन्य शास्त्र ग्रन्थों में डा० गुल्लपल्लि नारायणमूर्ति के "ग्रामारोग्य-रक्षण" और "मनश्शास्त्रमु", श्री एन० एम० वेणुगोपाल नायुडुकृत "रम्य हार्म्यमु", श्री के० शेषगिरि राव रचित "खगोल शास्त्र" श्रीहरि आदि शेषुवु रचित "विद्युत् के उपयोग" तथा "विनियुक्त रसायन-शास्त्र", श्रीमती कोडूरि लीलावतीकृत "गृहनिर्वहण शास्त्र", डा० आचंट लक्ष्मीपतिकृत "आरोग्य शास्त्र", श्री बोयन-पल्लि पद्मराजुकृत "सहकारर्थिक विज्ञान", डा० ए० वेंकटेश्वरशर्मा का "वनौ-षधि-विज्ञान" इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। ये ग्रन्थ ही अपना परिचय दे रहे हैं। इनमें अधिकांश ग्रन्थ पुरस्कृत भी हुए हैं।

आज प्राय: ऐसे सभी शास्त्र-ग्रन्थ तथा विज्ञान की प्रमुख प्रवृत्तियों के परिचयात्मक ग्रन्थ तेलुगु में उपलब्ध हैं। इस दिशा में विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा स्तुत्य प्रयत्न हो रहा है। ऐसे ग्रन्थों में डी० नारायणराव कृत "परमाणु-गाथा" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री वसन्त राव वेंकट-राव, हरि आदि प्रतिभाशाली लोग नवीन शास्त्र-ग्रन्थों के प्रणयन में लगे हुए हैं। विज्ञान का परिचय देने वाली "आधुनिक-विज्ञान" इत्यादि पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं। तेलुगु-भाषा-समिति अपने विश्वकोश के अन्य खण्डों में प्राय: सभी मुख्य शास्त्रों के शब्द-संग्रहों आदि का प्रकाशन कर रही है, जिसका विस्तृत परिचय यहाँ सम्भव नहीं है।

लोक-साहित्य

२१वीं शताब्दी में पालकुरि सोमनाथ ने अपनी कृतियों में उल्लेख किया

है कि उनके पूर्व ही तुम्मेदपदालु और एललु इत्यादि लोक-गीत प्रचार में थे। यह परम्परा आज तक अविरल गति से प्रवाहित होती अक्षुण्ण बनी हुई है। क्रमशः लोक-गीत साहित्य में संगीत के साथ नृत्य का समन्वय हुआ तथा उसने यक्ष-गान का रूप लिया। यक्ष-गान एक देशी नृत्य-संगीत-रूपक है।

आन्ध्र में प्रारम्भ में "कुरवंजि" का प्रदर्शन होता था। "कुरवलु" एक जाति के लोग हैं, जो "अंजि" नामक नृत्य विशेष का प्रदर्शन कर अपनी जीविका चलाते थे। इस नृत्य का सुसंस्कृत रूप ही "यक्ष-गान" है। यक्षगान का अभिनय करने वाले "जक्कुलु" कहलाते हैं। मेरे विचार में "यक्ष" शब्द का अपभ्रंश रूप ही "जक्कु" हो गया है। यक्षगानों में हास्य का भी समावेश होता है। हास्य करने वाले विदूषक को "कोणंगी" कहा जाता है। इसके गीत देशी छन्दों में रचे होते हैं।

यक्ष-गानों की परम्परा में प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचना कंदुकूरि रुद्रकवि कृत "सुग्रीव-विजय" है। इसका अभिनय तंजाऊर के दरबारों में अनेक बार हुआ है। तंजाऊर के नायक राजा तथा महाराष्ट्र राजाओं के समय में तेलुगु में बीसों उत्तम यक्ष-गानों की रचना हुई, जिनका विपुल परिचय हमने- "दक्षिणांध्र-वाङमय" के अन्तर्गत कराया है।

"वीथी-भागवतुलु", "गोल्लकलापमु", "भामा-कलापमु" और "कूचिपूडि-नृत्य" आदि अन्य अनेक देशी नृत्य -प्रदर्शन-विधियाँ हैं, जिनमें संगीत और साहित्य का सुन्दर समावेश हुआ है।

लोक-कथाएँ तेलुगु में मुख्यतः दो रूपों में प्राप्त होती हैं, प्रथम वीररस प्रधान तथा दूसरी पातिव्रत्य, सदाचार और नीति इत्यादि से सम्बन्धित। वीररस प्रधान लोक-कथाओं में "बोब्बिलि राजु-कथा", "देसिंगराजु-कथा" और "सर्वायि-पापडि-कथा" इत्यादि मुख्य हैं, पातिव्रत्य सम्बन्धी कथाओं में "बाल नागम्मा-कथा", "चिन्नम्मा-कथा", "कामम्म-कथा" और अन्य प्रकार की कथाओं में "शतकंठ रामायण", "उर्मिला देवी-निद्रा" और "लक्ष्मण देवर नव्वु" प्रसिद्ध हैं।

आन्ध्र के जन-जीवन की घटनाओं पर बीसों प्रकार के लोक-गीत लिखे

गये हैं, जिनमें श्रृंगार, हास्य और करुण रसों का सुन्दर पोषण और निरूपण हुआ है तथा वे काव्य-का-सा आनन्द प्रदान करते हैं। ऐसे गीतों में "चल् मोहन रंगा" और "नायुडु बावा" इत्यादि गीत आन्ध्र के जन-पदों में प्रत्येक नागरिक के कंठ पर थिरकते दिखाई देते हैं। तेलुगु में लोक-साहित्य का भी अपना गौरवमय इतिहास है।